

और वीरभद्रको मुकेसे मारने लगे। फिर दोनोंने एक दूसरेपर मुष्टिकाप्रहार आरम्भ किया। दोनों ही परस्पर विजयके अभिलाषी और एक-दूसरेके प्राण लेनेको उत्तरु थे। इस प्रकार रात-दिन लगातार युद्ध करते उन्हें चार दिन व्यतीत हो गये। पाँचवें दिन पुष्कलको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने वीरभद्रका गला पकड़कर उन्हें पृथ्वीपर दे मारा। उनके प्रहारसे महाबली वीरभद्रको बड़ी पीड़ा हुई। फिर उन्होंने भी पुष्कलके पैर पकड़कर उन्हें बारम्बार घुमाया और पृथ्वीपर पछाड़कर मार डाला। महाबली वीरभद्रने पुष्कलके मस्तकको, जिसमें कुण्डल जगमगा रहे थे, त्रिशूलसे काट दिया। इसके बाद वे जोर-जोरसे गर्जना करने लगे। यह देखकर सभी लोग थर्पा उठे। रणभूमिमें जो युद्ध-कुशल वीर थे, उन्होंने वीरभद्रके द्वारा पुष्कलके मारे जानेका समाचार शत्रुघ्नसे कहा।

पुष्कलके वधका वृत्तान्त सुनकर महावीर शत्रुघ्नको बड़ा दुःख हुआ। वे शोकसे काँप उठे। उन्हें दुःखी जानकर भगवान् शङ्करने कहा—‘रे शत्रुघ्न ! तू युद्धमें शोक न कर। वीर पुष्कल धन्य है, जिसने महाप्रलयकारी वीरभद्रके साथ पाँच दिनोंतक युद्ध किया। ये वीरभद्र वे ही हैं, जिन्होंने मेरे अपमान करनेवाले दक्षको क्षणभरमें मार डाला था; अतः महाबलवान् सजेन्द्र ! तू शोक त्याग दे और युद्ध कर। शत्रुघ्नने शोक छोड़ दिया। उन्हें शङ्करके प्रति बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने चढ़ाये हुए धनुषको हाथमें लेकर महेश्वरपर बाणोंका प्रहार आरम्भ किया। उधरसे शङ्करने भी बाण छोड़े। दोनोंके बाण आकाशमें छा गये। बाण-युद्धमें दोनोंकी क्षमता देखकर सब लोगोंको यह विश्वास हो गया कि अब सबको मोहमें डालनेवाला लोक-संहारकारी प्रलयकाल आ पहुँचा। दर्शक कहने लगे—‘ये तीनों लोकोंकी उत्पत्ति और प्रलय करनेवाले रुद्र हैं, तो वे भी महाराज श्रीरामचन्द्रके छोटे भाई हैं। न जाने क्या होगा। इस भूतलपर किसकी विजय होगी?’

इस प्रकार शत्रुघ्न और शिवमें ग्यारह दिनोंतक परस्पर युद्ध होता रहा। बारहवें दिन राजा शत्रुघ्नने क्रोधमें भरकर महादेवजीका वध करनेके लिये ब्रह्माखका प्रयोग

किया, किन्तु महादेवजी उस महान् अस्त्रको हँसते-हँसते पी गये। इससे शत्रुघ्नको बड़ा आश्र्य हुआ। वे सोके लगे—‘अब क्या करना चाहिये ?’ वे इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि देवाधिदेवोंके शिरोमणि भगवान् शिवने शत्रुघ्नकी छातीमें एक अग्निके समान तेजस्वी बाण भेंट दिया। उससे मूर्च्छित होकर शत्रुघ्न रणभूमिमें गिर पड़े। उस समय योद्धाओंसे भरी हुई उनकी सारी सेनामें हाहाकार मच गया। शत्रुघ्नको बाणोंसे पीड़ित एवं मूर्च्छित होकर गिरा देख हनुमान्-जीने पुष्कलके शरीरके रथपर सुला दिया और सेवकोंको उनकी रक्षामें तैनात करके वे स्वयं संहारकारी शिवसे युद्ध करनेके लिये आये। हनुमान्-जी श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करके अपने पक्षके योद्धाओंका हर्ष बढ़ाते हुए रोषके मारे अपनी पूँछको जोर-जोरसे हिला रहे थे।

युद्धके मुहानेपर रुद्रके समीप पहुँचकर महावीर हनुमान्-जी देवाधिदेव महादेवजीका वध करनेकी इच्छासे बोले—‘रुद्र ! तुम रामभक्तका वध करनेके लिये उद्धत होकर धर्मके प्रतिकूल आचरण कर रहे हो; इसलिये मैं तुम्हें दण्ड देना चाहता हूँ। मैंने पूर्वकालमें वैदिक ऋषियोंके मुँहसे अनेकों बार सुना है कि पिनाकधारी रुद्र सदा ही श्रीरघुनाथजीके चरणोंका स्मरण करते रहते हैं; किन्तु वे सभी बातें आज झूठी साबित हुईं। क्योंकि तुमने राम भक्त शत्रुघ्नके साथ युद्ध किया है।’ हनुमान्-जीके ऐसा कहनेपर महेश्वर बोले—‘कपिशेष ! तुम वीरोंमें प्रधान और धन्य हो। तुमने जो कुछ कहा है, वह सत्य है। देवदानव-वन्दित ये भगवान् श्रीरामचन्द्रजी वास्तवमें मेरे स्वामी हैं। किन्तु मेरा भक्त वीरमणि उनके अश्वको ले आया है और उस अश्वके रक्षक शत्रुघ्न, जो शत्रुवीरोंका दमन करनेवाले हैं, इसके ऊपर चढ़ आये हैं। इस अवस्थामें मैं वीरमणिकी भक्तिके वशीभूत होकर उसकी रक्षाके लिये आया हूँ; क्योंकि भक्त अपना ही स्वरूप होता है। अतः जिस किसी तरह भी सम्भव हो, उसकी रक्षा करनी चाहिये; यही मर्यादा है।’

चण्डीपति भगवान् शङ्करके ऐसा कहनेपर हनुमान्-जी बहुत कुपित हुए और उन्होंने एक बड़ी शिला



## COLLECTION OF VARIOUS

- HINDUISM SCRIPTURES
- HINDU COMICS
- AYURVEDA
- MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with  
By  
Avinash/Shashi

Icreator of  
hinduism  
server!



## COLLECTION OF VARIOUS

- HINDUISM SCRIPTURES
- HINDU COMICS
- AYURVEDA
- MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with  
By  
Avinash/Shashi

Icreator of  
hinduism  
server!

लेकर उसे उनके रथपर दे मारा। शिलाका आधात पाकर महादेवजीका रथ घोड़े, सारथि, ध्वजा और पताकासहित चूर-चूर हो गया। शिवजीको रथहीन देखकर नन्दी दैड़े हुए आये और बोले—‘भगवन्! मेरी पीठपर सवार हो जाइये।’ भूतनाथको वृषभपर आरूढ़ देख हनुमानजीका क्रोध और भी बढ़ गया। उन्होंने शालका वृक्ष उखाड़कर बड़े वेगसे उनकी छातीपर प्रहार किया। उसकी चोट खाकर भगवान् भूतनाथने एक तीखा शूल हाथमें लिया, जिसकी तीन शिखाएँ थीं तथा जो अग्निकी ज्वालाकी भाँति जाज्वल्यमान हो रहा था। अग्नितुल्य तेजस्वी उस महान् शूलको अपनी ओर आते देख हनुमानजीने वेगपूर्वक हाथसे पकड़ लिया और उसे क्षणभरमें तिल-तिल करके तोड़ डाला। कपिश्रेष्ठ हनुमानने जब वेगके साथ त्रिशूलके टुकड़े-टुकड़े कर डाले, तब भगवान् शिवने तुरंत ही शक्ति हाथमें ली, जो सब-की-सब लोहेकी बनी हुई थी। शिवजीकी चलायी हुई वह शक्ति बुद्धिमान् हनुमानजीकी छातीमें आ लगी। इससे वे कपिश्रेष्ठ क्षणभर बड़े विकल रहे। फिर एक ही क्षणमें उस पीड़ाको सहकर उन्होंने एक भयङ्कर वृक्ष उखाड़ लिया और बड़े-बड़े नागोंसे विभूषित महादेवजीकी छातीमें प्रहार किया। वीरवर हनुमानजीकी मार खाकर शिवजीके शरीरमें लिपटे हुए नाग थर्हा उठे और वे उन्हें छोड़कर इधर-उधर होते हुए बड़े वेगसे पातालमें घुस गये। इसके बाद शिवजीने उनके ऊपर मुशाल चलाया, किन्तु वे उसका वार बचा गये। उस समय गमसेवक हनुमानजीको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने हाथपर पर्वत लेकर उसे शिवजीकी छातीपर दे मारा। तदनन्तर, उनके ऊपर दूसरी-दूसरी शिलाओं, वृक्षों और पर्वतोंकी वृष्टि आरम्भ कर दी। वे भगवान् भूतनाथको अपनी पूँछमें लपेटकर मारने लगे। इससे नन्दीको बड़ा भय हुआ। उन्होंने एक-एक क्षणमें प्रहार करके शिवजीको अत्यन्त व्याकुल कर दिया। तब वे वानरराज हनुमानजीसे बोले—‘ध्वनाथजीकी सेवामें रहनेवाले भक्तप्रवर तुम धन्य हो। आज तुमने महान् पराक्रम कर दिखाया।

इससे मुझे बड़ा सन्तोष हुआ है। महान् वेगशाली वीर ! मैं दान, यज्ञ या थोड़ी-सी तपस्यासे सुलभ नहीं हूँ; अतः मुझसे कोई वर माँगो।’

भगवान् शिव सन्तुष्ट होकर जब ऐसी बात कहने लगे, तब हनुमानजीने हँसकर निर्भय बाणीमें कहा—‘महेश्वर ! श्रीरघुनाथजीके प्रसादसे मुझे सब कुछ प्राप्त है; तथापि आप मेरे युद्धसे सन्तुष्ट हैं, इसलिये मैं आपसे यह वर माँगता हूँ। हमारे पक्षके ये वीर पुष्कल युद्धमें मारे जाकर पृथ्वीपर पड़े हैं, श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाई शत्रुघ्न भी रणमें मूर्च्छित हो गये हैं तथा दूसरे भी बहुत-से वीर बाणोंकी मारसे क्षत-विक्षत एवं मूर्च्छित होकर धरतीपर गिरे हुए हैं। इन सबकी आप अपने गणोंके साथ रहकर रक्षा करें। इनके शरीरका खण्ड-खण्ड न हो, इस बातकी चेष्टा करें। मैं अभी द्रोणगिरिको लाने जा रहा हूँ, उसपर मेरे हुए प्राणियोंको जिलानेवाली ओषधियाँ रहती हैं।’ यह सुनकर राङ्गरजीने कहा—‘बहुत अच्छा, जाओ।’ उनकी स्वीकृति पाकर हनुमानजी सम्पूर्ण द्वीपोंको लाँघते हुए क्षीरसागरके तटपर गये। इधर भगवान् शिव अपने गणोंके साथ रहकर पुष्कल आदिकी रक्षा करने लगे। हनुमानजी द्रोण नामक महान् पर्वतपर पहुँचकर जब उसे लानेको उद्यत हुए, तब वह काँपने लगा। उस पर्वतको काँपते देख उसकी रक्षा करनेवाले देवताओंने कहा—‘छोड़ दो इसे, किसलिये यहाँ आये हो ? क्यों इसे ले जाना चाहते हो ?’ उनकी बात सुनकर महायशस्वी हनुमानजी बोले—‘देवताओ ! राजा वीरमणिके नगरमें जो संग्राम हो रहा है, उसमें रुद्रके द्वारा हमारे पक्षके बहुत-से योद्धा मारे गये हैं। उन्हींको जीवित करनेके लिये मैं यह द्रोण पर्वत ले जाऊँगा। जो लोग अपने बल और पराक्रमके घमंडमें आकर इसे रोकेंगे, उन्हें एक ही क्षणमें मैं यमराजके घर भेज दूँगा। अतः तुमलोग मुझे समूचा द्रोण पर्वत अथवा वह औषध दे दो, जिससे मैं रणभूमिमें मेरे हुए वीरोंको जीवन-दान कर सकूँ।’ पवनकुमारके ये वचन सुनकर सबने उन्हें प्रणाम किया और संजीवनी नामक ओषधि उन्हें दे दी। हनुमानजी औषध लेकर युद्धक्षेत्रमें आये।

उन्हें आया देख समस्त वैरी भी साधु-साधु कहकर उनकी प्रशंसा करने लगे तथा सबने उन्हें एक अद्भुत शक्तिशाली वीर माना। हनुमान्‌जी बड़ी प्रसन्नताके साथ मेरे हुए वीर पुष्कलके पास आये और महापुरुषोंके भी आदरणीय मन्त्रिवर सुमतिको बुलाकर बोले—‘आज मैं युद्धमें मेरे हुए सम्पूर्ण वीरोंको जिलाऊँगा।’

ऐसा कहकर उन्होंने पुष्कलके विशाल वक्षःस्थल-पर औषध रखा और उनके सिरको धड़से जोड़कर यह कल्याणमय वचन कहा—‘यदि मैं मन, वाणी और क्रियाके द्वारा श्रीरघुनाथजीको ही अपना स्वामी समझता हूँ तो इस दवासे पुष्कल शीघ्र ही जीवित हो जायँ।’ इस बातको ज्यों ही उन्होंने मुँहसे निकाला त्यों ही वीरशिरोमणि पुष्कल उठकर खड़े हो गये और रणभूमिमें रोषके मारे दाँत कटकटाने लगे। वे बोले—‘मुझे युद्धमें मूर्च्छित करके वीरभद्र कहाँ चले गये ? मैं अभी उन्हें मार गिराता हूँ। कहाँ है मेरा उत्तम धनुष !’ उन्हें ऐसा कहते देख कपिराज हनुमान्‌जीने कहा—‘वीरवर ! तुम्हें वीरभद्रने मार डाला था। श्रीरघुनाथजीके प्रसादसे पुनः नया जीवन प्राप्त हुआ है। शत्रुघ्न भी मूर्च्छित हो गये हैं। चलो, उनके पास चलें।’ यों कहकर वे युद्धके मुहानेपर पहुँचे, जहाँ भगवान् श्रीशिवके बाणोंसे पीड़ित होकर शत्रुघ्नजी केवल साँस ले रहे थे। साँस आनेपर हनुमान्‌जीने उनकी छातीपर दवा रख दी और कहा—‘धैया शत्रुघ्न ! तुम तो महाबलवान् और परक्रमी हो, रणभूमिमें मूर्च्छित होकर कैसे पड़े हो ? यदि मैंने प्रयत्नपूर्वक आजन्म ब्रह्मचर्य-ब्रतका पालन किया है तो वीर शत्रुघ्न क्षणभरमें जीवित हो उठें।’ इतना कहते ही वे क्षणमात्रमें जीवित हो बोल उठे—‘शिव कहाँ हैं, शिव कहाँ हैं ? वे रणभूमि छोड़कर कहाँ चले गये ?’

पिनाकधारी रुद्रने युद्धमें अनेकों वीरोंका सफाया कर डाला था, किन्तु महात्मा हनुमान्‌जीने उन सबको जीवित कर दिया। तब वे सभी वीर कवच आदिसे सुसज्जित हो अपने-अपने रथपर बैठकर रोषपूर्ण हृदयसे शत्रुओंकी ओर चले। अंबकी बार राजा वीरमणि खयं ही शत्रुघ्नका सामना करनेके लिये गये। उन्हें देखकर

शत्रुघ्नको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने राजाके ऊपर आग्रेयास्त्रका प्रयोग किया, जिससे उनकी सेना दग्ध होने लगी। शत्रुके छोड़े हुए उस महान् दाहक अस्त्रके देखकर राजाके क्रोधकी सीमा न रही। उन्होंने वारुणास्त्रका प्रयोग किया। वारुणास्त्रद्वारा अपनी सेनाको शीतके कष्टसे पीड़ित देख महाबली शत्रुघ्न उसपर वायव्यास्त्रका प्रहार किया। इससे बड़े जोरोंकी हवा चलने लगी। वायुके वेगसे मेघोंकी धिरी हुई घटा छिन्न-भिन्न हो गयी। वे चारों ओर फैलकर विलीन हो गये। अब शत्रुघ्नके सैनिक सुखी दिखायी देने लगे। उधर महाराज वीरमणिने जब देखा कि मेरी सेना आँधीसे कष्ट पा रही है, तब उन्होंने अपने धनुषपर शत्रुओंका संहार करनेवाले पर्वतास्त्रका प्रयोग किया। पर्वतोंके द्वारा वायुकी गति रुक गयी। अब वह युद्धक्षेत्रमें फैल नहीं पाती थी। यह देख शत्रुघ्नने वज्रास्त्रका सन्धान किया। वज्रास्त्रकी मार पड़नेपर समस्त पर्वत तिल-तिल करके चूर्ण हो गये। शत्रुवीरोंके अङ्ग विदीर्ण होने लगे। खूनसे लथपथ होनेके कारण उनकी बड़ी शोभा हो रही थी। उस समय युद्धका अद्भुत दृश्य था। राजा वीरमणिका क्रोध सीमाको पार कर गया। उन्होंने अपने धनुषपर ब्रह्मास्त्रका सन्धान किया, जो वैरियोंको दग्ध करनेवाला अद्भुत अस्त्र था। ब्रह्मास्त्र उनके हाथसे ढूटकर शत्रुकी ओर चला। तबतक शत्रुघ्नने भी मोहनास्त्र छोड़ा। मोहनास्त्रने एक ही क्षणमें ब्रह्मास्त्रके दो टुकड़े कर डाले तथा राजाकी छातीमें चोट करके उन्हें तुरंत मूर्च्छित कर दिया। तब शिवजीको बड़ा क्रोध हुआ और वे रथपर बैठकर राजाके पास आये। उस समय शत्रुघ्न सहसा उनसे युद्धके लिये आगे बढ़ आये और अपने धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर युद्ध करने लगे। उन दोनोंमें बड़ा भयङ्कर संग्राम छिड़ा, जो वैरियोंको विदीर्ण करनेवाला था। नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग होनेके कारण सारी दिशाएँ उद्धीस हो उठी थीं। शिवके साथ युद्ध करते-करते शत्रुघ्न अत्यन्त व्याकुल हो गये। तब हनुमान्‌जीके उपदेशसे उन्होंने अपने स्वामी श्रीरघुनाथजीका स्मरण किया—‘हा नाथ ! हा भाई ! ये

अत्यन्त भयङ्कर शिव धनुष उठाकर मेरे प्राण लेनेपर उतारू हो गये हैं; आप युद्धमें मेरी रक्षा कीजिये। राम! आपका नाम लेकर अनेकों दुःखी जीव दुःख-सागरके पार हो चुके हैं। कृपानिधे! मुझ दुःखियाको भी उबारिये।' शत्रुघ्ने ज्यों ही उपर्युक्त बात मुँहसे निकाली, त्यों ही नील कमल-दलके समान श्यामसुन्दर कमल-नयन भगवान् श्रीराम मृगका शृङ्ख हाथमें लिये यशदीक्षित पुरुषके वेषमें वहाँ आ पहुँचे। समरभूमिमें उन्हें देखकर शत्रुघ्नको बड़ा विस्मय हुआ।

प्रणतजनोंका क्षेत्र दूर करनेवाले अपने भाई श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन पाकर शत्रुघ्न सभी दुःखोंसे मुक्त हो गये। हनुमानजी भी श्रीरघुनाथजीको देखकर सहसा उनके चरणोंमें गिर पड़े। उस समय उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और वे भक्तकी रक्षाके लिये आये हुए भगवान्से बोले—'स्वामिन्! अपने भक्तोंका सब प्रकारसे पालन करना आपके लिये सर्वथा योग्य ही है। हम धन्य हैं, जो इस समय श्रीचरणोंका दर्शन पा रहे हैं। श्रीरघुनन्दन! अब आपकी कृपासे हमलोग क्षणभरमें ही शत्रुओंपर विजय पा जायेंगे।' इसी समय योगियोंके



ध्यानगोचर श्रीरामचन्द्रजीको आया जान श्रीमहादेवजी भी आगे बढ़े और उनके चरणोंमें प्रणाम करके शरणागतभयहारी प्रभुसे बोले—'भगवन्! एकमात्र आप ही साक्षात् अन्तर्यामी पुरुष हैं, आप ही प्रकृतिसे पर परब्रह्म कहलाते हैं। जो अपनी अंश-कलासे इस विश्वकी सृष्टि, रक्षा और संहार करते हैं, वे परमात्मा आप ही हैं। आप सृष्टिके समय विधाता, पालनके समय स्वयंप्रकाश राम और प्रलयके समय शर्व नामसे प्रसिद्ध साक्षात् मेरे स्वरूप हैं। मैंने अपने भक्तका उपकार करनेके लिये आपके कार्यमें बाधा डालनेवाला आयोजन किया है। कृपालो! मेरे इस अपराधको क्षमा कीजिये। क्या करूँ, मैंने अपने सत्यकी रक्षाके लिये ही यह सब कुछ किया है। आपके प्रभावको जानकर भी भक्तकी रक्षाके लिये यहाँ आया हूँ। पूर्वकालकी बात है, इस राजाने क्षिप्रा नदीमें स्थान करके उज्जयिनीके महाकाल-मन्दिरमें बड़ी अद्भुत तपस्या की थी। इससे प्रसन्न होकर मैंने कहा—'महाराज! वर माँगो।' इसने अद्भुत राज्य माँगा।' मैंने कहा—'देवपुरमें तुम्हारा राज्य होगा और जबतक वहाँ श्रीरामचन्द्रजीके यज्ञ-सम्बन्धी अश्वका आगमन होगा, तबतक मैं भी तुम्हारी रक्षाके लिये उस स्थानपर निवास करूँगा।' इस प्रकार मैंने इसे वरदान दे दिया था। उसी सत्यसे मैं इस समय बँधा हूँ। अब यह राजा अपने पुत्र, पशु और बास्थवोंसहित यज्ञका घोड़ा आपको समर्पित करके आपके ही चरणोंकी सेवा करेगा।'

श्रीरामने कहा—भगवन्! देवताओंका तो यह धर्म ही है कि वे अपने भक्तोंका पालन करें। आपने जो इस समय अपने भक्तकी रक्षा की है, यह आपके द्वारा बहुत उत्तम कार्य हुआ है। मेरे हृदयमें शिव हैं और शिवके हृदयमें मैं हूँ। हम दोनोंमें भेद नहीं है। जो मूर्ख है, जिनकी बुद्धि दूषित है; वे ही भेददृष्टि रखते हैं। हम दोनों एकरूप हैं। जो हमलोगोंमें भेद-बुद्धि करते हैं, वे मनुष्य हजार कल्पोंतक कुर्बीपाकमें पकाये जाते हैं। महादेवजी! जो सदा आपके भक्त रहे हैं, वे धर्मात्मा पुरुष मेरे भी भक्त हैं तथा जो मेरे भक्त हैं, वे भी बड़ी

भक्तिसे आपके चरणोंमें मस्तक झुकाते हैं।\*

शेषजी कहते हैं—श्रीरघुनाथजीका ऐसाँ वचन सुनकर भगवान् शिवने मूर्च्छित पड़े हुए राजा वीरमणिको अपने हाथके स्पर्श आदिसे जीवित किया। इसी प्रकार उनके दूसरे पुत्रोंको भी, जो बाणोंसे पीड़ित होकर अचेत-अवस्थामें पड़े थे, जिलाया। भगवान् भूतनाथने राजाको तैयार करके पुत्र-पौत्रोंसहित उन्हें श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें गिराया। वात्स्यायनजी ! धन्य हैं राजा वीरमणि, जिन्होंने श्रीरघुनाथजीका दर्शन किया। जो लाखों योगियोंके लिये उनकी योगनिष्ठाके द्वारा भी दुर्लभ हैं, उन्हीं भगवान् श्रीरामको प्रणाम करके समस्त राज-परिवारके लोग कृतार्थ हो गये—उनका शरीर धारण करना सफल हो गया। इतना ही नहीं, वे ब्रह्मादि देवताओंके भी पूजनीय बन गये। शत्रुघ्न, हनुमान् और पुष्कल आदि उद्घट योद्धा जिनकी स्तुति करते हैं, उन श्रीरामचन्द्रजीको राजा वीरमणिने शिवजीकी प्रेरणासे वह उत्तम अश्व दे दिया;

साथ ही पुत्र, पशु और बान्धवों- सहित अपना सारा रथ भी समर्पण कर दिया। तदनन्तर, श्रीरामचन्द्रजी समस्त शत्रुओं तथा सेवकोंसे अभिवन्दित होकर मणिमय रथपूर्व बैठे-बैठे ही अन्तर्धान हो गये। मुने ! विश्ववन्दित श्रीरामको तुम मनुष्य न समझो। जलमें, थलमें, सब जगह तथा सबके भीतर सदा वे ही स्थित रहते हैं। भगवान् शङ्करने भी अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके सेवक राजासे विदा ली और कहा—‘राजन् ! श्रीरामचन्द्रजीका आश्रय ही संसारमें सबसे दुर्लभ वस्तु है, अतः तुम श्रीरघुनाथजीकी ही शरणमें रहो।’ यों कहकर प्रलय और उत्पत्तिके कर्ता-धर्ता भगवान् शिव स्वयं भी अदृश्य हो समस्त पार्षदोंके साथ कैलासको छले गये। इसके बाद राजा वीरमणि श्रीरामके चरण-कमलोंका ध्यान करते हुए स्वयं भी अपनी सेना लेकर महाबली शत्रुघ्नके साथ-साथ गये। जो श्रेष्ठ मनुष्य श्रीरामचन्द्रजीके इस चरित्रका श्रवण करेंगे, उन्हें कभी सांसारिक दुःख नहीं होगा।



## अश्वका गात्र-स्तम्भ, श्रीरामचरित्र-कीर्तनसे एक स्वर्गवासी ब्राह्मणका राक्षसयोनिसे उद्धार तथा अश्वके गात्र-स्तम्भकी निवृत्ति

शेषजी कहते हैं—द्विजश्रेष्ठ ! तदनन्तर बँधे हुए चैवरसे सुशोभित वह यज्ञ-सम्बन्धी अश्व हजारों योद्धाओंसे सुरक्षित होकर भारतवर्षके अन्तमें स्थित हेमकूट पर्वतपर गया, जो चारों ओरसे दस हजार योजन लंबा-चौड़ा है। उसके सुन्दर शिखर सोने-चाँदी आदि धातुओंके हैं। वहाँ एक विशाल उद्यान है—जो बहुत ही सुन्दर और भाँति-भाँतिके वृक्षोंसे सुशोभित है। घोड़ा उसमें प्रवेश कर गया। वहाँ जानेपर उस अश्वके सम्बन्धमें सहस्रा एक आश्वर्यजनक घटना हुई; उसे बतलाता हूँ सुनिये—अकस्मात् उसका सारा शरीर अकड़ गया, वह हिल-डुल नहीं पाता था। मार्गमें

खड़ा-खड़ा वह हेमकूट पर्वतकी ही भाँति अविचल प्रतीत होने लगा। अश्वके रक्षकोंने शत्रुघ्नके पास जाकर पुकार मचायी—‘स्वामिन् ! हम नहीं जानते घोड़ेको क्या हो गया। अकस्मात् उसका सम्पूर्ण शरीर स्तब्ध हो गया है। इस बातपर विचार कर जो कुछ करना उचित जान पड़े, कीजिये।’ यह सुनकर राजा शत्रुघ्नको बड़ा विस्मय हुआ। वे अपने समस्त सैनिकोंके साथ अश्वके निकट गये। पुष्कलने अपनी बाँहसे पकड़कर उसके दोनों चरणोंको धरतीसे ऊपर उठानेका प्रयत्न किया। परन्तु वे अपने स्थानसे हिल भी न सके। तब शत्रुघ्नने सुमतिसे पूछा—‘मन्त्रिवर ! घोड़ेको क्या हुआ है, जो इसका

\* ममास्ति हृदये शर्वो भवतो हृदये त्वहम्। आवयोरन्तरं नास्ति मूढाः पद्यन्ति दुर्धियः ॥

ये भेदं विद्यत्यद्य आवयोरेकरूपयोः। कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते नरः कल्पसहस्रकम् ॥

ये त्वद्दत्ताः सदासंस्ते मद्दत्ता धर्मसंयुताः। मद्दत्ता अपि भूयस्या भक्त्या तव नतिङ्कराः ॥ (४६ । २०—२२)

सारा शरीर अकड़ गया ? अब यहाँ क्या उपाय करना चाहिये, जिससे इसमें चलनेकी शक्ति आ जाय ?'

सुमतिने कहा—स्वामिन् ! किन्हीं ऐसे ऋषि-मुनिकी खोज करनी चाहिये, जो सब बातोंको जाननेमें कुशल हों। मैं तो लोकमें होनेवाले प्रत्यक्ष विषयोंको ही जानता हूँ; परोक्षमें मेरी गति नहीं है।

शोषजी कहते हैं—सुमतिकी यह बात सुनकर धर्मके ज्ञाता शत्रुघ्ने अपने सेवकोंद्वारा ऋषिकी खोज करायी। एक सेवक वहाँसे एक योजन दूर पूर्व दिशाकी ओर गया। वहाँ उसे एक बहुत बड़ा आश्रम दिखायी दिया, जहाँके पश्च और मनुष्य—सभी परस्पर वैर-भावसे रहित थे। गङ्गाजीमें ज्ञान करनेके कारण उनके समस्त पाप दूर हो गये थे तथा वे सब-के-सब बड़े मनोहर दिखायी देते थे। वह शौनक मुनिका मनोहर आश्रम था। उसका पता लगाकर सेवक लैट आया और विस्मित होकर उसने राजा शत्रुघ्नसे उस आश्रमका समाचार निवेदन किया। सेवककी बात सुनकर अनुचरोंसहित शत्रुघ्नको बड़ा हर्ष हुआ और वे हनुमान् तथा पुष्कल आदिके साथ ऋषिके आश्रमपर गये। वहाँ जाकर उन्होंने मुनिके पापहारी चरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। बलवानोंमें श्रेष्ठ राजा शत्रुघ्नको आया जान शौनक मुनिने अर्ध्य, पाद्य आदि देकर उनका स्वागत किया। उनके दर्शनसे मुनिको बड़ी प्रसन्नता हुई। शत्रुघ्नजी सुखपूर्वक बैठकर जब विश्राम कर चुके तो मुनीश्वरने पूछा—‘राजन् ! तुम किसलिये भ्रमण कर रहे हो ? तुम्हारी यह यात्रा तो बड़ी दूरकी जान पड़ती है।’ मुनिकी यह बात सुनकर राजा शत्रुघ्नका शरीर हर्षसे पुलकित हो उठा। वे अपना परिचय देते हुए गद्गद वाणीमें बोले—‘महर्षे ! मेरा अश्व अकस्मात् एक फूलोंसे सुशोभित उद्यानमें चला गया। उसके भीतर एक किनारेपर पहुँचते ही तत्काल उसका शरीर अकड़ गया। इसके कारण हमलेग अपार दुःखके समुद्रमें झूब रहे हैं; आप नौका बनकर हमें बचाइये। हमारे बड़े भाग्य थे, जो दैवात् आपका दर्शन हुआ। घोड़ेकी इस अवस्थाका प्रधान कारण क्या है ? यह बतानेकी कृपा कीजिये।’

शत्रुघ्नके इस प्रकार पूछनेपर परम बुद्धिमान् मुनिश्रेष्ठ शौनकने थोड़ी देरतक ध्यान किया। फिर एक ही क्षणमें सारा रहस्य समझमें आ गया। उनकी आँखें आश्वर्यसे खिल उठीं तथा वे दुःख और संशयमें पड़े हुए राजा शत्रुघ्नसे बोले—राजन् ! मैं अश्वके गात्र-स्तम्भका कारण बताता हूँ, सुनो। गौड़ देशके सुरम्य प्रदेशमें, कावेरीके तटपर सात्त्विक नामका एक ब्राह्मण बड़ी भारी तपस्या कर रहा था। वह एक दिन जल पीता, दूसरे दिन हवा पीकर रहता और तीसरे दिन कुछ भी नहीं खाता था। इस प्रकार तीन-तीन दिनका व्रत लेकर वह समय व्यतीत करता था। उसका यह व्रत चल ही रहा था कि सबका विनाश करनेवाले कालने उसे अपने दाढ़ोंमें ले लिया। उस महान् व्रतधारी तपस्वीकी मृत्यु हो गयी। तत्पश्चात् वह सात्त्विक नामका ब्राह्मण सब प्रकारके रलोंसे विभूषित तथा सब तरहकी शोभासे सम्पन्न विमानपर बैठकर मेरुगिरिके शिखरपर गया। वहाँ जम्बू नामकी नदी बहती थी, जिसके किनारे तप और ध्यानमें संलग्न रहनेवाले ऋषि महर्षि निवास करते थे। वह ब्राह्मण वहीं आनन्दमग्न होकर अपनी इच्छाके अनुसार अप्सराओंके साथ विहार करने लगा। अभिमान और मदसे उन्मत्त होकर उसने वहाँ रहनेवाले ऋषियोंके प्रतिकूल बर्ताव किया। इससे रुष्ट होकर उन ऋषियोंने शाप दिया—‘जा, तू राक्षस हो जा; तेरा मुख विकृत हो जाय।’ यह शाप सुनकर ब्राह्मणको बड़ा दुःख हुआ और उसने उन विद्वान् एवं तपस्वी ब्राह्मणोंसे कहा—‘ब्रह्मर्षियो ! आप सब लोग दयालु हैं; मुझपर कृपा कीजिये।’ तब उन्होंने उसपर अनुग्रह करते हुए कहा—‘जिस समय तुम श्रीरामचन्द्रजीके अश्वको अपने वेगसे स्तम्भ कर दोगे, उस समय तुम्हें श्रीरामकी कथा सुननेका अवसर मिलेगा। उसके बाद इस भयङ्कर शापसे तुम्हारी मुक्ति हो जायगी।’ मुनियोंके कथनानुसार उसीने यहाँ राक्षस होकर श्रीरघुनाथजीके अश्वको स्तम्भित किया है; अतः तुम कीर्तनके द्वारा घोड़ेको उसके चंगुलसे छुड़ाओ।’

मुनिका यह कथन सुनकर शत्रुघ्नीयोंका दमन

करनेवाले शत्रुघ्नके मनमें बड़ा विस्मय हुआ। वे शौनकसे बोले—‘कर्मकी बात बड़ी गहन है, जिससे सात्त्विक नामधारी ब्राह्मण अपने महान् कर्मसे स्वर्गमें पहुँचकर भी पुनः राक्षसभावको प्राप्त हो गया। स्वामिन्! आप कर्मके अनुसार जैसी गति होती है, उसका वर्णन कीजिये! जिस कर्मके परिणामसे जैसे नरककी प्राप्ति होती है, उसे बताइये।’

शौनकने कहा—रघुकुलश्रेष्ठ! तुम धन्य हो, जो तुम्हारी बुद्धि सदा ऐसी बातोंको जानने और सुननेमें लगी रहती है। इसमें संदेह नहीं कि तुम इस विषयको भलीभाँति जानते हो; तो भी लोगोंके हितके लिये मुझसे पूछ रहे हो। महाराज! कर्मके स्वरूप विचित्र हैं तथा उनकी गति भी नाना प्रकारकी है; मैं उसका वर्णन करता हूँ सुनो। इस विषयका श्रवण करनेसे मनुष्यको मोक्षकी प्राप्ति हो सकती है।

जो दुष्ट बुद्धिवाला पुरुष पराये धन, परायी संतान और परायी स्त्रीको भोग-बुद्धिसे बलात्पूर्वक अपने अधिकारमें कर लेता है, उसको महाबली यमदूत काल-पाशमें बाँधकर तामिस्त नामक नरकमें गिराते हैं और जबतक एक हजार वर्ष पूरे नहीं हो जाते, तबतक उसीमें रखते हैं। यमराजके प्रचण्ड दूत वहाँ उस पापीको खूब पीटते हैं। इस प्रकार पाप-भोगके द्वारा भलीभाँति क्षेत्र उठाकर अन्तमें वह सूअरकी योनिमें जन्म लेता है और उसमें भी महान् दुःख भोगनेके पश्चात् वह फिर मनुष्यकी योनिमें जाता है; परन्तु वहाँ भी अपने पूर्वजन्मके कलङ्कको सूचित करनेवाला कोई रोग आदिका चिह्न घारण किये रहता है। जो केवल दूसरे प्राणियोंसे ब्रोह करके ही अपने कुटुम्बका पोषण करता है, वह पापपरायण पुरुष अस्थतामिस्त नरकमें पड़ता है। जो लोग यहाँ दूसरे प्राणियोंका वध करते हैं, वे रौरव नरकमें गिराये जाते हैं तथा रुर नामक पक्षी रोषमें भरकर उनका शरीर नोचते हैं। जो अपने पेटके लिये दूसरे जीवोंका वध करता है, उसे यमराजकी आज्ञासे महारौरव नामक नरकमें डाला जाता है। जो पापी अपने पिता और ब्राह्मणसे द्वेष करता है, वह महान् दुःखमय कालसूत्र

नरकमें, जिसका विस्तार दस हजार योजन है, पड़ता है। जो गौओंसे ब्रोह करता है, उसे यमराजके किञ्चुर नरकमें डालकर पकाते हैं; वह भी थोड़े समयतक नहीं, गौओंके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने ही हजार वर्षोंतक। जो इस पृथ्वीका राजा होकर दण्ड न देने योग्य पुरुषको दण्ड देता है तथा लोभवश (अन्यायपूर्वक) ब्राह्मणको भी शारीरिक दण्ड देता है, उसे सूअरके समान मुँहवाले दुष्ट यमदूत पीड़ा देते हैं। तत्पश्चात् वह शेष पापोंसे छुटकारा पानेके लिये दुष्ट योनियोंमें जन्म ग्रहण करता है। जो मनुष्य मोहवश ब्राह्मणों तथा गौओंके थोड़े-से भी द्रव्य, धन अथवा जीविकाको लेते या लूटते हैं, वे परलोकमें जानेपर अन्धकूप नामक नरकमें गिराये जाते हैं। वहाँ उनको महान् कष्ट भोगना पड़ता है। जो जीभके लिये आतुर हो लोलुपतावश स्वयं ही मधुर अन्न लेकर खा जाता है, देवताओं तथा सुहृदोंको नहीं देता, वह निश्चय ही ‘कृमिभोजन’ नामक नरकमें पड़ता है। जो मनुष्य सुवर्ण आदिका अपहरण अथवा ब्राह्मणके धनकी चोरी करता है, वह अत्यन्त दुःखदायक ‘संदंश’ नामक नरकमें गिरता है।

जो मूढ़ बुद्धिवाला पुरुष केवल अपने शरीरका पोषण करता है, दूसरेको नहीं जानता, वह तपाये हुए तेलसे पूर्ण अत्यन्त भयंकर कुम्भीपाक नरकमें डाला जाता है। जो पुरुष मोहवश अगम्या स्त्रीको भार्या-बुद्धिसे भोगना चाहता है, उसे यमराजके दूत उसी स्त्रीकी लोहमयी तपायी हुई प्रतिमाके साथ आलिङ्गन करवाते हैं। जो अपने बलसे उन्मत्त होकर बलपूर्वक वेदकी मर्यादाका लोप करते हैं, वे वैतरणी नदीमें ढूबकर मांस और रक्त भोजन करते हैं। जो द्विज होकर शूद्रकी स्त्रीको अपनी भार्या बनाकर उसके साथ गृहस्थी चलाता है, वह निश्चय ही ‘पूयोद’ नामक नरकमें गिरता है। वहाँ उसे बहुत दुःख भोगना पड़ता है। जो धूर्त लोगोंको धोखेमें डालनेके लिये दम्भका आश्रय लेते हैं, वे मूढ़ वैशस नामक नरकमें डाले जाते हैं और वहाँ उनपर यमराजकी मार पड़ती है। जो मूढ़ सर्वर्णा (समान गोत्रवाली) स्त्रीकी योनिमें वीर्यपात करते हैं, उन्हें वीर्यकी नहरमें

डाला जाता है और वे वीर्य पीकर ही रहते हैं। जो लोग चोर, आग लगानेवाले, दुष्ट, जहर देनेवाले और गाँवोंको लूटनेवाले हैं, वे महापातकी जीव 'सारमेयादन' नरकमें गिराये जाते हैं। जो पापराशिका संचय करनेवाला पुरुष झूठी गवाही देता या बलपूर्वक दूसरोंका धन छीन लेता है, वह पापी 'अवीचि' नामक नरकमें नीचे सिर करके डाल दिया जाता है। उसमें महान् दुःख भोगनेके पश्चात् वह पुनः अत्यन्त पापमयी योनिमें जन्म लेता है। जो मूढ़ सुरापान करता है, उसे धर्मराजके दूत गरम-गरम लोहेका रस पिलाते हैं। जो। अपनी विद्या और आचारके घमंडमें आकर गुरुजनोंका अनादर करता है, वह मनुष्य मृत्युके पश्चात् 'क्षार' नरकमें नीचे मुँह करके गिराया जाता है। जो लोग धर्मसे बहिष्कृत होकर विश्वासघात करते हैं, उन्हें अत्यन्त यतनापूर्ण 'शूलप्रोत' नरकमें डाला जाता है। जो चुगली करके सब लोगोंको अपने वचनसे उद्घेगमें डाला करता है, वह 'दंदशूक' नामक नरकमें पड़कर दंदशूकों (सर्पों) द्वारा डँसा जाता है। राजन् ! इस प्रकार पापियोंके लिये अनेकों नरक हैं; पाप करके वे उन्हींमें जाते और अत्यन्त भयङ्कर यातना भोगते हैं। जिन्होंने श्रीरामचन्द्रजीकी कथा नहीं सुनी है तथा दूसरोंका उपकार नहीं किया है, उनको नरकके भीतर सब तरहके दुःख भोगने पड़ते हैं। इस लोकमें भी जिसको अधिक सुख प्राप्त है, उसके लिये वह स्वर्ग कहलाता है तथा जो रोगी और दुःखी है, वे नरकमें ही हैं।

दान-पुण्यमें लगे रहने, तीर्थ आदिका सेवन करने, श्रीरघुनाथजीकी लीलाओंको सुनने अथवा तपस्या करनेसे पापोंका नाश होता है। हरिकीर्तनरूपी नदी ही

मनुष्योंके लिये सब उपायोंसे श्रेष्ठ है। वह पापियोंके सारे पाप-पङ्कको धो डालती है। इस विषयमें कोई अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।\* जो भगवान्‌का अपमान करता है, उसे गङ्गा भी नहीं पवित्र कर सकती। पवित्रसे पवित्र तीर्थ भी उसे पावन बनानेकी शक्ति नहीं रखते। जो ज्ञानहीन होनेके कारण भगवान्‌के लीला-कीर्तनका उपहास करता है, उसको कल्पके अन्ततक भी नरकसे छुटकारा नहीं मिलता। राजन् ! अब तुम जाओ और घोड़ेको संकटसे छुड़ानेके लिये सेवकोंसहित भगवान्‌का चरित्र सुनाओ, जिससे अश्वमें पुनः चलने-फिरनेकी शक्ति आ जाय।

**शोषजी कहते हैं—** शौनकजीकी उपर्युक्त बात सुनकर शत्रुघ्नको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे मुनिको प्रणाम और परिक्रमा करके सेवकोंसहित चले गये। वहाँ जाकर हनुमान्‌जीने घोड़ेके पास श्रीरघुनाथजीके चरित्रका वर्णन किया, जो बड़ी-से-बड़ी दुर्गतिका नाश करनेवाला है। अन्तमें उन्होंने कहा—'देव ! आप श्रीरामचन्द्रजीके कीर्तनके पुण्यसे अपने विमानपर सवार होइये और स्वेच्छानुसार अपने लोकमें विचरण कीजिये। इस कुस्तियोनिसे अब आपका छुटकारा हो जाय।' यह वाक्य सुनकर देवताने कहा—'राजन् ! मैं श्रीरामचन्द्रजी-का कीर्तन सुननेसे पवित्र हो गया। महामते ! अब मैं अपने लोकको जा रहा हूँ; आप मुझे आज्ञा दीजिये।' यह कहकर देवता विमानपर बैठे हुए स्वर्ग चले गये। उस समय यह दृश्य देखकर शत्रुघ्न और उनके सेवकोंको बड़ा विस्मय हुआ। तदनन्तर, वह अश्वगात्रस्तम्भसे मुक्त होकर पक्षियोंसे भरे हुए उस उद्यानमें सब ओर भ्रमण करने लगा।



\* दानपुण्यप्रसंगेन तीर्थादिक्रियया तथा। गमचारित्रसंश्रुत्या तपसा वा क्षयं ब्रजेत्॥  
सर्वेषामप्युपायानां हरिकीर्तिधनी नृणाम्। क्षालयेत् पापिनां पङ्क्षं नात्र कार्या विचारणा॥ (४८। ६५-६६)

राजा सुरथके द्वारा अश्वका पकड़ा जाना, राजाकी भक्ति और उनके प्रभावका वर्णन, अङ्गदका दूत बनकर राजाके यहाँ जाना और राजाका युद्धके लिये तैयार होना

शेषजी कहते हैं—उस श्रेष्ठ अश्वको अनेकों राजाओंसे भरे हुए भारतवर्षमें लीलापूर्वक भ्रमण करते सात महीने व्यतीत हो गये। उसने हिमालयके निकट बहुत-से देशोंमें विचरण किया, किन्तु श्रीरामचन्द्रजीके बलका स्मरण करके कोई उसे पकड़ न सका। अङ्ग, बङ्ग और कलिङ्ग-देशके राजाओंने तो उस अश्वका भलीभाँति स्तवन किया। वहाँसे आगे बढ़नेपर वह राजा सुरथके मनोहर नगरमें पहुँचा, जो अदितिका कुण्डल गिरनेके कारण कुण्डलके ही नामसे प्रसिद्ध था। वहाँके लोग कभी धर्मका उल्लङ्घन नहीं करते थे। वहाँकी जनता प्रतिदिन प्रेमपूर्वक श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण किया करती थी। उस नगरके मनुष्य नित्यप्रति अश्वथ्य और तुलसीकी पूजा करते थे। वे सब-के-सब श्रीरघुनाथजीके सेवक थे। पापसे कोसों दूर रहते थे। वहाँके सुन्दर देवालयोंमें श्रीरघुनाथजीकी प्रतिमा शोभा पाती थी तथा कपटरहित शुद्ध चित्तवाले नगर-निवासी प्रतिदिन वहाँ जाकर भगवान्की पूजा करते थे। उनकी जिह्वापर केवल भगवानका नाम शोभा पाता था, झगड़े-फसादकी चर्चा नहीं। उनके हृदयमें भगवान्का ही ध्यान होता; कामना या फलकी सृति नहीं होती थी। वहाँके सभी देहधारी पवित्र थे। श्रीरामचन्द्रजीकी कथा-वार्तासे ही उनका मनबहलाव होता था। वे सब प्रकारके दुर्व्यसनोंसे रहित थे; अतः कभी भी जुआ नहीं खेलते थे। उस नगरमें धर्मात्मा, सत्यवादी एवं महाबली राजा सुरथ निवास करते थे, जिनका चित्त श्रीरघुनाथजीके चरणोंका स्मरण करके सदा आनन्दमग्न रहा करता था। वे भगवद-प्रेममें मस्त रहते थे। राम-भक्त राजा सुरथकी महिमाका मैं क्या वर्णन करूँ? उनके समस्त गुण भूमण्डलमें विस्तृत होकर सबके पापोंका परिमार्जन कर रहे हैं।

एक समय राजाके कुछ सेवक टहल रहे थे। उन्होंने देखा, चन्दनसे चर्चित अश्वमेधका अश्व आ रहा है। निकटसे देखनेपर उन्हें मालूम हुआ कि यह नेत्र और

मनको मोहनेवाला अश्व श्रीरामचन्द्रजीका छोड़ा हुआ है। यह जानकर वे बड़े प्रसन्न हुए और उत्सुक-भावसे राजसभामें जा वहाँ बैठे हुए महाराजको सूचना देते हुए बोले—‘स्वामिन्! अयोध्या-नगरीके स्वामी जो श्रीरघुनाथजी हैं, उनका छोड़ा हुआ अश्वमेधयोग्य अश्व सर्वत्र भ्रमण कर रहा है। वह अनुचरोंसहित आपके नगरके निकट आ पहुँचा है। महाराज! वह अश्व अत्यन्त मनोहर है, आप उसे पकड़ें।’

**सुरथ बोले**—हम सेवकोंसहित धन्य हैं; क्योंकि हमें श्रीरामचन्द्रजीके मुखचन्द्रका दर्शन होगा। करोड़ों योद्धाओंसे धिरे हुए उस अश्वको आज मैं पकड़ूँगा और तभी छोड़ूँगा। जब श्रीरघुनाथजी चिरकालसे अपना चिन्तन करनेवाले मुझ भक्तपर कृपा करनेके लिये स्वयं वहाँ पदार्पण करें।

शेषजी कहते हैं—ऐसा कहकर राजाने सेवकोंका आज्ञा दी—‘जाओ, अश्वको बलपूर्वक पकड़ लाओ। सामने पड़ जानेपर उसे कदापि न छोड़ना। मुझे ऐसा विश्वास है कि इससे अपना महान् लाभ होगा। ब्रह्मा और इन्द्रके लिये भी जिनका दर्शन दुर्लभ है, उन्हें श्रीराम-चरणोंकी झाँकी हमारे लिये सुलभ होगी। वही स्वजन, पुत्र, बान्धव, पशु अथवा वाहन धन्य है, जिससे श्रीरामचन्द्रजीकी प्राप्ति सम्भव हो; अतः जो स्वर्णपत्रसे शोभा पा रहा है, इच्छानुसार वेगसे चलता है तथा देखनेमें अत्यन्त मनोरम जान पड़ता है, उस यश-सम्बन्धी अश्वको पकड़कर घुड़सालमें बाँध दो। महाराजके ऐसा कहनेपर सेवकोंने जाकर श्रीरामचन्द्रजीके सुन्दर अश्वको पकड़ लिया और दरबारमें लाकर उन्हें अर्पण कर दिया। वात्यायनजी! आप एकाग्रचित होकर सुनें। राजा सुरथके राज्यमें कोई भी ऐसा मनुष्य नहीं था, जो परायी ऊँसे अनुराग रखता हो। दूसरोंके धन लेनेवाले तथा कामलम्पट पुरुषका वहाँ सर्वथा अभाव था। जिह्वासे श्रीरघुनाथजीका कीर्तन करनेके

सिवा दूसरी कोई अनुचित बात किसीके मुँहसे नहीं निकलती थी। वहाँ सभी एकपलीब्रतका पालन करनेवाले थे। दूसरोंपर झूठा कलङ्क लगानेवाला और वेदविरुद्ध पथपर चलनेवाला उस राज्यमें एक भी मनुष्य नहीं था। राजाके सभी सैनिक प्रतिदिन श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करते रहते थे। उनके देशमें पापिष्ठ नहीं थे, किसीके मनमें भी पापका विचार नहीं उठता था। भगवान्‌का ध्यान करनेसे सबके समस्त पाप नष्ट हो गये थे। सभी आनन्दमय रहते थे।

उस देशके राजा जब इस प्रकार धर्मपरायण हो गये तो उनके राज्यमें रहनेवाले सभी मनुष्य मरनेके बाद शान्ति प्राप्त करने लगे। सुरथके नगरमें यमदूतोंका प्रवेश नहीं होने पाता था। जब ऐसी अवस्था हो गयी, तो एक दिन यमराज मुनिका रूप धारण करके राजाके पास गये। उनके शरीरपर वल्कल-वस्त्र और मस्तकपर जटा शोभा पा रही थी। राजसभामें पहुँचकर वे भगवद्भक्त महाराज सुरथसे मिले। उनके मस्तकपर तुलसी और जिहापर भगवान्‌का उत्तम नाम था। वे अपने सैनिकोंको धर्म-कर्मकी बात सुना रहे थे। राजाने भी मुनिको देखा;



वे तपस्याके साक्षात् विग्रह-से जान पड़ते थे। उन्होंने मुनिके चरणोंमें प्रणाम करके उन्हें अर्घ्य, पाद्य आदि निवेदन किया। तत्पश्चात् जब वे सुखपूर्वक आसनपर विराजमान हो विश्राम कर चुके, तब राजाओंमें अग्रगण्य सुरथने उनसे कहा—‘मुनिवर ! आज मेरा जीवन धन्य है ! आज मेरा घर धन्य हो गया !! आप मुझे श्रीरघुनाथजीकी उत्तम कथाएँ सुनाइये। जिन्हे सुननेवाले मनुष्योंका पद-पदपर पाप नाश होता है।’ राजाका ऐसा वचन सुनकर मुनि अपने दाँत दिखाते हुए जोर-जोरसे हँसने और ताली पीटने लगे। राजाने पूछा—‘मुने ! आपके हँसनेका क्या कारण है ? कृपा करके बताइये, जिससे मनको सुख मिले।’ तब मुनि बोले—‘राजन् ! बुद्धि लगाकर मेरी बात सुनो, मैं तुम्हें अपने हँसनेका उत्तम कारण बताता हूँ। तुमने अभी कहा है कि ‘मेरे सामने भगवान्‌की कीर्तिका वर्णन कीजिये।’ मगर मैं पूछता हूँ—भगवान् हैं कौन ? वे किसके हैं और उनकी कीर्ति क्या है ? संसारके सभी मनुष्य अपने कर्मोंके अधीन हैं। कर्मसे ही स्वर्ग मिलता है, कर्मसे ही नरकमें जाना पड़ता है तथा कर्मसे ही पुत्र, पौत्र आदि सभी वस्तुओंकी प्राप्ति होती है। इन्द्रने सौ यज्ञ करके स्वर्गका उत्कृष्ट स्थान प्राप्त किया तथा ब्रह्माजीको भी कर्मसे ही सत्य नामक अद्भुत लोक उपलब्ध हुआ। कर्मसे बहुतोंको सिद्धि प्राप्त हुई है। मरुत् आदि कर्मसे ही लोकेश्वर-पदको प्राप्त हुए हैं; इसलिये तुम भी यज्ञ-कर्मोंमें लगो, देवताओंका पूजन करो। इससे सम्पूर्ण भूमण्डलमें तुम्हारी उज्ज्वल कीर्तिका विस्तार होगा।’

राजा सुरथका मन एकमात्र श्रीरघुनाथजीमें लगा हुआ था; अतः मुनिके उपर्युक्त वचन सुनकर उनका हृदय क्रोधसे क्षुब्ध हो उठा और वे कर्मविशारद ब्राह्मण-देवतासे इस प्रकार बोले—‘ब्राह्मणाधम ! यहाँ नक्षर फल देनेवाले कर्मकी बात न करो। तुम लोकमें निन्दाके पात्र हो, इसलिये मेरे नगर और प्रान्तसे बाहर चले जाओ [इन्द्र और ब्रह्माका दृष्टान्त क्या दे रहे हो ?] इन्द्र शीघ्र ही अपने पदसे छोष होंगे, किन्तु श्रीरामचन्द्रजीकी सेवा करनेवाले मनुष्य कभी नीचे नहीं गिरेंगे। धुव,

प्रह्लाद और विभीषणको देखो तथा अन्य रामभक्तोंपर भी दृष्टिपात करो; वे कभी अपनी स्थितिसे ब्रष्ट नहीं होते। जो दुष्ट श्रीरामकी निन्दा करते हैं, उन्हें यमराजके दूत कालपाशसे बाँधकर लोहेके मुद्गरोंसे पीटते हैं। तुम ब्राह्मण हो, इसलिये तुम्हें शारीरिक दण्ड नहीं दे सकता। मेरे सामनेसे जाओ, चले जाओ; नहीं तो तुम्हारी ताड़ना करूँगा।' महाराज सुरथके ऐसा कहनेपर उनके सेवक मुनिको हाथसे पकड़कर निकाल देनेको उद्यत हुए। तब यमराजने अपना विश्ववन्दित रूप धारण करके राजासे कहा—'श्रीरामभक्त ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो, माँगो। सुन्रत ! मैंने बहुत-सी बातें बनाकर तुम्हें प्रलोभनमें डालनेका प्रयत्न किया, किन्तु तुम श्रीरामचन्द्रजीकी सेवासे विचलित नहीं हुए। क्यों न हो, तुमने साधु पुरुषोंका सेवन—महात्माओंका सत्सङ्ग किया है।' यमराजको संतुष्ट देखकर राजा सुरथने कहा—'धर्मराज ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो यह उत्तम वर प्रदान कीजिये—जबतक मुझे श्रीराम न मिलें, तबतक मेरी मृत्यु न हो। आपसे मुझे कभी भय न हो।' तब यमराजने कहा—'राजन् ! तुम्हारा यह कार्य सिद्ध होगा। श्रीरघुनाथजी तुम्हारे सब मनोरथ पूर्ण करेंगे।' यों कहकर धर्मराजने हरिभक्तिपरायण राजाकी प्रशंसा की और वहाँसे अदृश्य होकर वे अपने लोकको चले गये।

तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें लगे रहनेवाले धर्मात्मा राजाने अत्यन्त हर्षमें भरकर अपने सेवकोंसे कहा—'मैंने महाराज श्रीरामचन्द्रजीके अश्वको पकड़ा है; इसलिये तुम सब लोग युद्धके लिये तैयार हो जाओ। मैं जानता हूँ, तुमने युद्ध-कलामें पूरी प्रवीणता प्राप्त की है।' महाराजकी ऐसी आज्ञा पाकर उनके सभी महाबली योद्धा थोड़ी ही देरमें तैयार हो गये और शीघ्रतापूर्वक दरबारके सामने उपस्थित हुए। राजाके दस वीर पुत्र थे, जिनके नाम थे—चम्पक, मोहक, रिपुञ्ज, दुर्वार, प्रतापी, बलमोदक, हर्यक्ष, सहदेव, भूरिदेव तथा असुतापन। ये सभी अत्यन्त उत्साहपूर्वक तैयार हो युद्धक्षेत्रमें जानेकी इच्छा प्रकट करने लगे।

इधर शत्रुघ्ने शीघ्रताके साथ आकर अपने

सेवकोंसे पूछा—'यज्ञ-सम्बन्धी अश्व कहाँ है ?' वे बोले—'महाराज ! हमलोग पहचानते तो नहीं, परन्तु कुछ योद्धा आये थे, जो हमें हटाकर घोड़ेको साथ ले इस नगरमें गये हैं।' उनकी बात सुनकर शत्रुघ्ने सुमतिसे कहा—'मन्त्रिवर ! यह किसका नगर है ? कौन इसका स्वामी है, जिसने मेरे अश्वका अपहरण किया है ?' मन्त्री बोले—'राजन् ! यह परम मनोहर नगर कुण्डलपुरके नामसे प्रसिद्ध है। इसमें महाबली धर्मात्मा राजा सुरथ निवास करते हैं। वे सदा धर्ममें लगे रहते हैं। श्रीरामचन्द्रजीके युगल चरणोंके उपासक हैं। श्रीहनुमान्‌जीकी भाँति ये भी मन, वाणी और क्रियाद्वारा भगवान्‌की सेवामें ही तत्पर रहते हैं।'

शत्रुघ्न बोले—यदि इन्होंने ही श्रीरघुनाथजीके अश्वका अपहरण किया हो तो इनके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये ?

सुमतिने कहा—महाराज ! राजा सुरथके पास कोई बातचीत करनेमें कुशल दूत भेजना चाहिये।

यह सुनकर शत्रुघ्ने अङ्गदसे विनययुक्त वचन कहा—'बालिकुमार ! यहाँसे पास ही जो राजा सुरथका विशाल नगर है, वहाँ दूत बनकर जाओ और राजासे कहो कि आपने जानकर या अनजानमें यदि श्रीरामचन्द्रजीके अश्वको पकड़ लिया हो तो उसे लैटा दें अथवा वीरोंसे भरे हुए युद्धक्षेत्रमें पधारें।' अङ्गदने 'बहुत अच्छा' कहकर शत्रुघ्नकी आज्ञा स्वीकार की और राजसभामें गये। वहाँ उन्होंने राजा सुरथको देखा, जो वीरोंके समूहसे घिरे हुए थे। उनके मस्तकपर तुलसीकी मञ्जरी थी और जिह्वासे श्रीरामचन्द्रजीका नाम लेते हुए वे अपने सेवकोंको उन्हींकी कथा सुना रहे थे। राजा भी मनोहर शरीरधारी वानरको देखकर समझ गये कि ये शत्रुघ्नके दूत हैं; तथापि बालिकुमारसे इस प्रकार बोले—'वानरराज ! बताओ, तुम किसलिये और कैसे यहाँ आये हो ! तुम्हारे आनेका सारा कारण जानकर मैं उसके अनुसार कार्य करूँगा।' यह सुनकर वानरराज अङ्गद मन-ही-मन बहुत विस्मित हुए और श्रीरामचन्द्रजीकी उपासनामें लगे रहनेवाले उन नरेशसे

बोले—‘नृपश्रेष्ठ ! मुझे बालिपुत्र अङ्गद समझो । श्रीशत्रुघ्नीने मुझे दूत बनाकर तुम्हारे निकट भेजा है ।



इस समय तुम्हारे कुछ सेवकोंने आकर मेरे यज्ञ-सम्बन्धी घोड़ेको पकड़ लिया है । अज्ञानवश उनके द्वारा सहसा यह बहुत बड़ा अन्याय हो गया है; अब तुम प्रसन्नता-पूर्वक श्रीशत्रुघ्नीके पास चलो और उनके चरणोंमें पड़कर अपने राज्य और पुत्रोंसहित वह अश्व शीघ्र ही समर्पित कर दो । अन्यथा श्रीशत्रुघ्नके बाणोंसे घायल होकर पृथ्वीतलकी शोभा बढ़ाते हुए सदाके लिये सो जाओगे; तुम्हें अपना मस्तक कटा देना होगा ।’

अङ्गदके मुखसे इस तरहकी बातें सुनकर राजा सुरथने उत्तर दिया—‘कपिश्रेष्ठ ! तुम सब कुछ ठीक ही कह रहे हो, तुम्हारा कहना मिथ्या नहीं है; परंतु मैं शत्रुघ्न आदिके भयसे उस अश्वको नहीं छोड़ सकता । यदि भगवान् श्रीराम स्वयं ही आकर मुझे दर्शन दें तो मैं उनके चरणोंमें प्रणाम करके पुत्रोंसहित अपना राज्य, कुटुम्ब, धन, धान्य तथा प्रचुर सेना—सब कुछ समर्पण कर दूँगा । क्षत्रियोंका धर्म ही ऐसा है कि उन्हें स्वामीसे भी विरोध करना पड़ता है । उसमें भी यह धार्मिक युद्ध है ।

मैं केवल श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनकी इच्छासे ही युद्ध कर रहा हूँ । यदि श्रीरघुनाथजी मेरे घरपर नहीं पधारेंगे तो मैं इस समय शत्रुघ्न आदि सभी प्रधान वीरोंको क्षणभरमें जीतकर कैद कर लूँगा ।’

अङ्गद बोले—राजन् ! जिन्होंने मान्धाताके शत्रु लवण नामक दैत्यको खेलमें ही मार डाला था, जिनके द्वारा संग्राममें कितने ही बलवान् वैरी परास्त हुए हैं तथा जिन्होंने इच्छानुसार चलनेवाले विमानपर बैठे हुए विद्युत्माली नामक राक्षसका वध किया है, उन्हीं वीरशिरोमणि श्रीशत्रुघ्नको तुम कैद करोगे ! मुझे तो ऐसा जान पड़ता है, तुम्हारी बुद्धि मारी गयी है । श्रेष्ठ अस्त्रोंका ज्ञाता महाबली पुष्कल, जिसने युद्धमें रुद्रके प्रधान गण वीरभद्रके छके छुड़ा दिये थे, श्रीशत्रुघ्नका भतीजा है । श्रीरघुनाथजीके चरण-कमलोंका चिन्तन करनेवाले हनुमानजी भी सदा उनके निकट ही रहते हैं । तुमने हनुमानजीके अनेकों पराक्रम सुने होंगे । उन्होंने त्रिकूट पर्वतसहित समूची लङ्घापुरीको क्षणभरमें फूँक डाला और दुष्ट बुद्धिवाले राक्षसराज रावणके पुत्र अक्षकुमारको मौतके घाट उतार दिया । अपने सैनिकोंकी जीवन-रक्षाके लिये वे देवताओंसहित द्रोण पर्वतको अपनी पूँछके अग्रभागमें लपेटकर कई बार लाये हैं । हनुमानजीका चरित्र-बल कैसा है, इस बातको श्रीरघुनाथजी ही जानते हैं; इसीलिये अपने प्रिय सेवक इन पवनकुमारको वे मनसे तनिक भी नहीं बिसारते । वानरराज सुग्रीव आदि वीर, जो सारी पृथ्वीको ग्रस लेनेकी शक्ति रखते हैं, राजा शत्रुघ्नका रुख जोहते हुए उनकी सेवा करते हैं । कुशध्वज, नीलरत्न, महान् अस्त्रवेत्ता रिपुताप, प्रतापाग्र्य, सुबाहु, विमल, सुमद और श्रीरामभक्त सत्यवादी राजा वीरमणि—ये तथा अन्य भूपाल श्रीशत्रुघ्नकी सेवामें रहते हैं । इन वीरोंके समुद्रमें एक मच्छरके समान तुम्हारी क्या हस्ती है । इन बातोंको भलीभाँति समझकर चलो । शत्रुघ्नी बड़े दयालु हैं; उन्हें पुत्रोंसहित अश्व समर्पित करके तुम कमलनयन श्रीरामचन्द्रजीके पास जाना । वहीं उनका दर्शन करके अपने शरीर और जन्म दोनोंको सफल बना सकते हो ।

शेषजी कहते हैं—इस प्रकार अनेक तरहकी बातें करते हुए दूतसे राजाने कहा—‘यदि मैं मन, वाणी और क्रियाद्वारा श्रीरामका ही भजन करता हूँ, तो वे मुझे शीघ्र दर्शन देंगे, अन्यथा श्रीरामभक्त हनुमान् आदि वीर मुझे बलपूर्वक बाँध लें और घोड़ेको छीन ले जायें।

दूत ! तुम जाओ, राजा शत्रुघ्नसे मेरी कही हुई बातें सुन दो। अच्छे-अच्छे योद्धा तैयार हों, मैं अभी युद्धके लिये चलता हूँ।’ यह सुनकर वीर अङ्गद मुस्कराते हुए वहाँसे चल दिये। वहाँ पहुँचकर राजा सुरथकी कही हुई बातें उन्होंने ज्यों-की-त्यों कह सुनायीं।



युद्धमें चम्पकके द्वारा पुष्कलका बाँधा जाना, हनुमान्‌जीका चम्पकको मूर्च्छित करके पुष्कलको छुड़ाना, सुरथका हनुमान् और शत्रुघ्न आदिको जीतकर अपने नगरमें ले जाना तथा श्रीरामके आनेसे सबका छुटकारा होना

शेषजी कहते हैं—अङ्गदके मुखसे सुरथका सन्देश सुनकर युद्धकी कलामें निपुणता रखनेवाले समस्त योद्धा संग्रामके लिये तैयार हो गये। सभी वीर उत्साहसे भरे थे, सब-के-सब रण-कर्ममें कुशल थे। वे नाना प्रकारके स्वरोमें ऐसी गर्जनाएँ करते थे, जिन्हे सुनकर कायरोंको भय होता था। इसी समय राजा सुरथ अपने पुत्रों और सैनिकोंके साथ युद्धक्षेत्रमें आये। जैसे समुद्र प्रलयकालमें पृथ्वीको जलसे आप्लावित कर देता है, उसी प्रकार वे हाथी, रथ, घोड़े और पैदल योद्धाओंको साथ ले सारी पृथ्वीको आच्छादित करते हुए दिखायी दिये। उनकी सेनामें शङ्ख-नाद और विजय-गर्जनाका कोलाहल छा रहा था। इस प्रकार राजा सुरथको युद्धके लिये उद्धत देख शत्रुघ्ने सुमतिसे कहा—‘महामते ! ये राजा अपनी विशाल सेनासे घिरकर आ पहुँचे; अब हमलोगोंका जो कर्तव्य हो उसे बताओ।’

सुमतिने कहा—अब यहाँ सब प्रकारके अख-शस्त्रोंका ज्ञान रखनेवाले पुष्कल आदि युद्ध-विशारद वीरोंको अधिक संख्यामें उपस्थित होकर शत्रुओंसे लोहा लेना चाहिये। वायुनन्दन हनुमान्‌जी महान् शौर्यसे सम्पन्न हैं; अतः ये ही राजा सुरथके साथ युद्ध करें।

शेषजी कहते हैं—प्रधान मन्त्री सुमति इस प्रकारकी बातें बता ही रहे थे कि सुरथके उद्धत राजकुमार रण-भूमिमें पहुँचकर अपनी धनुषकी टङ्कार

करने लगे। उन्हें देखकर पुष्कल आदि महाबली योद्धा धनुष लिये अपने-अपने रथोंपर बैठकर आगे बढ़े। उत्तम अख्तोंके ज्ञाता वीर पुष्कल चम्पकके साथ भिड़ गये और महावीरजीसे सुरक्षित होकर द्वैरथ युद्धकी रीतिसे लड़ने लगे। जनककुमार लक्ष्मीनिधिने कुशध्वजको साथ लेकर मोहकका सामना किया। रिपुञ्जयके साथ विमल, दुर्वारके साथ सुबाहु, प्रतापीके साथ प्रतापाग्र्य, बलमोदसे अङ्गद, हर्यक्षसे नीलरत्न, सहदेवसे सत्यवान्, भूरिदेवसे महाबली राजा वीरमणि और असुतापके साथ उग्राश्व युद्ध करने लगे। ये सभी युद्ध-कर्ममें कुशल, सब प्रकारके अख-शस्त्रोंमें प्रवीण तथा बुद्धिविशारद थे; अतः सबने घोर द्वन्द्ययुद्ध किया। वात्स्यायनजी ! इस प्रकार घमासान युद्ध छिड़ जानेपर सुरथके पुत्रोंद्वारा शत्रुघ्नकी सेनाका भारी संहार हुआ। युद्ध आरम्भ होनेके पहले पुष्कलने चम्पकसे कहा—‘राजकुमार ! तुम्हारा क्या नाम है ? तुम धन्य हो, जो मेरे साथ युद्ध करनेके लिये आ पहुँचे।’

चम्पकने कहा—वीरवर ! यहाँ नाम और कुलसे युद्ध नहीं होगा; तथापि मैं तुम्हें अपने नाम और बलका परिचय देता हूँ। श्रीरघुनाथजी ही मेरी माता तथा वे ही मेरे पिता हैं, श्रीराम ही मेरे बन्धु और श्रीराम ही मेरे स्वजन हैं। मेरा नाम रामदास है, मैं सदा श्रीरामचन्द्रजीकी ही सेवामें रहता हूँ। भक्तोंपर कृपा करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी ही मुझे इस युद्धसे पार लगायेंगे। अब लौकिक दृष्टिसे अपना परिचय देता

हूँ—मैं राजा सुरथका पुत्र हूँ, मेरी माताका नाम वीरवती है। [अपने नामका उच्चारण निषिद्ध है, इसलिये मैं उसे सङ्केतसे बता रहा हूँ] मेरे नामका एक वृक्ष होता है, जो वसन्तऋतुमें खिलकर अपने आस-पासके सभी प्रदेशोंको शोभासम्पन्न बना देता है। यद्यपि उसका पुष्प रसका भण्डार होता है; तथापि मधुसे मोहित भ्रमर उसका परित्याग कर देते हैं—उससे दूर ही रहते हैं। वह फूल जिस नामसे पुकारा जाता है, उसे ही मेरा भी मनोहर नाम समझो। अच्छा, अब तुम इस संग्राममें अपने बाणोंद्वारा युद्ध करो; मुझे कोई भी जीत नहीं सकता। मैं अभी अपना अद्भुत पराक्रम दिखाता हूँ।

चम्पककी बात सुनकर पुष्कलका चित्त सन्तुष्ट हो गया। अब वे उसके ऊपर करोड़ों बाणोंकी वर्षा करने लगे। तब चम्पकने भी कुपित होकर अपने धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और शत्रु-समुदायको विदीर्ण करनेवाले तीखे बाणोंको छोड़ना आरम्भ किया। किन्तु महावीर पुष्कलने उसके उन बाणोंको काट डाला। यह देख चम्पकने पुष्कलकी छातीमें प्रहार करनेके लिये सौ बाणोंका सन्धान किया; किन्तु पुष्कलने तुरंत ही उनके भी टुकड़े-टुकड़े कर डाले तथा अत्यन्त कोपमें भरकर बाणोंकी बौछार आरम्भ कर दी। बाणोंकी वह वर्षा अपने ऊपर आती देख चम्पकने 'साधु-साधु' कहकर पुष्कलकी प्रशंसा करते हुए उन्हें अच्छी तरह घायल किया। पुष्कल सब शस्त्रोंके ज्ञाता थे। उन्होंने चम्पकको महापराक्रमी जानकर अपने धनुषपर ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया। उधर चम्पक भी कुछ कम नहीं था, उसने भी सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी विद्वत्ता प्राप्त की थी। पुष्कलके छोड़े हुए अस्त्रको देखकर उसे शान्त करनेके लिये उसने भी ब्रह्मास्त्रका ही प्रयोग किया। दोनों अस्त्रोंके तेज जब एकत्रित हुए, तो लोगोंने समझा अब प्रलय हो जायगा। किन्तु जब शत्रुका अस्त्र अपने अस्त्रसे मिलकर एक हो गया तो चम्पकने पुनः उसे शान्त कर दिया।

चम्पकका वह अद्भुत कर्म देखकर पुष्कलने 'खड़ा रह, खड़ा रह' कहते हुए उसपर असंख्य बाणोंका प्रहार

किया। किन्तु महामना चम्पकने पुष्कलके छोड़े हुए बाणोंकी परवा न करके उनके प्रति भयङ्कर बाण—रामास्त्रका प्रयोग किया। पुष्कल उसे काटनेका विचार कर रहे थे कि उस बाणने आकर उन्हें बाँध लिया। इस प्रकार वीरवर चम्पकने पुष्कलको बाँधकर अपने रथपर बिठा लिया। उनके बाँधे जानेपर सेनामें महान् हाहाकार मचा। समस्त योद्धा भागकर शत्रुघ्नके पास चले गये। उन्हें भागते देख शत्रुघ्ने हनुमान्-जीसे पूछा—'मेरी सेना तो बहुतेरे वीरोंसे अलङ्कृत है; फिर किस वीरने उसे भगाया है।' तब हनुमान्-जीने कहा—'राजन्! शत्रुवीरोंका दमन करनेवाला वीरवर चम्पक पुष्कलको बाँधकर लिये जा रहा है।' उनकी ऐसी बात सुनकर शत्रुघ्न क्रोधसे जल उठे और पवनकुमारसे बोले—'आप शीघ्र ही पुष्कलको राजकुमारके बन्धनसे छुड़ाइये।' यह सुनकर हनुमान्-जीने कहा—'बहुत अच्छा।' फिर वे पुष्कलको चम्पककी कैदसे मुक्त करनेके लिये चल दिये। हनुमान्-जीको उन्हें छुड़ानेके लिये आते देख चम्पकको बड़ा क्रोध हुआ और उसने उनके ऊपर सैकड़ों-हजारों बाणोंका प्रहार किया। परन्तु उन्होंने शत्रुके छोड़े हुए समस्त सायकोंको चूर्ण कर डाला और एक शाल हाथमें लेकर राजकुमारपर दे मारा। चम्पक भी बड़ा बलवान् था। उसने हनुमान्-जीके चलाये हुए शालको तिल-तिल करके काट डाला। तब हनुमान्-जीने उसके ऊपर बहुत-सी शिलाएँ केंकी; परन्तु उन सबको भी उसने क्षणभरमें चूर्ण कर दिया। यह देख हनुमान्-जीके हृदयमें बहुत क्रोध हुआ। वे यह सोचकर कि यह राजकुमार बहुत पराक्रमी है; उसके पास आये और उसे हाथसे पकड़कर आकाशमें उड़ गये। अब चम्पक आकाशमें ही खड़ा होकर हनुमान्-जीसे युद्ध करने लगा। उसने बाहुयुद्ध करके कपिश्रेष्ठ हनुमान्-जीको बहुत चोट पहुँचायी। उसका बल देखकर हनुमान्-जीने हँसते-हँसते पुनः उसका एक पैर पकड़ लिया और उसे सौ बार धुमाकर हाथीके हौदेपर पटक दिया। वहाँसे धरतीपर गिरकर वह बलवान् राजकुमार मूर्च्छित हो गया। उस समय चम्पकके अनुगामी सैनिक

हाहाकर करके चीख उठे और हनुमान्‌जीने चम्पकके पाशमें बँधे हुए पुष्कलको छुड़ा लिया।

चम्पकको पृथ्वीपर पड़ा देख बलवान्‌ राजा सुरथ पुत्रके दुःखसे व्याकुल हो उठे और रथपर सवार हो हनुमान्‌जीके पास गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने कहा— 'कपिश्रेष्ठ ! तुम धन्य हो ! तुम्हारा बल और पराक्रम महान्‌ हैं; जिसके द्वारा राक्षसोंकी पुरी लङ्घनमें तुमने श्रीरघुनाथजीके बड़े-बड़े कार्य सिद्ध किये हैं। निःसन्देह तुम श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंके सेवक और भक्त हो। तुम्हारी वीरताके लिये क्या कहना है। तुमने मेरे बलवान्‌ पुत्र चम्पकको रण-भूमिमें गिरा दिया है। कपीश्वर ! अब तुम सावधान हो जाओ। मैं इस समय तुम्हें बाँधकर अपने नगरमें ले जाऊँगा। मैंने बिलकुल सत्य कहा है।'

हनुमान्‌जीने कहा—राजन्‌ ! तुम श्रीरघुनाथजीके चरणोंका चिन्तन करनेवाले हो और मैं भी उन्होंका सेवक हूँ। यदि मुझे बाँध लोगे तो मेरे प्रभु बलपूर्वक तुम्हारे हाथसे छुटकारा दिलायेंगे। वीर ! तुम्हारे मनमें जो बात है, उसे पूर्ण करो। अपनी प्रतिज्ञा सत्य करो। वेद कहते हैं, जो श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करता है, उसे कभी दुःख नहीं होता।

शोषजी कहते हैं—उनके ऐसा कहनेपर राजा सुरथने पवनकुमारकी बड़ी प्रशंसा की और सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए भयंकर बाणोंद्वारा उन्हें अच्छी तरह घायल किया। वे बाण हनुमान्‌जीके शरीरसे रक्त निकाल रहे थे; तो भी उन्होंने उनकी परवान की और राजाके धनुषको अपने दोनों हाथोंसे पकड़कर तोड़ डाला। हनुमान्‌जीके द्वारा अपने धनुषको प्रत्यञ्चासहित टूटा हुआ देख राजाने दूसरा धनुष हाथमें लिया। किन्तु पवनकुमारने उसे भी छीनकर क्रोधपूर्वक तोड़ डाला। इस प्रकार उन्होंने राजाके अस्सी धनुष खण्डित कर दिये तथा क्षण-क्षणपर महान्‌ रोषमें भरकर वे बारम्बार गर्जना करते थे। तब राजाके क्रोधकी सीमा न रही। उन्होंने भयंकर शक्ति हाथमें ली। उस शक्तिसे आहत होकर हनुमान्‌जी गिर पड़े, किन्तु थोड़ी ही देरमें उठकर खड़े हो

गये। फिर अत्यन्त क्रोधमें भर उन्होंने राजाका रथ पकड़ लिया और उसे लेकर बड़े वेगसे आकाशमें उड़ गये। ऊपर जाकर बहुत दूरसे उन्होंने रथको छोड़ दिया और वह रथ धरतीपर गिरकर क्षणभरमें चकनाचूर हो गया। राजा दूसरे रथपर जा चढ़े और बड़े वेगसे हनुमान्‌जीका सामना करनेके लिये आये। किन्तु क्रोधमें भरे हुए पवनकुमारने तुरंत ही उस रथको भी चौपट कर डाला। इस प्रकार उन्होंने राजाके उनचास रथ नष्ट कर दिये। उनका यह पराक्रम देखकर राजाके सैनिकों तथा स्वयं राजाको भी बड़ा विस्मय हुआ। वे कुपित होकर बोले— 'वायुनन्दन ! तुम धन्य हो ! कोई भी पराक्रमी ऐसा कर्म नं तो कर सकता है और न करेगा। अब तुम एक क्षणके लिये उहर जाओ, जबतक कि मैं अपने धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ा रहा हूँ। तुम वायुदेवताके सुपुत्र श्रीरघुनाथजीके चरण-कमलोंके चञ्चलीक हो [अतः मेरी बात मान लो]।' ऐसा कहकर रोषमें भरे हुए राजा सुरथने अपने धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और भयङ्कर बाणमें पाशुपत अस्त्रका सन्धान किया। लोगोंने देखा हनुमान्‌जी पाशुपत अस्त्रसे बँध गये। किन्तु दूसरे ही क्षण उन्होंने मन-ही-मन भगवान्‌ श्रीरामका स्मरण करके उस बन्धनको तोड़ डाला और सहसा मुक्त होकर वे राजासे युद्ध करने लगे। सुरथने जब उन्हें बन्धनसे मुक्त देखा तो महाबलवान्‌ मानकर ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया। परन्तु महावीर पवनकुमार उस अस्त्रको हँसते-हँसते निगल गये। यह देख राजाने श्रीरघुनाथजीका स्मरण किया। उनका स्मरण करके उन्होंने अपने धनुषपर रामास्त्रका प्रयोग किया और हनुमान्‌जीसे कहा— 'कपिश्रेष्ठ ! अब तुम बँध गये।' हनुमान्‌जी बोले— 'राजन्‌ ! क्या करूँ, तुमने मेरे स्वामीके अस्त्रसे ही मुझे बाँधा है, किसी दूसरे प्राकृत अस्त्रसे नहीं; अतः मैं उसका आदर करता हूँ। अब तुम मुझे अपने नगरमें ले चलो। मेरे प्रभु दयाके सागर हैं; वे स्वयं ही आकर मुझे छुड़ायेंगे।'

हनुमान्‌जीके बँधे जानेपर पुष्कल कुपित हो

राजाके सामने आये। उन्हें आते देख राजाने आठ बाणोंसे बाँध डाला। यह देख बलवान् पुष्कलने राजापर कई हजार बाणोंका प्रहार किया। दोनों एक-दूसरेपर मन्त्र-पाठपूर्वक दिव्याख्योंका प्रयोग करते और दोनों ही शान्त करनेवाले अख्योंका प्रयोग करके एक-दूसरेके चलाये हुए अख्योंका निवारण करते थे। इस प्रकार उन दोनोंमें बड़ा घमासान युद्ध हुआ, जो वीरोंके रोंगटे खड़े कर देनेवाला था। तब राजाको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने एक नाराचका प्रयोग किया। पुष्कल उसको काटना ही चाहते थे कि वह नाराच उनकी छातीमें आ लगा। वे महान् तेजस्वी थे, तो भी उसका आघात न सह सके, उन्हें मूर्छा आ गयी।

पुष्कलके गिर जानेपर शत्रुओंको ताप देनेवाले शत्रुघ्निको बड़ा क्रोध हुआ। वे रथपर बैठकर राजा सुरथके पास गये और उनसे कहने लगे—‘राजन्! तुमने यह बड़ा भारी पराक्रम कर दिखाया, जो पवनकुमार हनुमान्-जीको बाँध लिया। अभी ठहरो, मेरे वीरोंको रण-भूमिमें गिराकर तुम कहाँ जा रहे हो। अब मेरे सायकोंकी मार सहन करो।’ शत्रुघ्निका यह वीरोचित भाषण सुनकर बलवान् राजा सुरथ मन-ही-मन श्रीरामचन्द्रजीके मनोहर चरण-कमलोंका चिन्तन करते हुए बोले—‘वीरवर! मैंने तुम्हारे पक्षके प्रधान वीर हनुमान् आदिको रणमें गिरा दिया; अब तुम्हें भी समराङ्गणमें सुलाऊँगा। श्रीरघुनाथजीका स्मरण करो, जो यहाँ आकर तुम्हारी रक्षा करेंगे; अन्यथा मेरे सामने युद्धमें आकर जीवनकी रक्षा असम्भव है।’ ऐसा कहकर राजा सुरथने शत्रुघ्निको हजारों बाणोंसे घायल किया। उन्हें बाण-समूहोंकी बौछार करते देख शत्रुघ्नने आग्नेयाख्यका प्रयोग किया। वे शत्रुके बाणोंको दग्ध करना चाहते थे। शत्रुघ्नके छोड़े हुए उस अख्यको राजा सुरथने वारुणाख्यके द्वारा बुझा दिया और करोड़ों बाणोंसे उन्हें घायल किया। तब शत्रुघ्नने अपने धनुषपर मोहन नामक महान् अख्यका सन्धान किया। वह अद्भुत अख्य समस्त वीरोंको मोहित करके उन्हें निद्रामें निमग्न कर देनेवाला था। उसे देख राजाने भगवान्-का स्मरण करते

हुए कहा—‘मैं श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करके ही मोहित रहता हूँ, दूसरी कोई वस्तु मुझे मोहनेवाली नहीं जान पड़ती। माया भी मुझसे भय खाती है।’ वीर राजाके ऐसा कहनेपर भी शत्रुघ्नने वह महान् अख्य उनके ऊपर छोड़ ही दिया। किन्तु राजा सुरथके बाणसे कटकर वह रण-भूमिमें गिर पड़ा। तदनन्तर, सुरथने अपने धनुषपर एक प्रज्वलित बाण चढ़ाया और शत्रुघ्निको लक्ष्य करके छोड़ दिया। शत्रुघ्नने अपने पास पहुँचनेसे पहले उसे मार्गमें ही काट दिया, तो भी उसका फलवाला अग्रिम भाग उनकी छातीमें धूँस गया। उस बाणके आघातसे मूर्छित होकर शत्रुघ्न रथपर गिर पड़े; फिर तो सारी सेना हाहाकार करती हुई भाग चली। संग्राममें रामभक्त सुरथकी विजय हुई। उनके दस पुत्रोंने भी अपने साथ लड़नेवाले दस वीरोंको मूर्छित कर दिया था। वे रणभूमिमें ही कहीं पड़े हुए थे।

तदनन्तर, सुग्रीवने जब देखा कि सारी सेना भाग गयी और स्वामी भी मूर्छित होकर पड़े हैं, तो वे स्वयं ही राजा सुरथसे युद्ध करनेके लिये गये और बोले—‘राजन्! तुम हमारे पक्षके सब लोगोंको मूर्छित करके कहाँ चले जा रहे हो? आओ और शीघ्र ही मेरे साथ युद्ध करो।’ यो कहकर उन्होंने डालियोंसहित एक विशाल वृक्ष उखाड़ लिया और उसे बलपूर्वक राजाके मस्तकपर दे मारा। उसकी चोट खाकर महाबली नरेशने एक बार सुग्रीवकी ओर देखा और फिर अपने धनुषपर तीखे बाणोंका सन्धान करके अत्यन्त बल तथा पौरुषका परिचय देते हुए रोषमें भरकर उनकी छातीमें प्रहार किया। किन्तु सुग्रीवने हँसते-हँसते उनके चलाये हुए सभी बाणोंको नष्ट कर दिया। इसके बाद वे राजा सुरथको अपने नखोंसे विदीर्ण करते हुए पर्वतों, शिखरों, वृक्षों तथा हाथियोंको फेंक-फेंककर उन्हें चोट पहुँचाने लगे। तब सुरथने अपने धयङ्कर रामाख्यसे सुग्रीवको भी तुरंत ही बाँध लिया। बन्धनमें पड़ जानेपर कपिराज सुग्रीवको यह विश्वास हो गया कि राजा सुरथ वास्तवमें श्रीरामचन्द्रजीके सच्चे सेवक हैं।

इस प्रकार महाराज सुरथने विजय प्राप्त की। वे

शत्रुपक्षके सभी प्रधान वीरोंको रथपर बिठाकर अपने नगरमें ले गये। वहाँ जाकर वे राज-सभामें बैठे और बैंधे हुए हनुमान्जीसे बोले—‘पवनकुमार ! अब तुम भक्तोंकी रक्षा करनेवाले परमदयालु श्रीरघुनाथजीका स्मरण करौ, जिससे सन्तुष्ट होकर वे तुम्हें तत्काल इस बन्धनसे मुक्त कर दें।’ उनका कथन सुनकर हनुमान्जीने अपनेसहित समस्त वीरोंको बँधा देख रघुकुलमें अवतीर्ण, कमलके समान नेत्रोंवाले, परमदयालु सीतापति श्रीरामचन्द्रजीका सम्पूर्ण इन्द्रियोंसे स्मरण किया। वे मन-ही-मन कहने लगे—‘हा नाथ ! हा पुरुषोत्तम !! हा दयालु सीतापते !!! [आप कहाँ हैं ? मेरी दशापर दृष्टिपात करें] प्रभो ! आपका मुख संभावसे ही शोभासम्पन्न है, उसपर भी सुन्दर कुण्डलोंके कारण तो उसकी सुषमा और भी बढ़ गयी है। आप भक्तोंकी पीड़ाका नाश करनेवाले हैं। मनोहर रूप धारण करते हैं। दयामय ! मुझे इस बन्धनसे शीघ्र मुक्त कीजिये; देर न लगाइये। आपने गजराज आदि भक्तोंको संकटसे बचाया है, दानव-वंशरूपी अग्निकी ज्वालामें जलते हुए देवताओंकी रक्षा की है तथा दानवोंको मारकर उनकी पलियोंके मस्तककी केश-राशिको भी बन्धनसे मुक्त किया है [वे विधवा होनेके कारण कभी केश नहीं बाँधतीं]; करुणानिधे ! अब मेरी भी सुध लीजिये। नाथ ! बड़े-बड़े सप्राद भी आपके चरणोंका पूजन करते हैं, इस समय आप यज्ञकर्ममें लगे

हैं, मुनीश्वरोंके साथ धर्मका विचार कर रहे हैं और यहाँ मैं सुरथके द्वारा गाढ़ बन्धनमें बाँधा गया हूँ। महापुरुष ! देव ! शीघ्र आकर मुझे छुटकारा दीजिये। प्रभो ! सम्पूर्ण देवेश्वर भी आपके चरण-कमलोंकी अर्चना करते हैं। यदि इतने स्मरणके बाद भी आप हमलोगोंको इस बन्धनसे मुक्त नहीं करेंगे तो संसार खुश हो-होकर आपकी हँसी उड़ायेगा; इसलिये अब आप विलम्ब न कीजिये, हमें शीघ्र छुड़ाइये।’\*

जगत्के स्वामी कृपनिधान श्रीरघुनाथजीने हनुमान्जीकी प्रार्थना सुनी और अपने भक्तको बन्धनसे मुक्त करनेके लिये वे तीव्रगामी पुष्पक विमानपर चढ़कर तुरंत चल दिये। हनुमान्जीने देखा, भगवान् आ गये। उनके पीछे लक्षण और भरत हैं तथा साथमें मुनियोंका समुदाय शोभा पा रहा है। अपने स्वामीको आया देख हनुमान्जीने सुरथसे कहा—‘राजन् ! देखो, भगवान् दया करके अपने भक्तको छुड़ानेके लिये आ गये। पूर्वकालमें जिंस प्रकार इन्होंने स्मरण करनेमात्रसे पहुँचकर अनेक भक्तोंको संकटसे मुक्त किया है, उसी प्रकार आज बन्धनमें पड़े हुए मुझको भी छुड़ानेके लिये मेरे प्रभु आ पहुँचे।’

श्रीरामचन्द्रजी एक ही क्षणमें यहाँ आ पहुँचे, यह देखकर राजा सुरथ प्रेममग्न हो गये और उन्होंने भगवान्को सैकड़ों बार प्रणाम किया। श्रीरामने भी चतुर्भुज रूप धारणकर अपने भक्त सुरथको भुजाओंमें

\* इत्युक्तमाकर्ण्य समीरजस्तदा सुबद्धमात्मानमवेक्ष्य वीरान्। संमूच्छिताऽवानुशराविघातपीडायुतान् बन्धनमुक्तयेऽस्मरत्॥  
श्रीरामचन्द्रं रघुवंशजातं सीतापति पङ्कजपत्रनेत्रम्। स्वमुक्तये बन्धनतः कृपालुं सस्मार सर्वैः करणैर्विशोकैः॥  
हनुमानुवाच—

हा नाथ हा नरवरोत्तम हा दयालो सीतापते रुचिरकुण्डलशोभिवक्त्र ।  
भक्तर्तिदाहक मनोहररूपधारिन् मां बन्धनात् सपदि मोचय मा विलम्बम् ॥  
संमोचितास्तु भवता गजपुङ्कवाद्या देवाश्च दानवकुलग्रिसुदद्वामानाः ।  
तत्सुन्दरीशिरसि संस्थितकेशबन्धसंमोचितासि करुणालय मां स्मरस्व ॥  
त्वं यागकर्मनिरतोऽसि मुनीश्वरेर्द्धर्थम् विचारयसि भूमिपतीङ्गपाद ।  
अत्राहमद्य सुरथेन विगाढपाशबद्धोऽस्मि मोचय महापुरुषाशु देव ॥  
तो मोचयस्यथ यदि स्मरणातिरेकात्मं सर्वदेववरपूजितपादपद्म ।  
लोको भवत्तमिदमुल्लसितो हसिष्यत्समाद् विलम्बमिह मा चर मोचयाशु ॥

कसकर छातीसे लगा लिया और आनन्दके आँसुओंसे उनका मस्तक भिगोते हुए कहा—‘राजन् ! तुम धन्य



हो । आज तुमने बड़ा भारी पराक्रम कर दिखाया । कपिराज हनुमान् सबसे बढ़कर बलवान् हैं, किन्तु इनको भी तुमने बाँध लिया ।’ यह कहकर श्रीरघुनाथजीने वानरश्रेष्ठ हनुमान्को बचनसे मुक्त किया तथा जितने योद्धा मूर्च्छित पड़े थे, उन सबपर अपनी दयादृष्टि डालकर उन्हें जीवित कर दिया । असुरोंका विनाश करनेवाले श्रीरामकी दृष्टि पड़ते ही वे सब मूर्च्छा त्याग

कर उठ खड़े हुए और मनोहर रूपधारी श्रीरघुनाथजीकी झाँकी करके उनके चरणोंमें पड़ गये । भगवान् ने उनसे कुशल पूछी तो वे सुखी होकर बोले—‘भगवन् ! आपकी कृपासे सब कुशल है ।’ राजा सुरथने सेवकपर कृपा करनेके लिये आये हुए श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करके उन्हें प्रसन्नतापूर्वक अपना सारा राज्य समर्पित कर दिया और कहा—‘रघुनन्दन ! मैंने आपके साथ अन्याय किया है, उसे क्षमा कीजिये ।’

**श्रीराम बोले**—राजन् ! क्षत्रियोंका यह धर्म ही है । उन्हें स्वामीके साथ भी युद्ध करना पड़ता है । तुमने संग्राममें सप्त वीरोंको सन्तुष्ट करके बड़ा उत्तम कार्य किया ।

भगवान् के ऐसा कहनेपर राजा सुरथने अपने पुत्रोंके साथ उनका पूजन किया । तदनन्तर, श्रीरामचन्द्रजी तीन दिनतक वहाँ ठहरे रहे । चौथे दिन राजाकी अनुमति लेकर वे इच्छानुसार चलनेवाले पुष्टक विमानद्वारा वहाँसे चले गये । उनका दर्शन करके सबको बड़ा विस्मय हुआ और सब लोग उनकी मनोहारिणी कथाएँ कहने-सुनने लगे । इसके बाद महाबली राजा सुरथने चम्पकको अपने नगरके राज्यपर स्थापित कर दिया और स्वयं शत्रुघ्नके साथ जानेका विचार किया । शत्रुघ्नने अपना अश्व पाकर भेरी बजवायी । तथा सब ओर नाना प्रकारके शङ्खोंकी ध्वनि करायी । तत्पश्चात् उन्होंने यज्ञ-संबन्धी अश्वको आगे जानेके लिये छोड़ा और स्वयं राजा सुरथके साथ अनेकों देशोंमें भ्रमण करते रहे, किन्तु कहीं किसी भी बलवान्-ने घोड़ेको नहीं पकड़ा ।

————★————

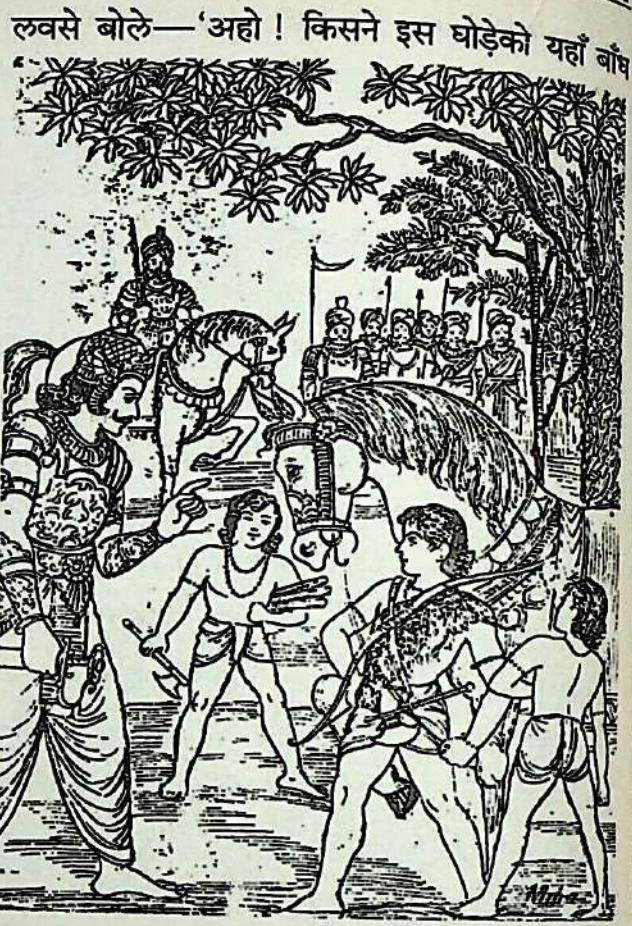
## वाल्मीकिके आश्रमपर लवद्वारा घोड़ेका बँधना और अश्वरक्षकोंकी भुजाओंका काटा जाना

शेषजी कहते हैं—एक दिन प्रातःकाल वह अश्व गङ्गाके किनारे महर्षि वाल्मीकिके श्रेष्ठ आश्रमपर जा पहुँचा, जहाँ अनेकों ऋषि-मुनि निवास करते थे और अग्निहोत्रका धूंउआ उठ रहा था । जानकीजीके पुत्र लव अन्य मुनिकुमारोंके साथ प्रातःकालीन हवन-कर्म करनेके उद्देश्यसे उसके योग्य समिधाएँ लानेके लिये

वनमें गये थे । वहाँ सुवर्णपत्रसे चिह्नित उस यज्ञ-सम्बन्धी अश्वको उन्होंने देखा, जो कुङ्कम, अगरु और कस्तूरीकी दिव्य गन्धसे सुवासित था । उसे देखकर उनके मनमें कौतूहल पैदा हुआ और वे मुनिकुमारोंसे बोले—‘यह मनके समान शीघ्रगामी अश्व किसका है, जो दैवात् मेरे आश्रमपर आ पहुँचा है ? तुम सब लोग

मेरे साथ चलकर इसे देखो, डरना नहीं।' यह कहकर लव तुरंत ही घोड़ेके समीप गये। रघुकुलमें उत्पन्न कुमार लव कंधेपर धनुष-बाण धारण किये उस घोड़ेके समीप ऐसे सुशोभित हुए मानो दुर्जय वीर जयन्त दिखायी दे रहा हो। घोड़ेके ललाटमें जो पत्र बँधा था, उसमें सुप्यष्ट वर्णमालाओंद्वारा कुछ पइक्तियाँ लिखी थीं; जिनसे उसकी बड़ी शोभा हो रही थी। लवने पहुँचकर मुनिपुत्रोंके साथ वह पत्र पढ़ा। पढ़ते ही उन्हें क्रोध आ गया और वे हाथमें धनुष लेकर ऋषिकुमारोंसे बोले, उस समय रोषके कारण उनकी वाणी स्पष्ट नहीं निकल पाती थी। उन्होंने कहा—'अरे ! इस क्षत्रियकी धृष्टता तो देखो, जो इस घोड़ेके भाल-पत्रपर इसने अपने प्रताप और बलका उल्लेख किया है। राम क्या हैं, शत्रुघ्नकी क्या हस्ती है ? क्या ये ही लोग क्षत्रियके कुलमें उत्पन्न हुए हैं ? हमलोग श्रेष्ठ क्षत्रिय नहीं हैं ?' इस प्रकारकी बहुत-सी बातें कहकर लवने उस घोड़ेको पकड़ लिया और समस्त राजाओंको तिनकेके समान समझकर हाथमें धनुष-बाण ले वे युद्धके लिये तैयार हो गये। मुनिपुत्रोंने देखा कि लव घोड़ेका अपहरण करना चाहते हैं, तो वे उनसे बोले—'कुमार ! हम तुम्हें हितकी बात बता रहे हैं, सुनो, अयोध्याके राजा श्रीराम बड़े बलवान् और पराक्रमी हैं। अपने बलका घमंड रखनेवाले इन्द्र भी उनका घोड़ा नहीं छू सकते [फिर दूसरेकी तो बात ही क्या है ?]; अतः तुम इस अश्वको न पकड़ो।'

यह सुनकर लवने कहा—'तुमलोग ब्राह्मण-बालक हो; क्षत्रियोंका बल क्या जानो। क्षत्रिय अपने पराक्रमके लिये प्रसिद्ध होते हैं, किन्तु ब्राह्मणलोग केवल भोजनमें ही पटु हुआ करते हैं। इसलिये तुमलोग घर जाकर माताका परोसा हुआ पक्कान उड़ाओ !' लवके ऐसा कहनेपर मुनिकुमार चुप हो रहे और उनका पराक्रम देखनेके लिये दूर जाकर खड़े हो गये। तदनन्तर, राजा शत्रुघ्नके सेवक वहाँ आये और घोड़ेको बँधा देखकर



लवसे बोले—'अहो ! किसने इस घोड़ेको यहाँ बांध रखा है ? किसके ऊपर आज यमराज कुपित हुए हैं ? लवने तुरंत उत्तर दिया—'मैंने इस उत्तम अश्वको बांध रखा है, जो इसे छुड़ाने आयेगा, उसके ऊपर मेरे बड़े भाई कुश शीघ्र ही क्रोध करेंगे। यमराज भी आजायें तो क्या कर लेंगे ? हमारे बाणोंकी बौछारसे सन्तुष्ट होकर स्वयं ही माथा टेक देंगे और तुरंत अपनी राह लेंगे।'

लवकी बात सुनकर सेवकोंने आपसमें कहा—'यह बेचारा बालक है ! [इसकी बातपर ध्यान नहीं देना चाहिये]।' तत्पश्चात् वे बँधे हुए घोड़ेको खोलनेके लिये आगे बढ़े। यह देख लवने दोनों हाथोंमें धनुष धारणकर शत्रुघ्नके सेवकोंपर क्षुरप्रोंका प्रहार आरम्भ किया। इससे उनकी भुजाएँ कट गयीं और वे शोकसे व्याकुल होकर शत्रुघ्नके पास गये। पूछनेपर सबने लवके द्वारा अपनी बाँहें काटी जानेका समाचार कह सुनाया।

## गुप्तचरोंसे अपवादकी बात सुनकर श्रीरामका भरतके प्रति सीताको वनमें छोड़ आनेका आदेश और भरतकी मूर्छा

वात्स्यायनजी बोले—भगवन् ! पहले आप बता चुके हैं कि श्रीरामचन्द्रजीने एक धोबीके निन्दा करनेपर सीताको अकेली वनमें छोड़ दिया; फिर कहाँ उनके पुत्र हुए, कहाँ उन्हें धनुष-धारणकी क्षमता प्राप्त हुई तथा कहाँ उन्होंने अस्त्रविद्याकी शिक्षा पायी, जिससे वे श्रीरामचन्द्रजीके अश्वका अपहरण कर सके ?

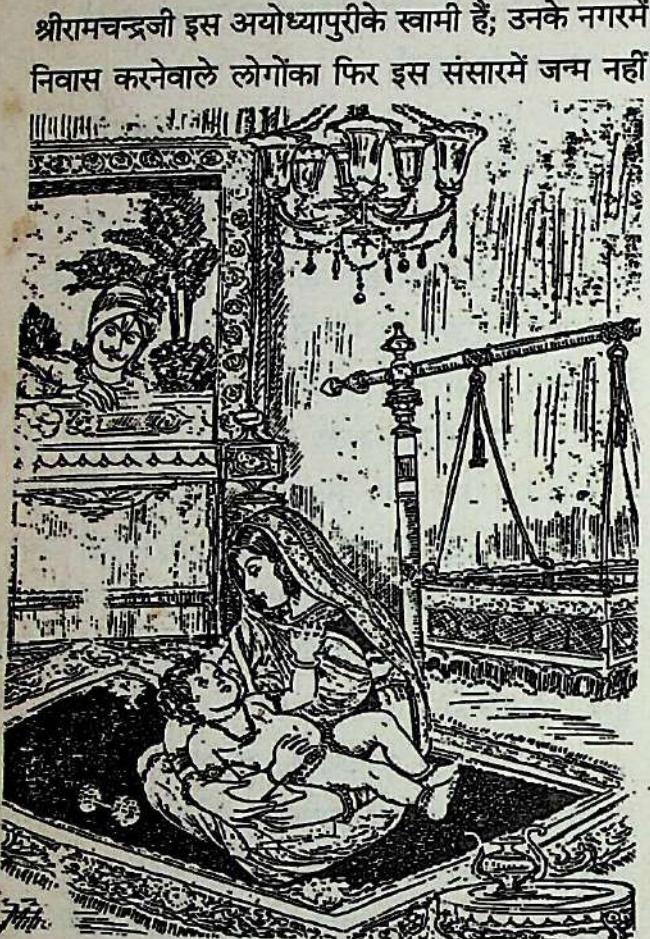
शेषजीने कहा—मुने ! श्रीरामचन्द्रजी धर्मपूर्वक सारी पृथ्वीका पालन करते हुए अपनी धर्मपत्नी महारानी सीता और भाइयोंके साथ अयोध्याका राज्य करने लगे। इसी बीचमें सीताजीने गर्भ धारण किया। धीरे-धीरे पाँच महीने बीत गये। एक दिन श्रीरामने सीताजीसे पूछा—‘देवि ! इस समय तुम्हारे मनमें किस बातकी अभिलाषा है, बताओ; मैं उसे पूर्ण करूँगा।’



सीताजीने कहा—प्राणनाथ ! आपकी कृपासे मैंने सभी उत्तम भोग भोगे हैं और भविष्यमें भी भोगती रहूँगी। इस समय मेरे मनमें किसी विषयकी इच्छा शेष

नहीं है। जिस स्त्रीको आप-जैसे खामी मिलें, जिनके चरणोंकी देवता भी स्तुति करते हैं; उसको सभी कुछ प्राप्त है, कुछ भी बाकी नहीं है। फिर भी यदि आप आग्रहपूर्वक मुझसे मेरे मनकी अभिलाषा पूछ रहे हैं तो मैं आपके सामने सच्ची बात कहती हूँ: नाथ ! बहुत दिन हुए, मैंने लोपामुद्रा आदि पतिव्रताओंके दर्शन नहीं किये। मेरा मन इस समय उन्हींको देखनेके लिये उत्कण्ठित है। वे सब तपस्याकी भंडार हैं, मैं वहाँ जाकर वस्त्र आदिसे उनकी पूजा करूँगी और उन्हें चमकीले रत्न तथा आभूषण भेंट दूँगी; यही मेरा मनोरथ है। प्रियतम !, इसे पूर्ण कीजिये।

इस प्रकार सीताजीके मनोहर वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीको बड़ी प्रसन्नता हुई और वे अपनी प्रियतमासे बोले—‘जनककिशोरी ! तुम धन्य हो ! कल प्रातःकाल जाना और उन तपस्विनी स्त्रियोंका दर्शन करके कृतार्थ होना।’ श्रीरामचन्द्रजीके ये वचन सुनकर सीताजीको बड़ा हर्ष हुआ। वे सोचने लगीं, कल प्रातःकाल मुझे तपस्विनी देवियोंके दर्शन होंगे। तदनन्तर, उस रातमें श्रीरामचन्द्रजीके भेजे हुए गुप्तचर नगरमें गये, उन्हें भेजनेका उद्देश्य यह था कि वे लोग घर-घर जाकर महाराजकी कीर्ति सुनें और देखें [जिससे उनके प्रति लोगोंके मनमें क्या भाव है, इसका पता लग सके]। वे दूत आधी रातके समय चुपकेसे गये। उन्हें प्रतिदिन श्रीरामचन्द्रजीकी मनोहर कथाएँ सुननेको मिलती थीं। उस दिन वे एक धनाढ्यके विशाल भवनमें प्रविष्ट हुए और थोड़ी देरतक वहाँ रुककर श्रीरामचन्द्रजीके सुयशका श्रवण करने लगे। वहाँ सुन्दर नेत्रोंवाली कोई युवती बड़े हर्षमें भरकर अपने नहे-से शिशुको दूध पिला रही थी। उसने बालकको लक्ष्य करके बड़ी मनोहर बात कही—‘बेटा ! तू जी भरकर मेरा मीठा दूध पी ले, पीछे यह तेरे लिये दुर्लभ हो जायगा। नील कमल-दलके समान इयाम वर्णवाले



श्रीरामचन्द्रजी इस अयोध्यापुरीके स्वामी हैं; उनके नगरमें निवास करनेवाले लोगोंका फिर इस संसारमें जन्म नहीं होता। इसीलिये इस अवसर के दूध पीनेका अवसर कैसे मिलेगा। इसलिये मेरे लाल ! तू इस दुर्लभ दूधका बारम्बार पान कर ले। जो लोग श्रीरामका भजन, ध्यान और कीर्तन करेंगे, उन्हें भी कभी माताका दूध सुलभ न होगा।' इस तरह श्रीरामचन्द्रजीके यशरूपी अमृतसे भरे हुए वचन सुनकर वे गुप्तचर बहुत प्रसन्न हुए और दूसरे किसी भाग्यशाली पुरुषके घरमें गये। वे पृथक्-पृथक् विभिन्न घरोंमें जाकर श्रीरामके यशका श्रवण करते थे। एक घरकी बात है, एक गुप्तचर श्रीरघुनाथजीका यश सुननेकी इच्छासे वहाँ आया और क्षणभर रुका रहा। उस घरकी एक सुन्दरी नारी, जिसके नेत्र बड़े मनोहर थे, पलंगपर बैठे हुए कामदेवके समान सुन्दर अपने पतिकी ओर देखकर बोली—'नाथ ! आप मुझे ऐसे लगते हैं, मानो साक्षात् श्रीरघुनाथजी हों।' प्रियतमाके ये मनोहर वचन सुनकर उसके पतिने कहा—'प्रिये ! मेरी बात सुनो, तुम साध्वी हो; अतः तुमने जो कुछ कहा है, वह मनको बहुत ही प्रिय लगनेवाला है। पतिव्रताओंके योग्य

ही यह बात है। सती नारीके लिये उसका पति श्रीरघुनाथजीका ही स्वरूप है; परन्तु कहाँ मेरे-जैसा मन्दभाग्य और कहाँ महाभाग्यशाली श्रीराम। कहाँ कीड़ेकी-सी हस्ती रखनेवाला मैं एक तुच्छ जीव और कहाँ ब्रह्मादि देवताओंसे भी पूजित परमात्मा श्रीराम। कहाँ जुगनू और कहाँ सूर्य ? कहाँ पामर पतिंगा और कहाँ गरुड़। कहाँ बुरे गत्सेसे बहनेवाला गलियोंका गँदला पानी और कहाँ भगवती भागीरथीका पावन जल। इसी प्रकार कहाँ मैं और कहाँ भगवान् श्रीराम, जिनके चरणोंकी धूलि पड़नेसे शिलामयी अहल्या क्षणभरमें भुवन-मोहन सौन्दर्यसे युक्त युवती बन गयी !'

इसी समय दूसरा गुप्तचर दूसरेके घरमें कुछ और ही बातें सुन रहा था। वहाँ कोई कामिनी पलंग-पर बैठकर वीणा बजाती हुई अपने पतिके साथ



श्रीरामचन्द्रजीकी कीर्तिका गान कर रही थी—'स्वामिन् ! हमलोग धन्य हैं, जिनके नगरके स्वामी साक्षात् भगवान् श्रीराम हैं, जो अपनी प्रजाओं पुत्रोंकी भाँति पालते और उसके योगक्षेमकी व्यवस्था करते हैं। उन्होंने बड़े-बड़े दुष्कर कर्म किये हैं, जो दूसरोंके लिये

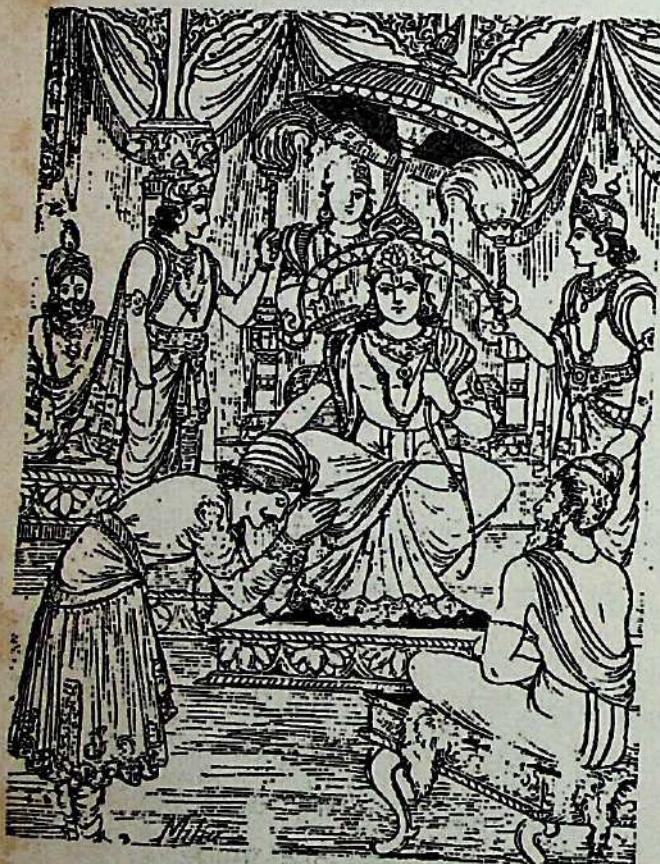
असाध्य हैं। उदाहरणके लिये—‘उन्होंने समुद्रको वशमें किया और उसपर पुल बाँधा। फिर वानरोंसे लङ्घापुरीका विध्वंस कराया और अपने शत्रु रावणको मारकर वे जानकीजीको यहाँ ले आये। इस प्रकार श्रीरामने महापुरुषोंके आचारका पालन किया है।’ पलीके ये मधुर वचन सुनकर पति मुसकराये और उससे इस प्रकार बोले—‘मुझे रावणको मारना और समुद्रका दमन आदि जितने कार्य हैं, वे श्रीरामचन्द्रजीके लिये कोई महान् कर्म नहीं हैं। महान् परमेश्वर ही ब्रह्मा आदिकी प्रार्थनासे लीलापूर्वक इस पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं और बड़े-बड़े पापोंका नाश करनेवाले उत्तम चरित्रका विस्तार करते हैं। कौसल्याका आनन्द बढ़ानेवाले श्रीरामको तुम मनुष्य न समझो। वे ही इस जगत्की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं। केवल लीला करनेके लिये ही उन्होंने मनुष्य-विग्रह धारण किया है। हमलोग धन्य हैं, जो प्रतिदिन श्रीरामके मुख-कमलका दर्शन करते हैं, जो ब्रह्मादि देवोंके लिये भी दुर्लभ है। हमें यह सौभाग्य प्राप्त है, इसलिये हम बड़े पुण्यात्मा हैं।’ गुप्तचरने दरवाजेपर खड़े होकर इस प्रकारकी बहुत-सी बातें सुनीं।



इसके सिवा, एक अन्य गुप्तचर अपने सामने धोबीका घर देखकर वहाँ महाराज श्रीरामका यश सुननेकी इच्छासे गया। किन्तु उस घरका स्वामी धोबी क्रोधमें भरा था। उसकी पली दूसरेके घरमें दिनका अधिक समय व्यतीत करके आयी थी। उसने आँखें लाल-लाल करके पलीको धिक्कारा और उसे लात मारकर कहा—‘निकल जा मेरे घरसे; जिसके यहाँ सारा दिन बिताया है, उसीके घर चली जा। तू दुष्टा है, पतिकी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेवाली है; इसलिये मैं तुझे नहीं रखूँगा।’ उस समय उसकी माताने कहा—‘बेटा ! बहू घरमें आ गयी है, इस बेचारीका त्याग मत करो। यह सर्वथा निरपराध है; इसने कोई कुकर्म नहीं किया है।’ धोबी क्रोधमें तो था ही, उसने माताको जवाब दिया—‘मैं राम-जैसा नहीं हूँ, जो दूसरेके घरमें रही हुई व्यारी पलीको फिरसे ग्रहण कर लूँ। वे राजा हैं; जो कुछ भी करेगे, सब न्याययुक्त ही माना जायगा। मैं तो दूसरेके घरमें निवास करनेवाली भार्याको कदापि नहीं ग्रहण कर सकता।’ धोबीकी बात सुनकर गुप्तचरको बड़ा क्रोध हुआ और उसने तलवार हाथमें लेकर उसे मार डालनेका विचार किया। परन्तु सहसा उसे श्रीरामचन्द्रजीके आदेशका स्मरण हो आया। उन्होंने आज्ञा दी थी, ‘मेरी किसी भी प्रजाको प्राणदण्ड न देना।’ इस बातको समझकर उसने अपना क्रोध शान्त कर लिया। उस समय रजककी बातें सुनकर उसे बहुत दुःख हुआ था, वह कुपित हो बारम्बार उच्छ्वास खींचता हुआ उस स्थानपर गया, जहाँ उसके साथी अन्य गुप्तचर मौजूद थे। वे सब आपसमें मिले और सबने एक-दूसरेको अपना सुना हुआ श्रीरामचन्द्रजीका विश्वन्दित चरित्र सुनाया। अन्तमें उस धोबीकी बात सुनकर उन्होंने आपसमें सलाह की और यह निश्चय किया कि दुष्टोंकी कही हुई बातें श्रीरघुनाथजीसे नहीं कहनी चाहिये। ऐसा विचार करके वे घरपर जाकर सो रहे। उन्होंने अपनी बुद्धिसे यह स्थिर किया था कि कल प्रातःकाल महाराजसे यह समाचार कहा जायगा।

शोषजी कहते हैं—श्रीरघुनाथजीने प्रातःकाल

नित्यकर्मसे निवृत्त होकर वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक सुवर्णदानसे संतुष्ट किया। उसके बाद वे राजसभामें गये। श्रीरामचन्द्रजी सारी प्रजाका पुत्रकी भाँति पालन करते थे। अतः सब लोग उनको प्रणाम करनेके लिये वहाँ गये। लक्ष्मणने राजाके मस्तकपर छत्र लगाया और भरत-शत्रुघ्ने दो चौंकर धारण किये। वसिष्ठ आदि महर्षि तथा सुमन्त्र आदि न्यायकर्ता मन्त्री भी वहाँ उपस्थित हो भगवान्की उपासना करने लगे।



इसी समय वे गुप्तचर अच्छी तरह सज-धजकर सभामें बैठे हुए महाराजको नमस्कार करनेके लिये आये। उत्तम बुद्धिवाले महाराज श्रीरामने [सभा-विसर्जनके पश्चात्] उन सभी गुप्तचरोंको एकान्तमें बुलाकर पूछा—‘तुमलोग सच-सच बताओ। नगरके लोग मेरे विषयमें क्या कहते हैं? मेरी धर्मपत्नीके विषयमें उनकी कैसी धारणा है? तथा मेरे मन्त्रियोंका बर्ताव वे लोग कैसा बतलाते हैं?’

गुप्तचर बोले—नाथ! आपकी कीर्ति इस भूमप्लके सब लोगोंको पवित्र कर रही है। हमलोगोंने घर-घरमें प्रत्येक पुरुष और स्त्रीके मुखसे आपके यशका

बखान सुना है। राजा सगर आदि आपके अनेकानेक पूर्वज अपने मनोरथको सिद्ध करके कृतार्थ हो चुके हैं; किन्तु उनकी भी ऐसी कीर्ति नहीं छायी थी, जैसी इस समय आपकी है। आप-जैसे स्वामीको पाकर सारी प्रजा कृतार्थ हो रही है। उन्हें न तो अकाल-मृत्युका कष्ट है और न रोग आदिका भय। आपकी विस्तृत कीर्ति सुनकर ब्रह्मादि देवताओंको बड़ी लज्जा होती है [क्योंकि आपके सुयशसे उनका यश फीका पड़ गया है]। इस प्रकार आपकी कीर्ति सर्वत्र फैलकर इस समय जगत्के सब लोगोंको पावन बना रही है। महाराज! हम सभी गुप्तचर धन्य हैं कि क्षण-क्षणमें आपकी मनोहर मुखका अवलोकन करते हैं।

उन गुप्तचरोंके मुखसे इस तरहकी बातें सुनकर श्रीरघुनाथजीने अन्तमें एक दूसरे दूतपर दृष्टि डाली; उसके मुखकी आभा कुछ और ढंगकी हो रही थी। उन्होंने पूछा—‘महामते! तुम सच-सच बताओ। लोगोंके मुखसे जो कुछ जैसा भी सुना हो, वह ज्यों-का-त्यों सुना दो; अन्यथा तुम्हें पाप लगेगा।’

गुप्तचरने कहा—स्वामिन्! राक्षसोंके वध आदिसे सम्बन्ध रखनेवाली आपकी सभी कथाओंका सर्वत्र गान हो रहा है—केवल एक बातको छोड़कर। आपकी धर्मपत्नीने जो राक्षसके घरमें कुछ कालतक निवास किया था, उसके सम्बन्धमें लोगोंका अच्छा भाव नहीं है। गत आधी रातकी बात है—एक धोबीने अपनी पलीको, जो दिनमें कुछ देरतक दूसरेके घरमें रहकर आयी थी, धिक्कारा और मारा। यह देखकर उसकी माता बोली—‘बेटा! यह बेचारी निरपराध है, इसे क्यों मारते हो? तुम्हारी स्त्री है, रख लो; निन्दा न करो, मेरी बात मानो।’ तब धोबी कहने लगा—‘मैं राजा राम नहीं हूँ कि इसे रख लूँ। उन्होंने राक्षसके घरमें रही हुई सीताको फिरसे ग्रहण कर लिया, मैं ऐसा नहीं कर सकता। राजा समर्थ होता है, उसका किया हुआ सारा काम न्याययुक्त ही माना जाता है। दूसरे लोग पुण्यात्मा हों, तो भी उनका कार्य अन्याययुक्त ही समझ लिया जाता है।’ उसने बारंबार इस बातको दुहराया कि ‘मैं राजा राम नहीं हूँ।’

उस समय मुझे बड़ा क्रोध हुआ, किन्तु सहसा आपका आदेश स्मरण हो आया [इसलिये मैं उसे दण्ड न दे सका]; अब यदि आप आज्ञा दें तो मैं उसे मार गिराऊँ। यह बात न कहनेयोग्य और न्यायके विपरीत थी, तो भी मैंने आपके आग्रहसे कह डाली है। अब इस विषयमें महाराज ही निर्णायक है; जो उचित कर्तव्य हो, उसका विचार करें।

गुप्तचरका यह वाक्य, जिसका एक-एक अक्षर महाभयानक वज्रके समान मर्मपर आघात करनेवाला था, सुनकर श्रीरामचन्द्रजी बारम्बार उच्छ्वास खींचते हुए उन सब दूतोंसे बोले—‘अब तुमलोग जाओ और भरतको मेरे पास भेज दो।’ वे दूत दुःखी होकर तुरंत ही भरतजीके भवनमें गये और वहाँ उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीका संदेश कह सुनाया। श्रीरघुनाथजीका संदेश सुनकर बुद्धिमान् भरतजी बड़ी उतावलीके साथ राजसभामें गये और वहाँ द्वारपालसे बोले—‘मेरे भ्राता कृपानिधान श्रीरामचन्द्रजी कहाँ हैं?’ द्वारपालने एक रलनिर्मित मनोहर गृहकी ओर संकेत किया। भरतजी वहाँ जा पहुँचे। श्रीरामचन्द्रजीको विकल देखकर उनके मनमें

बड़ा भय हुआ। उन्होंने महाराजसे कहा—‘स्वामिन्! सुखसे आराधनाके योग्य आपका यह सुन्दर मुख इस समय नीचेकी ओर क्यों झुका हुआ है? यह आँसुओंसे भींगा कैसे दिखायी दे रहा है? मुझे इसका पूरा-पूरा यथार्थ कारण बताइये और आज्ञा दीजिये, मैं क्या करूँ?’ भाई भरतने जब गद्गद वाणीसे इस प्रकार कहा, तब धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी बोले—‘प्रिय बन्धु! इस पृथ्वीपर उन्हीं मनुष्योंका जीवन उत्तम है, जिनके सुयशका विस्तार हो रहा हो। अपकीर्तिके मारे हुए मनुष्योंका जीवन तो मरे हुएके ही समान है। आज सम्पूर्ण संसारमें विस्तृत मेरी कीर्तिमयी गङ्गा कल्पित हो गयी। इस नगरमें रहनेवाले एक धोबीने आज जानकीजीके सम्बन्धको लेकर कुछ निन्दाकी बात कह डाली है; इसलिये भाई! बताओ, अब मैं क्या करूँ? क्या आज अपने शरीरको त्याग दूँ या अपनी धर्मपत्नी जानकीका ही परित्याग कर दूँ? दोनोंके लिये मुझे क्या करना चाहिये, इस बातको ठीक-ठीक बताओ।’

भरतजीने पूछा—आर्य! कौन है यह धोबी तथा इसने कौन-सी निन्दाकी बात कही है?

तब श्रीरामचन्द्रजीने धोबीके मुँहसे निकली हुई सारी बातें, जो दूतके द्वारा सुनी थीं, महात्मा भरतसे कह सुनायीं। उन्हें सुनकर भरतने दुःख और शोकमें पड़े हुए भाई श्रीरामसे कहा—‘वीरोद्धारा सुपूजित जानकीदेवी लङ्घमें अग्नि-परीक्षाद्वारा शुद्ध प्रमाणित हो चुकी हैं। ब्रह्माजीने भी इन्हें शुद्ध बतलाया है तथा पूज्य पिता स्वर्गीय महाराज दशरथजीने भी इस बातका समर्थन किया है। यह सब होते हुए भी केवल एक धोबीके कहनेसे विश्वन्दित सीताका परित्याग कैसे किया जा सकता है? ब्रह्मादि देवताओंने भी आपकी कीर्तिका गान किया है, वह इस समय सारे जगत्को पवित्र कर रही है। ऐसी पावन कीर्ति आज केवल एक धोबीके कहनेसे कल्पित या कलङ्कित कैसे हो जायगी? भला, आप अपने इस कल्याणमय विग्रहका परित्याग क्यों करना चाहते हैं? आप ही हमारे दुःखोंको दूर करनेवाले हैं। आपके बिना तो हम सब लोग आज ही मर जायेंगे।



महान् अभ्युदयसे शोभा पानेवाली सीताजी तो आपके बिना क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकतीं। इसलिये मेरा अनुरोध तो यही है कि आप पतित्रता श्रीसीताके साथ रहकर इस विशाल राज्य-लक्ष्मीकी रक्षा कीजिये।'

भरतके ये वचन सुनकर वक्ताओंमें श्रेष्ठ, परम धार्मिक श्रीरघुनाथजी इस प्रकार बोले—'भाई ! तुम जो कुछ कह रहे हो, वह धर्मसम्मत और युक्तियुक्त है।

परन्तु इस समय मैं जो बात कह रहा हूँ उसीको मेरे आज्ञा मानकर करो। मैं जानता हूँ मेरी सीता अग्निद्वारा शुद्ध, पवित्र और लोकपूजित है, तथापि मैं लोकापवादके कारण आज उसका त्याग करता हूँ। इसलिये तुम जनककिशोरीको वनमें ले जाकर छोड़ आओ।' श्रीरामका यह आदेश सुनते ही भरतजी मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े।

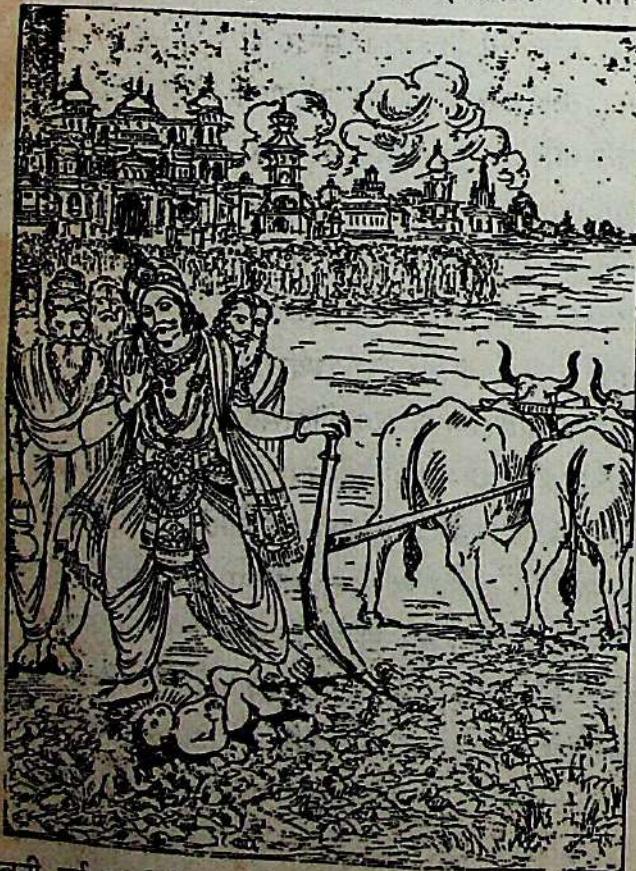


## सीताका अपवाद करनेवाले धोबीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त

वात्स्यायनजीने पूछा—स्वामिन् ! जिनकी उत्तम कीर्ति सम्पूर्ण जगत्को पवित्र करनेवाली है, उन्हीं जानकीदेवीके प्रति उस धोबीने निन्दायुक्त वचन क्यों कहे ? इसका रहस्य बतलाइये ।

शेषजीने कहा—मिथिला नामकी महापुरीमें महाराज जनक राज्य करते थे। उनका नाम था सीरध्वज। एक बार वे यज्ञके लिये पृथ्वी जोत रहे थे। उस समय चौड़े मुँहवाली सीता (फालके धृंसनेसे

प्रादुर्भाव हुआ, जो रतिसे भी बढ़कर सुन्दर थी। इससे राजाको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने भुवनमोहिनी शोभासे सम्पन्न उस कन्याका नाम सीता रख दिया। परम सुन्दरी सीता एक दिन सखियोंके साथ उद्यानमें खेल रही थीं। वहाँ उन्हें शुक पक्षीका एक जोड़ा दिखायी दिया,



बनी हुई गहरी रेखा) के द्वारा एक कुमारी कन्याका



जो बड़ा मनोरम था। वे दोनों पक्षी एक पर्वतकी चोटीपर बैठकर इस प्रकार बोल रहे थे—'पृथ्वीपर श्रीराम नामसे प्रसिद्ध एक बड़े सुन्दर राजा होंगे। उनकी महारानी सीताके नामसे विख्यात होंगी। श्रीरामचन्द्रजी

बड़े बुद्धिमान् और बलवान् होंगे तथा समस्त राजाओंको अपने वशमें रखते हुए सीताके साथ ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य करेंगे। धन्य हैं वे जानकीदेवी और धन्य हैं श्रीराम, जो एक-दूसरेको प्राप्त होकर इस पृथ्वीपर आनन्दपूर्वक विहार करेंगे।'

तोतेके उस जोड़ेको ऐसी बातें करते देख सीताने सोचा कि 'ये दोनों मेरे ही जीवनकी मनोहर कथा कह रहे हैं इन्हें पकड़कर सभी बांतें पूछूँ।' ऐसा विचार कर उन्होंने अपनी सखियोंसे कहा, 'यह पक्षियोंका जोड़ा बहुत सुन्दर है, तुमलोग चुपकेसे जाकर इसे पकड़ लाओ।' सखियाँ उस पर्वतपर गयीं और दोनों सुन्दर पक्षियोंको पकड़ लायीं। लाकर उन्होंने सीताको अर्पण कर दिया। सीता उन पक्षियोंसे बोलीं—'तुम दोनों बड़े सुन्दर हो; देखो, डरना नहीं। बताओ, तुम कौन हो और कहाँसे आये हो? राम कौन है? और सीता कौन है? तुम्हें उनकी जानकारी कैसे हुई? इस सारी बातोंको जल्दी-जल्दी बताओ। मेरी ओरसे तुम्हें भय नहीं होना चाहिये।' सीताके इस प्रकार पूछेपर दोनों पक्षी सब बातें बताने लगे—'देवि! वाल्मीकि नामसे प्रसिद्ध एक बहुत बड़े महर्षि हैं, जो धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ माने जाते हैं। हम दोनों उन्हींके आश्रममें रहते हैं। महर्षिने रामायण नामका एक ग्रन्थ बनाया है, जो सदा ही मनको प्रिय जान पड़ता है। उन्होंने शिष्योंको उस रामायणका अध्ययन कराया है। तथा प्रतिदिन वे सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें संलग्न रहकर उस रामायणके पद्योंका चिन्तन किया करते हैं। रामायणका कलेवर बहुत बड़ा है। हमलोगोंने उसे पूरा-पूरा सुना है। बारम्बार उसका गान और पाठ सुननेसे हमें भी उसका अभ्यास हो गया है। राम और जानकी कौन हैं, इस बातको हम बताते हैं तथा इसकी भी सूचना देते हैं कि श्रीरामके साथ क्रीड़ा करनेवाली जानकीके विषयमें क्या-क्या बातें होनेवाली हैं; तुम ध्यान देकर सुनो। 'महर्षि ऋष्यशृङ्के द्वारा कराये हुए पुरोष्टि-यज्ञके प्रभावसे भगवान् विष्णु राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न—ये चार शरीर धारण करके प्रकट होंगे। देवाङ्गनाएँ भी उनकी उत्तम कथाका गान करेंगी।

श्रीमान् राम महर्षि विश्वमित्रके साथ भाई लक्ष्मणसहित हाथमें धनुष लिये मिथिला पधारेंगे। उस समय वहाँ एक ऐसे धनुषको, जिसका धारण करना दूसरोंके लिये कठिन है, देखकर वे उसे तोड़ डालेंगे और अत्यन्त मनोहर रूपवाली जनककिशोरी सीताको अपनी धर्म-पत्नीके रूपमें ग्रहण करेंगे। फिर उन्हींके साथ श्रीरामचन्द्रजी अपने विशाल साम्राज्यका पालन करेंगे।' ये तथा और भी बहुत-सी बातें वहाँ रहते समय हमारे सुननेमें आयी हैं। सुन्दरी! हमने तुम्हें सब कुछ बता दिया। अब हम जाना चाहते हैं, हमें छोड़ दो।'

कानोंको अत्यन्त मधुर प्रतीत होनेवाली पक्षियोंकी ये बातें सुनकर सीताने उन्हें मनमें धारण किया और पुनः उन दोनोंसे इस प्रकार पूछा—'राम कहाँ होंगे? किसके पुत्र हैं और कैसे वे दूलह-वेषमें आकर जानकीको ग्रहण करेंगे? तथा मनुष्यावतारमें उनका श्रीविग्रह कैसा होगा?' उनके प्रश्न सुनकर शुक्री मन-ही-मन जान गयी कि ये ही सीता हैं। उन्हें पहचानकर वह सामने आ उनके चरणोंपर गिर पड़ी और बोली—'श्रीरामचन्द्रजीका मुख कमलकी कलीके समान सुन्दर होगा। नेत्र बड़े-बड़े तथा खिले हुए पङ्कजकी शोभाको धारण करनेवाले होंगे। नासिका ऊँची, पतली और मनोहारिणी होगी। दोनों भौंहें सुन्दर ढंगसे परस्पर मिली होनेके कारण मनोहर प्रतीत होंगी। भुजाएँ घुटनोंतक लटकी हुई एवं मनको लुभानेवाली होंगी। गला शङ्खके समान सुशोभित और छोटा होगा। वक्षःस्थल उत्तम, चौड़ा एवं शोभासम्पन्न होगा। उसमें श्रीवत्सका चिह्न होगा। सुन्दर जाँघों और कटिभागकी शोभासे युक्त उनके दोनों घुटने अत्यन्त निर्मल होंगे, जिनकी भक्तजन आराधना करेंगे। श्रीरघुनाथजीके चरणारविन्द भी परम शोभायुक्त होंगे; और समस्त भक्तजन उनकी सेवामें सदा संलग्न रहेंगे। श्रीरामचन्द्रजी ऐसा ही मनोहर रूप धारण करनेवाले हैं। मैं उनका क्या वर्णन कर सकती हूँ। जिसके सौ मुख हैं, वह भी उनके गुणोंका बखान नहीं कर सकता। फिर हमारे-जैसे पक्षीकी क्या बिसात है। परम सुन्दर रूप धारण करनेवाली लावण्यमयी लक्ष्मी भी जिनकी झाँकी

करके मोहित हो गयी, उन्हें देखकर पृथ्वीपर दूसरी कौन रुही है, जो मोहित न हो। उनका बल और पराक्रम महान् है। वे अत्यन्त मोहक रूप धारण करनेवाले हैं। मैं श्रीरामका कहाँतक वर्णन करूँ। वे सब प्रकारके ऐश्वर्यमय गुणोंसे युक्त हैं। परम मनोहर रूप धारण करनेवाली वे जानकीदेवी धन्य हैं, जो श्रीरघुनाथजीके साथ हजारों वर्षोंतक प्रसन्नतापूर्वक विहार करेंगी। परन्तु सुन्दरी ! तुम कौन हो ? तुम्हारा नाम क्या है, जो इतनी चतुरता और आदरके साथ श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंका कीर्तन सुननेके लिये प्रश्न कर रही हो !'

पक्षियोंकी ये बातें सुनकर जनककुमारी सीता अपने जन्मकी ललित एवं मनोहर चर्चा करती हुई बोलीं— 'जिसे तुमलोग जानकी कह रहे हो, वह जनककी पुत्री मैं ही हूँ। मेरे मनको लुभानेवाले श्रीराम जब यहाँ आकर मुझे स्वीकार करेंगे, तभी मैं तुम दोनोंको छोड़ूँगी, अन्यथा नहीं; क्योंकि तुमने अपने वचनोंसे मेरे मनमें लोभ उत्पन्न कर दिया है। अब तुम इच्छानुसार खेल करते हुए मेरे घरमें सुखसे रहो और मीठे-मीठे पदार्थ भोजन करो।' यह सुनकर सुग्णीने जानकीसे कहा— 'साध्वी ! हम वनके पक्षी हैं, पेड़ोंपर रहते हैं और सर्वत्र विचरा करते हैं। हमें तुम्हारे घरमें सुख नहीं मिलेगा। मैं गर्भिणी हूँ अपने स्थानपर जाकर बच्चे पैदा करूँगी। उसके बाद फिर तुम्हारे यहाँ आ जाऊँगी।' उसके ऐसा कहनेपर भी सीताने उसे न छोड़ा। तब उसके पतिने विनीत वाणीमें उत्कण्ठित होकर कहा— 'सीता ! मेरी सुन्दरी भार्याको छोड़ दो। इसे क्यों रख रही हो। शोभने ! यह गर्भिणी है, सदा मेरे मनमें बसी रहती है। जब यह बच्चोंको जन्म दे लेगी, तब इसे लेकर फिर तुम्हारे पास आ जाऊँगा।' तोतेके ऐसा कहनेपर जानकीने कहा— 'महामते ! तुम आरामसे जा सकते हो, मगर तुम्हारी यह भार्या मेरा प्रिय करनेवाली है। मैं इसे अपने पास बड़े सुखसे रखूँगी।'

यह सुनकर पक्षी दुःखी हो गया। उसने करुणायुक्त वाणीमें कहा— 'योगीलोग जो बात कहते हैं, वह सत्य ही है—किसीसे कुछ न कहे, मौन होकर रहे, नहीं तो

उन्मत्त प्राणी अपने वचनरूपी दोषके कारण ही बन्धनमें पड़ता है। यदि हम इस पर्वतके ऊपर बैठकर वार्तालाप न करते होते तो हमारे लिये यह बन्धन कैसे प्राप्त होता। इसलिये मौन ही रहना चाहिये।' इतना कहकर पक्षी पुः बोला— 'सुन्दरी ! मैं अपनी इस भार्याके बिना जीवित नहीं रह सकता, इसलिये इसे छोड़ दो। सीता ! तुम बड़ी अच्छी हो [मेरी प्रार्थना मान लो]।' इस तरह नाना प्रकारकी बातें कहकर उसने समझाया, किन्तु सीताने उसकी पलीको नहीं छोड़ा, तब उसकी भार्याने क्रोध और दुःखसे आकुल होकर जानकीको शाप दिया— 'अरी ! जिस प्रकार तू मुझे इस समय अपने पतिसे विलग कर रही है, वैसे ही तुझे स्वयं भी गर्भिणीकी अवस्थामें श्रीरामसे अलग होना पड़ेगा।' यों कहकर पतिवियोगके शोकसे उसके प्राण निकल गये। उसने श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण तथा पुनः-पुनः राम-नामका उच्चारण करते हुए प्राण त्याग किया था, इसलिये उसे ले जानेके लिये एक सुन्दर विमान आया और वह पक्षिणी उसपर बैठकर भगवान्‌के धामको चली गयी।

भार्याकी मृत्यु हो जानेपर पक्षी शोकसे आतुर होकर बोला— 'मैं मनुष्योंसे भरी हुई श्रीरामकी नारी अयोध्यामें जन्म लूँगा तथा मेरे ही वाक्यसे उद्गमें पड़कर इसे पतिके वियोगका भारी दुःख उठाना पड़ेगा।' यह कहकर वह चला गया। क्रोध और सीताजीका अपमान करनेके कारण उसका धोबीकी योनिमें जन्म हुआ। जो बड़े लोगोंकी बुराई करते हुए क्रोधपूर्वक अपने प्राणोंका परित्याग करता है, वह द्विजोंमें श्रेष्ठ ही क्यों न हो, मरनेके बाद नीच-योनिमें उत्पन्न होता है। यही बात उस तोतेके लिये भी हुई। उस धोबीके कथनसे ही सीताजी निन्दित हुई और उन्हें पतिसे वियुक्त होना पड़ा। धोबीके रूपमें उत्पन्न हुए उस तोतेका शाप ही सीताका पतिसे विछोह करानेमें कारण हुआ और इसीसे वे वनमें गयीं। विप्रवर ! विदेहनन्दिनी सीताके सम्बन्धमें तुमने जो बात पूछी थी वह कह दी। अब फिर आगेका वृत्तान्त कहता हूँ, सुनो।

## सीताजीके त्यागकी बातसे शत्रुघ्नकी भी मूर्छा, लक्ष्मणका दुःखित चित्तसे सीताको जंगलमें छोड़ना और वाल्मीकिके आश्रमपर लव-कुशका जन्म एवं अध्ययन

शोषजी कहते हैं—मुने ! भरतको मूर्छित देख श्रीरघुनाथजीको बड़ा दुःख हुआ, उन्होंने द्वारपालसे कहा—‘शत्रुघ्नको शीघ्र मेरे पास बुला लाओ ।’ आज्ञा पाकर वह क्षणभरमें शत्रुघ्नको बुला लाया। आते ही उन्होंने भरतको अचेत और श्रीरघुनाथजीको दुःखी देखा; इससे उन्हें भी बड़ा दुःख हुआ और वे श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम करके बोले—‘आर्य ! यह कैसा दारुण दृश्य है ?’ तब श्रीरामने धोबीके मुखसे निकला हुआ वह लोकनिन्दित वचन कह सुनाया तथा जानकीको त्यागनेका विचार भी प्रकट किया।

तब शत्रुघ्नने कहा—स्वामिन् ! आप जानकीजीके प्रति यह कैसी कठोर बात कह रहे हैं ! भगवान् सूर्यका उदय सारे संसारको प्रकाश पहुँचानेके लिये होता है; किन्तु उल्लुओंको वे पसंद नहीं आते, इससे जगत्की क्या हानि होती है ? इसलिये आप भी सीताको स्वीकार करें, उनका त्याग न करें; क्योंकि वे सती-साध्वी रही हैं। आप कृपा करके मेरी यह बात मान लीजिये।

महात्मा शत्रुघ्नकी यह बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजी बारम्बार वही (सीताके त्यागकी) बात दुहराने लगे, जो एक बार भरतसे कह चुके थे। भाईकी वह कठोर बात सुनते ही शत्रुघ्न दुःखके अगाध जलमें झूब गये और जड़से कटे हुए वृक्षकी भाँति मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। भाई शत्रुघ्नको भी अचेत होकर गिरा देख श्रीरामचन्द्रजीको बहुत दुःख हुआ और वे द्वारपालसे बोले—‘जाओ, लक्ष्मणको मेरे पास बुला लाओ ।’ द्वारपालने लक्ष्मणजीके महलमें जाकर उनसे इस प्रकार निवेदन किया—‘स्वामिन् ! श्रीरघुनाथजी आपको याद कर रहे हैं।’ श्रीरामका आदेश सुनकर वे शीघ्र उनके पास गये। वहाँ भरत और शत्रुघ्नको मूर्छित तथा श्रीरामचन्द्रजीको दुःखसे व्याकुल देखकर लक्ष्मण भी दुःखी हो गये। वे श्रीरघुनाथजीसे बोले—‘राजन् ! यह

मूर्छा आदिका दारुण दृश्य कैसे दिखायी दे रहा है ? इसका सब कारण मुझे शीघ्र बताइये ।’

उनके ऐसा कहनेपर महाराज श्रीरामने लक्ष्मणको वह सारा दुःखमय वृत्तान्त आरप्ससे ही कह सुनाया। सीताके परित्यागसे सम्बन्ध रखनेवाली बात सुनकर वे बारम्बार उच्छ्वास स्वीचते हुए सन्न हो गये। उन्हें कुछ भी उत्तर देते न देख श्रीरामचन्द्रजी शोकसे पीड़ित होकर बोले—‘मैं अपयशसे कलङ्कित हो इस पृथ्वीपर रहकर क्या करूँगा। मेरे बुद्धिमान् भ्राता सदा मेरी आज्ञाका पालन करते थे, किन्तु इस समय दुर्भाग्यवश वे भी मेरे प्रतिकूल बातें करते हैं। कहाँ जाऊँ ? कैसे करूँ ? पृथ्वीके सभी राजा मेरी हँसी उड़ायेंगे।’ श्रीरामको ऐसी बातें करते देख लक्ष्मणने आँसू रोककर व्यथित स्वरमें कहा—‘स्वामिन् ! विषाद न कीजिये। मैं अभी उस धोबीको बुलाकर पूछता हूँ, संसारकी सभी स्त्रियोंमें श्रेष्ठ जानकीजीकी निन्दा उसने कैसे की है ? आपके राज्यमें किसी छोटे-से-छोटे मनुष्यको भी बलपूर्वक कष्ट नहीं पहुँचाया जाता। अतः उसके मनमें जिस तरह प्रतीति हो, जैसे वह संतुष्ट रहे, वैसा ही उसके साथ बर्ताव कीजिये [परंतु एक बार उससे पूछना आवश्यक है]। जनककुमारी सीता मनसे अथवा वाणीसे भी आपके सिवा दूसरेको नहीं जानतीं; अतः उन्हें तो आप स्वीकार ही करें, उनका त्याग न करें। मेरे ऊपर कृपा करके मेरी बात मानें।’

ऐसा कहते हुए लक्ष्मणसे श्रीरामने शोकातुर होकर कहा—‘भाई ! मैं जानता हूँ सीता निष्पाप है; तो भी लोकापवादके कारण उसका त्याग करूँगा। लोकापवादसे निन्दित हो जानेपर मैं अपने शरीरको भी त्याग सकता हूँ; फिर घर, पुत्र, मित्र तथा उत्तम वैभव आदि दूसरी-दूसरी वस्तुओंकी तो बात ही क्या है। इस समय धोबीको बुलाकर पूछनेकी आवश्यकता नहीं है। समय आनेपर सब कुछ अपने-आप हो जायगा; लोगोंके चित्तमें

सीताके प्रति स्वयं ही प्रतीति हो जायगी। जैसे कच्चा घाव चिकित्साके योग्य नहीं होता, समयानुसार जब वह पक जाता है तभी दवासे नष्ट होता है, उसी प्रकार समयसे ही इस कलङ्कका मार्जन होगा। इस समय मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन न करो। पतित्रता सीताको जंगलमें छोड़ आओ।' यह आदेश सुनकर लक्ष्मण एक क्षणतक शोकाकुल हो दुःखमें ढूबे रहे, फिर मन-ही-मन विचार किया—'परशुरामजीने पिताकी आज्ञासे अपनी माताका भी वध कर डाला था; इससे जान पड़ता है, गुरुजनोंकी आज्ञा उचित हो या अनुचित, उसका कभी उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये। अतः श्रीरामचन्द्रजीका प्रिय करनेके लिये मुझे सीताका त्याग करना ही पड़ेगा।'

यह सोचकर लक्ष्मण अपने भाई श्रीरघुनाथजीसे बोले—'सुव्रत ! गुरुजनोंके कहनेसे नहीं करनेयोग्य कार्य भी कर लेना चाहिये, किन्तु उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन कदापि उचित नहीं है। इसलिये आप जो कुछ कहते हैं, उस आदेशका मैं पालन करूँगा।' लक्ष्मणके मुखसे ऐसी बात सुनकर श्रीरघुनाथजीने उनसे कहा—'बहुत अच्छा; बहुत अच्छा; महामते ! तुमने मेरे

चित्तको संतुष्ट कर दिया। अभी-अभी रातमें जानकीने तापसी स्त्रियोंके दर्शनकी इच्छा प्रकट की थी, इसीलिये रथपर बिठाकर जंगलमें छोड़ आओ।' फिर सुमन्त्रके बुलाकर उन्होंने कहा—'मेरा रथ अच्छे-अच्छे घोड़े और वस्त्रोंसे सजाकर तैयार करो।' श्रीरघुनाथजीका आदेश सुनकर वे उनका उत्तम रथ तैयार करके ले आये। रथको आया देख भ्रातृ-भक्त लक्ष्मण उसपर सवार हुए और जानकीजीके महलकी ओर चले। अन्तःपुरमें पहुँचकर वे मिथिलेशकुमारी सीतासे बोले—'माता जानकी ! श्रीरघुनाथजीने मुझे आपके महलमें भेजा है। आप तापसी स्त्रियोंके दर्शनके लिये वनमें चलिये।'

**जानकी बोलीं**—श्रीरघुनाथजीके चरणोंका चिन्तन करनेवाली यह महारानी मैथिली आज धन्य हो गयी, जिसका मनोरथ पूर्ण करनेके लिये खामीने लक्ष्मणको भेजा है। आज मैं वनमें रहनेवाली सुन्दरी तपस्विनियोंको, जो पतिको ही देवता मानती हैं, मस्तक झुकाऊँगी और वस्त्र आदि अर्पण करके उनकी पूजा करूँगी।

ऐसा कहकर उन्होंने सुन्दर-सुन्दर वस्त्र, बहुमूल्य आभूषण, नाना प्रकारके रत्न, उज्ज्वल मोती, कपूर आदि सुगन्धित पदार्थ तथा चन्दन आदि सहस्रों प्रकारकी विचित्र वस्तुएँ साथ ले लीं। ये सारी चीजें दासियोंके हाथों उठवाकर वे लक्ष्मणकी ओर चलीं। अभी घरका चौकड़ भी नहीं लाँघने पायी थीं कि लड़खड़ाकर गिर पड़ीं। यह एक अपशकुन था; परन्तु वनमें जानेकी उत्कण्ठाके कारण सीताजीने इसपर विचार नहीं किया। वे अपना प्रिय कार्य करनेवाले देवरसे बोलीं—'वत्स ! कहाँ वह रथ है, जिसपर मुझे ले चलोगे ?' लक्ष्मणने सुवर्णमय रथकी ओर संकेत किया और जानकीजीके साथ उसपर बैठकर सुमन्त्रसे बोले—'चलाओ घोड़ोंको।' इसी समय सीताका दाहिना नेत्र फड़क उठा, जो भावी दुःखकी सूचना देनेवाला था। साथ ही पुण्यमय पक्षी विपरीत दिशासे होकर जाने लगे। यह सब देखकर जानकीने देवरसे कहा—'वत्स ! मैं तो



तपस्विनियोंके दर्शनकी इच्छासे यात्रा करना चाहती हूँ,



फिर ये दुःख देनेवाले अपशकुन कैसे हो रहे हैं !  
श्रीरामका, भरतका तथा तुम्हारे छोटे भाई शत्रुघ्नका  
कल्याण हो, उनकी प्रजामें सर्वत्र शान्ति रहे, कहीं कोई  
विप्लव या उपद्रव न हो ।'

जानकीजीको ऐसी बातें करते देख लक्ष्मण कुछ  
बोल न सके, आँसुओंसे उनका गला भर आया । इसी  
प्रकार आगे जाकर सीताजीने फिर देखा, बहुत-से मृग  
बायीं ओरसे धूमकर निकले जा रहे हैं । वे भारी दुःखकी  
सूचना देनेवाले थे । उन्हें देखकर जानकीजी कहने  
लगीं—‘आज ये मृग जो मेरी बायीं ओरसे निकल रहे  
हैं, सो ठीक ही है; श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंको छोड़कर  
अन्यत्र जानेवाली सीताके लिये ऐसा होना उचित ही है ।  
नारियोंका सबसे बड़ा धर्म है—अपने स्वामीके चरणोंका  
‘पूजन, उसीको छोड़कर मैं अन्यत्र जा रही हूँ; अतः मेरे  
लिये जो दण्ड मिले, उचित ही है ।’ इस प्रकार मार्गमें  
पारमार्थिक विचार करती हुई देवी जानकीने गङ्गाजीको  
देखा, जिनके तटपर मुनियोंका समुदाय निवास करता  
है । जिनके जलकणोंका स्पर्श होते ही राशि-राशि

महापातक पलायन कर जाते हैं—उन्हें वहाँ चारों ओर  
अपने रहने योग्य कोई स्थान नहीं दिखायी देता । गङ्गाके  
किनारे पहुँचकर लक्ष्मणजीने रथपर बैठी हुई सीताजीसे  
आँसू बहाते हुए कहा—‘भाभी ! चलो, लहरोंसे भरी  
हुई गङ्गाको पार करो ।’ सीताजी देवरकी बात सुनकर  
तुरंत रथसे उतर गयीं ।

तदनन्तर, नावसे गङ्गाके पार होकर लक्ष्मणजी  
जानकीजीको साथ लिये बनमें चले । वे श्रीरामचन्द्रजीकी



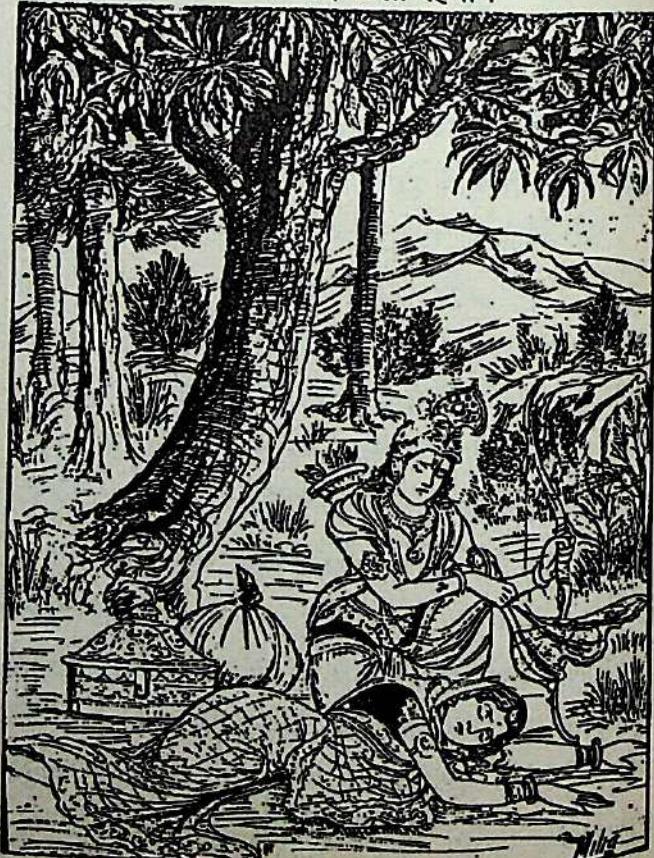
आजाका पालन करनेमें कुशल थे; अतः सीताको  
अत्यन्त भयंकर एवं दुःखदायी जंगलमें ले गये—जहाँ  
बबूल, खैरा और धव आदिके महाभयानक वृक्ष थे, जो  
दावानलसे दग्ध होनेके कारण सूख गये थे । ऐसा जंगल  
देखकर सीता भयके कारण बहुत चिन्तित हुई । काँटोंसे  
उनके कोमल चरणोंमें घाव हो गये । वे लक्ष्मणसे  
बोलीं—‘वीरवर ! यहाँ अच्छे-अच्छे ऋषि-मुनियोंके  
रहने योग्य आश्रम मुझे नहीं दिखायी देते, जो नेत्रोंको  
सुख प्रदान करनेवाले हैं तथा महर्षियोंकी तपस्विनी  
स्त्रियोंके भी दर्शन नहीं होते । यहाँ तो केवल भयंकर  
पक्षी, सूखे वृक्ष और दावानलसे सब ओर जलता हुआ

यह वन ही दृष्टिगोचर हो रहा है। इसके सिवा, मैं तुमको भी किसी भारी दुःखसे आतुर देखती हूँ। तुम्हारी आँखें आँसुओंसे भरी हैं, इनसे व्याकुलताके भाव प्रकट होते हैं; और मुझे भी पग-पगपर हजारों अपशकुन दिखायी देते हैं। सच बताओ, क्या बात है ?'

सीताजीके इतना कहनेपर भी लक्ष्मणजीके मुखसे कोई भी बात नहीं निकली, वे चुपचाप उनकी ओर देखते हुए खड़े रहे। तब जानकीजीने बारम्बार प्रश्न करके उनसे उत्तर देनेके लिये बड़ा आग्रह किया। उनके आग्रहपूर्वक पूछनेपर लक्ष्मणजीका गला भर आया। उन्होंने शोक प्रकट करते हुए सीताजीको उनके परित्यागकी बात बतायी। मुनिवर ! वह वज्रके तुल्य कठोर वचन सुनकर सीताजी जड़से कटी हुई लताकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ी। विदेहकुमारीको पृथ्वीपर पड़ी देख लक्ष्मणजीने पल्लवोंसे हवा करके उन्हें सचेत किया। होशमें आनेपर जानकीजीने कहा—“देवर ! मुझसे परिहास न करो। मैंने कोई पाप नहीं किया है, फिर श्रीरघुनाथजी मुझे कैसे छोड़ देंगे। वे परम बुद्धिमान् और महापुरुष हैं, मेरा त्याग कैसे कर सकते हैं। वे जानते हैं मैं निष्पाप हूँ; फिर भी एक धोबीके कहनेसे मुझे छोड़ देंगे ? [ऐसी आशा नहीं है !]” इतना कहते-कहते वे फिर बेहोश हो गयीं। इस बार उन्हें मूर्च्छित देख लक्ष्मणजी फूट-फूटकर रोने लगे। जब पुनः उनको चेत हुआ, तब लक्ष्मणजीको दुःखसे आतुर और रुद्धकण्ठ देखकर वे बहुत दुःखी हुई और बोलीं—“सुमित्रानन्दन ! जाओ, तुम धर्मके स्वरूप और यशके सागर श्रीरामचन्द्रजीसे तपोनिधि वसिष्ठ मुनिके सामने ही मेरी एक बात पूछना—‘नाथ ! यह जानते हुए भी कि सीता निष्पाप है, जो आपने मुझे त्याग दिया है, यह बर्ताव आपके कुलके अनुरूप हुआ है या शास्त्र-ज्ञानका फल है ? मैं सदा आपके चरणोंमें ही अनुराग रखती हूँ; तो भी जो आपके द्वारा मेरा त्याग हुआ है, इसमें आपका कोई दोष नहीं है। यह सब मेरे भाग्य-दोषसे हुआ है, इसमें मेरा प्रारब्ध ही कारण है। बीरवर ! आपका सदा और सर्वत्र कल्याण हो। मैं इस वनमें आपका ही स्मरण करती हुई प्राण धारण करूँगी। मन, वाणी और क्रियाके द्वारा एकमात्र आप ही मेरे सर्वोत्तम आराध्यदेव हैं। रघुनन्दन !

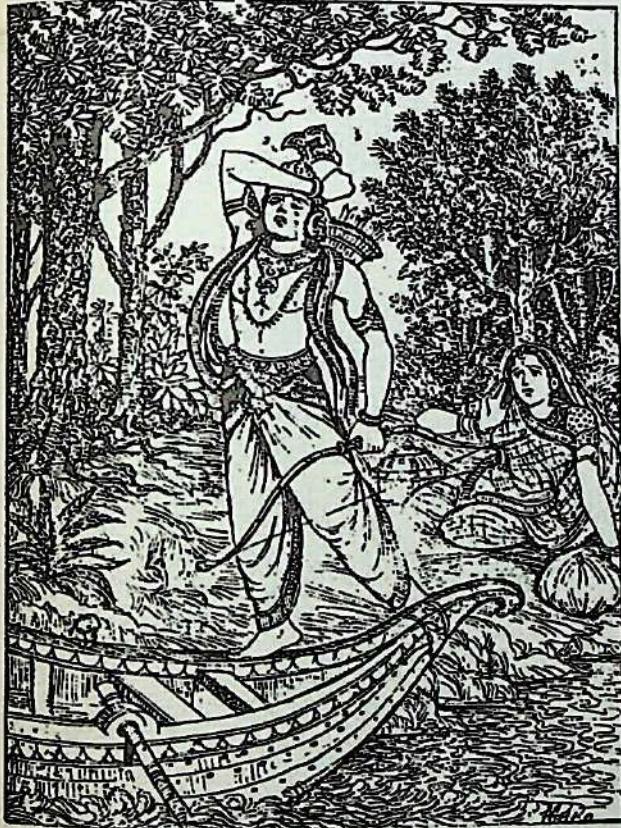
आपके सिवा और सब कुछ मैंने अपने मनसे तुच्छ समझा है। महेश्वर ! प्रत्येक जन्ममें आप ही मेरे पति हो और मैं आपके ही चरणोंके चिन्तनसे अपने अनेकों पापोंका नाश कर आपकी सती-साध्वी पंली बन रहूँ—यही मेरी प्रार्थना है।’

“लक्ष्मण ! मेरी सासुओंसे भी यह संदेश कहना—‘माताओ ! अनेकों जन्तुओंसे भरे हुए इस घोर जंगलमें मैं आप सब लोगोंके चरणोंका स्मरण करती हूँ। मैं गर्भवती हूँ, तो भी महात्मा रामने मुझे इस वनमें त्याग दिया है।’ ‘सौमित्रे ! अब तुम मेरी बात सुनो—श्रीरघुनाथजीका कल्याण हो। मैं अभी प्राण त्याग देती, किन्तु विवश हूँ; अपने गर्भमें श्रीरामचन्द्रजीके तेजकी रक्षा कर रही हूँ। तुम जो उनके वचनोंको पूर्ण करते हो, सो ठीक ही है; इससे तुम्हारा कल्याण होगा। तुम श्रीरामके चरणकमलोंके सेवक और उनके अधीन हो, अतः उन्हें ऐसा ही करना उचित है। अच्छा, अब श्रीरामचन्द्रजीके समीप जाओ; तुम्हारे मार्ग मङ्गलमय हों। मुझपर कृपा करके कभी-कभी मेरी याद करते रहना।’”



इतना कहकर सीताजी लक्ष्मणजीके सामने ही अचेत हो पृथ्वीपर गिर पड़ीं। उन्हें मूर्च्छित

देख लक्ष्मणजी पुनः दुःखमें डूब गये और वस्त्रके अग्रभागसे पंखा झलने लगे। जब होशमें आयीं, तब उन्हें प्रणाम करके वे बोले—‘देवि ! अब मैं श्रीरामके पास जाता हूँ वहाँ जाकर मैं आपका सब संदेश कहूँगा। आपके समीप ही महर्षि वाल्मीकिका बहुत बड़ा आश्रम है।’ यों कहकर लक्ष्मणने उनकी परिक्रमा की और दुःखमग्र हो आँसू बहाते हुए वे महाराज श्रीरामके पास चल दिये। जानकीजीने जाते हुए देवरकी ओर विस्मित दृष्टिसे देखा। वे सोचने लगीं—‘महाभाग



लक्ष्मण मेरे देवर हैं, शायद परिहास करते हों; भला, श्रीरघुनाथजी अपने प्राणोंसे भी अधिक प्रिय मुझ पापरहित पत्नीको कैसे त्याग सकते हैं।’ यही विचार करती हुई वे निर्निमेष नेत्रोंसे उनकी ओर देखती रहीं; किन्तु जब वे गङ्गाके उस पार चले गये, तब उन्हें सर्वथा विश्वास हो गया कि सचमुच ही मैं त्याग दी गयी। अब मेरे प्राण बचेंगे या नहीं, इस संशयमें पड़कर वे पृथ्वीपर गिर पड़ीं और तत्काल उन्हें मूर्छ्छनि आ दबाया।

उस समय हंस अपने पंखोंसे जल लाकर सीताके शरीरपर सब ओरसे छिड़कने लगे। फूलोंकी सुगन्ध

लिये मन्द-मन्द वायु चलने लगी तथा हाथी भी अपनी सूँडोंमें जल लिये सब ओरसे वहाँ आकर खड़े हो गये,

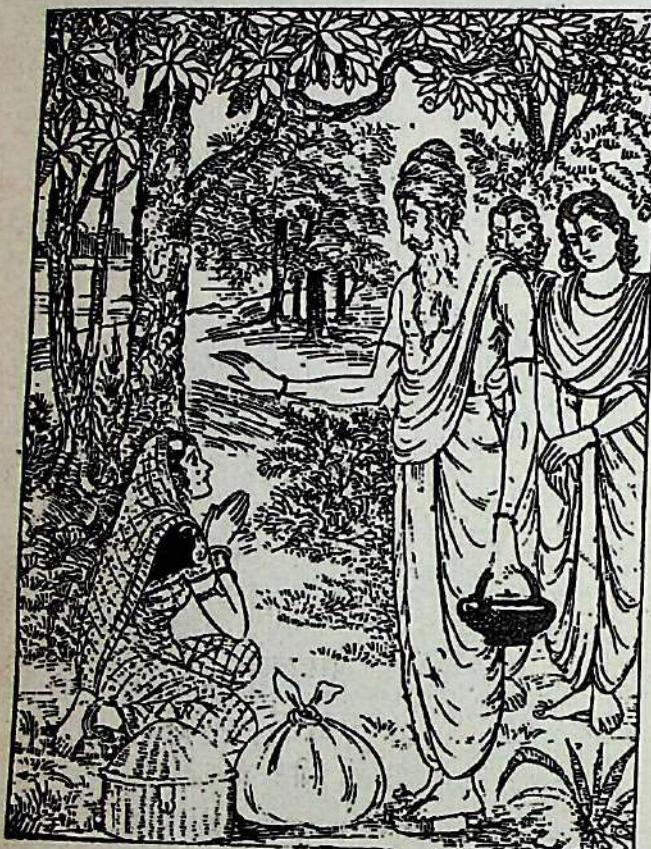


मानो धूलिसे भरे हुए सीताके शरीरको धोनेके लिये आये हों। इसी समय सती सीता होशमें आयीं और बारम्बार राम-रामकी रट लगाती हुई बड़े दुःखसे विलाप करने लगीं—‘हा राम ! हा दीनबन्धो !! हा करुणानिधे !!! बिना अपराधके ही क्यों मुझे इस वनमें त्याग रहे हो।’ इस प्रकारकी बहुत-सी बातें कहती हुई वे बार-बार विलाप करती और इधर-उधर देखती हुई रह-रहकर मूर्छ्छित हो जाती थीं। उस समय भगवान् वाल्मीकि शिष्योंके साथ वनमें गये थे। वहाँ उन्हें करुणाजनक स्वरमें विलाप और रोदन सुनायी पड़ा। वे शिष्योंसे बोले—‘वनके भीतर जाकर देखो तो सही, इस महाघोर जंगलमें कौन रो रहा है ? उसका स्वर दुःखसे पूर्ण जान पड़ता है।’ मुनिके भेजनेसे वे उस स्थानपर गये, जहाँ जानकी राम-रामकी पुकार मचाती हुई आँसुओंमें डूब रही थीं। उन्हें देखकर वे शिष्य उत्कण्ठावश वाल्मीकि मुनिके पास लौट गये। उनकी बातें सुनकर मुनि स्वयं ही उस स्थानपर गये। पतिव्रता जानकीने देखा एक महर्षि

आ रहे हैं, जो तपस्याके पुज्ज जान पड़ते हैं। उन्हें देख सीताजीने हाथ जोड़कर कहा—ब्रतके सागर और वेदोंके साक्षात् स्वरूप महर्षिको नमस्कार है।' उनके

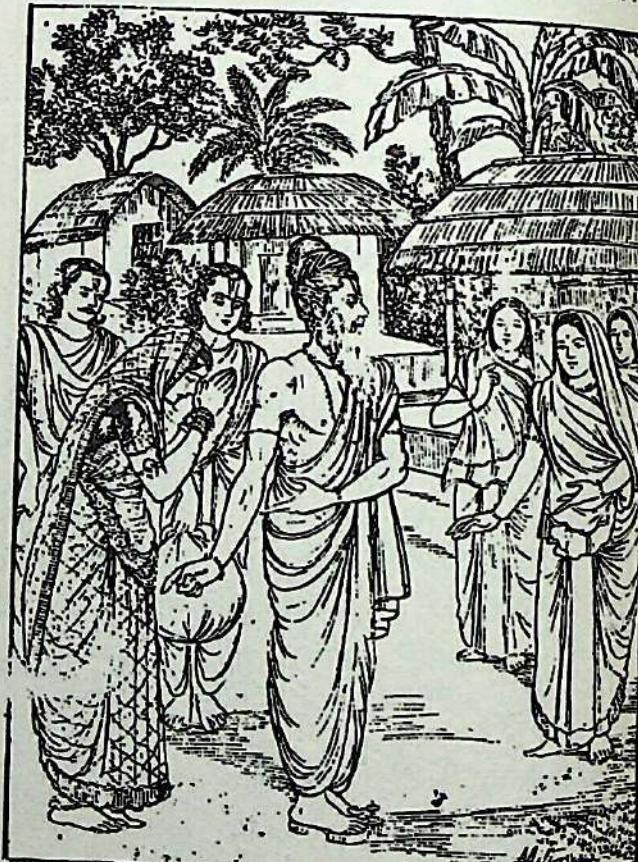
जानो कि दूसरे स्थानपर बना हुआ मेरे पिताका है यह घर है।

सती सीताका मुख शोकके आँसुओंसे भीगा था। मुनिका सान्त्वनापूर्ण वचन सुनकर उन्हें कुछ सुन मिला। उनके नेत्रोंमें इस समय भी दुःखके आँसू छलक रहे थे। वाल्मीकिजी उन्हें आश्वासन देकर तापसी शियोंसे भरे हुए अपने पवित्र आश्रमपर ले गये। सीता महर्षिके पीछे-पीछे गायीं और वे मुनिसमुदायसे भरे हुए अपने आश्रमपर पहुँचकर तापसियोंसे बोले—'अपने



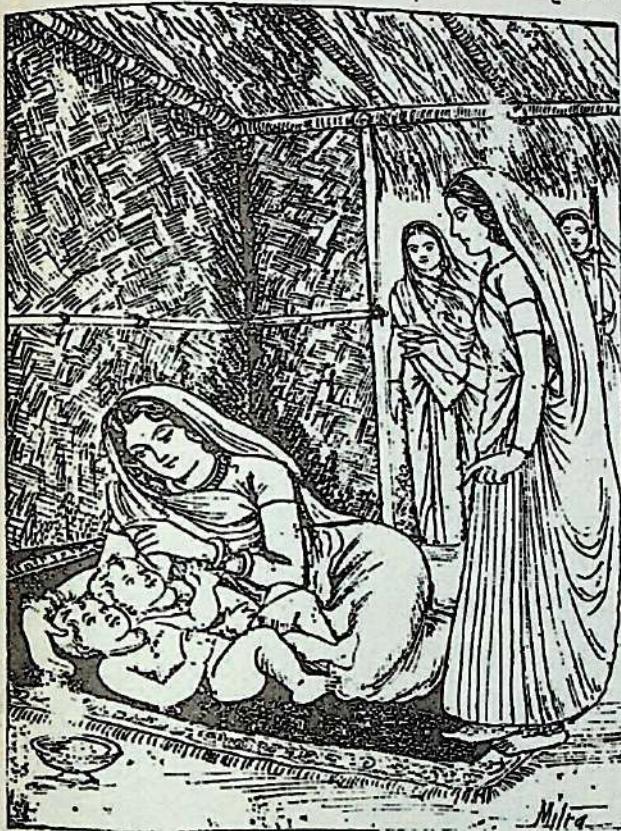
यों कहनेपर महर्षिने आशीर्वादके द्वारा उन्हें प्रसन्न करते हुए कहा—'बेटी ! तुम अपने पतिके साथ चिरकाल-तक जीवित रहो। तुम्हें दो सुन्दर पुत्र प्राप्त हों। बताओ, तुम कौन हो ? इस भयङ्कर वनमें क्यों आयी हो तथा क्यों ऐसी हो रही हो ? सब कुछ बताओ, जिससे मैं तुम्हारे दुःखका कारण जान सकूँ।' तब श्रीरघुनाथजीकी पली सीताजी एक दीर्घ निःश्वास ले काँपती हुई करुणामयी वाणीमें बोली—'महर्षे ! मुझे श्रीरघुनाथजीकी सेविका समझिये। मैं बिना अपराधके ही त्याग दी गयी हूँ। इसका कारण क्या है, यह मैं बिलकुल नहीं जानती। श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे लक्ष्मण मुझे यहाँ छोड़ गये हैं।'

वाल्मीकिजी बोले—विदेहकुमारी ! मुझे अपने पिताका गुरु समझो, मेरा नाम वाल्मीकि है। अब तुम दुःख न करो, मेरे आश्रमपर आओ। पतिव्रते ! तुम यहाँ



आश्रमपर जानकी आयी हैं [उनका स्वागत करो]। महामना सीताने सब तपस्विनियोंको प्रणाम किया और उन्होंने भी प्रसन्न होकर उन्हें छातीसे लगाया। तपोनिधि वाल्मीकिने अपने शिष्योंसे कहा—'तुम जानकीके लिये एक सुन्दर पर्णशाला तैयार करो।' आज्ञा पाकर उन्होंने पत्तों और लकड़ियोंके द्वारा एक सुन्दर कुटी निर्माण की। पतिव्रता जानकी उसीमें निवास करने लगीं। वे वाल्मीकि मुनिकी टहल बजाती हुई फलगाहार करके रहती थीं तथा मन और वाणीसे निरन्तर राम-मन्त्रका

जप करती हुई दिन व्यतीत करती थीं, समय आनेपर उन्होंने दो सुन्दर पुत्रोंको जन्म दिया, जो आकृतिमें



श्रीरामचन्द्रजीके समान तथा अश्विनीकुमारोंकी भाँति मनोहर थे। जानकीके पुत्र होनेका समाचार सुनकर मुनिको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे मन्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ थे, अतः उन बालकोंके जातकर्म आदि संस्कार उन्होंने ही सम्पन्न किये। महर्षि वाल्मीकिने उन बालकोंके संस्कार-सम्बन्धी सभी कर्म कुशों और उनके लवों (टुकड़ों) द्वारा ही किये थे; अतः उन्हींके नामपर उन दोनोंका नाम क्रमशः कुश और लव रखा। जिस समय उन शुद्धात्मा महर्षिने पुत्रोंका मङ्गल-कार्य सम्पन्न किया, उस समय सीताजीका हृदय आनन्दसे भर गया। उनके मुख और नेत्र प्रसन्नतासे खिल उठे। उसी दिन लवणासुरको मारकर शत्रुघ्नजी भी अपने थोड़े-से सैनिकोंके साथ वाल्मीकि मुनिके सुन्दर आश्रमपर रात्रिमें आये थे। उस समय वाल्मीकिजीने उन्हें सिखा दिया था कि 'तुम श्रीरघुनाथजीको जानकीके पुत्र होनेकी बात न बताना, मैं ही उनके सामने सारा वृत्तान्त कहूँगा।'

जानकीके वे दोनों पुत्र वहाँ बढ़ने लगे। उनका

रूप बड़ा ही मनोहर था। सीता उन्हें कन्द, मूल और फल खिलाकर पृष्ठ करने लगीं। वे दोनों परम सुन्दर और अपनी रूप-माधुरीसे उन्मत्त बना देनेवाले थे। शुक्ल-पक्षकी प्रतिपदाके चन्द्रमाकी भाँति मनको मोहनेवाले दोनों कुमारोंका समयानुसार उपनयन-संस्कार हुआ, इससे उनकी मनोहरता और भी बढ़ गयी। महर्षि वाल्मीकिने उपनयनके पश्चात् उन्हें अङ्गोंसहित वेद और रहस्योंसहित धनुर्वेदका अध्ययन कराया। उसके बाद स्वरचित रामायण-काव्य भी पढ़ाया। उन्होंने भी उन बालकोंको सुवर्णभूषित धनुष प्रदान किये, जो अभेद्य और श्रेष्ठ थे। जिनकी प्रत्यक्षा बहुत ही उत्तम थी तथा जो शत्रु-समुदायके लिये अत्यन्त भयंकर थे। धनुषके साथ ही बाणोंसे भेर दो अक्षय तरकश, दो खदग तथा बहुत-सी अभेद्य ढाले भी उन्होंने जानकीकुमारोंको अर्पण किये। धनुर्वेदके पारगामी होकर वे दोनों बालक धनुष धारण किये बड़ी प्रसन्नताके साथ आश्रममें विचरा करते थे। उस समय सुन्दर अश्विनीकुमारोंकी भाँति उनकी बड़ी शोभा होती थी। जानकीजी ढाल-तलवार धारण किये अपने दोनों सुन्दर कुमारोंको देख-देखकर



बहुत प्रसन्न रहा करती थीं। वात्स्यायनजी ! यह मैंने अश्वकी रक्षा करनेवाले वीरोंकी भुजाओंके काटे जानेके आपको जानकीके पुत्र-जन्मका प्रसङ्ग सुनाया है। अब पश्चात् जो घटना हुई, उसका वर्णन सुनिये।



## युद्धमें लवके द्वारा सेनाका संहार, कालजित्का वध तथा पुष्कल और हनुमान्जीका मूर्च्छित होना

शेषजी कहते हैं—मुनिवर ! अपने वीरोंकी भुजाएँ कटी देख शत्रुघ्नजीको बड़ा क्रोध हुआ। वे रोषके मारे दाँतोंसे ओठ चबाते हुए बोले—‘योद्धाओ ! किस वीरने तुम्हारी भुजाएँ काटी हैं ? आज मैं उसकी बाँहें काट डालूँगा; देवताओंद्वारा सुरक्षित होनेपर भी वह छुटकारा नहीं पा सकता।’ शत्रुघ्नजीके इस प्रकार कहनेपर वे योद्धा विस्मित और अत्यन्त दुःखी होकर बोले—‘राजन् ! एक बालकने, जिसका स्वरूप श्रीरामचन्द्रजीसे बिलकुल मिलता-जुलता है, हमारी यह दुर्दशा की है।’ बालकने घोड़ेको पकड़ रखा है, यह सुनकर शत्रुघ्नजीकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं और उन्होंने युद्धके लिये उत्सुक होकर कालजित् नामक सेनाध्यक्षको आदेश दिया—‘सेनापते ! मेरी आज्ञासे सम्पूर्ण सेनाका व्यूह बना लो। इस समय अत्यन्त बलवान् और पराक्रमी शत्रुपर चढ़ाई करनी है। यह घोड़ा पकड़नेवाला वीर कोई साधारण बालक नहीं है। निश्चय ही उसके रूपमें साक्षात् इन्द्र होंगे।’ आज्ञा पाकर सेनापतिने चतुरङ्गिणी सेनाको दुर्भेद्य व्यूहके रूपमें सुसज्जित किया। सेनाको संजी देख शत्रुघ्नजीने उसे उस स्थानपर कूच करनेकी आज्ञा दी, जहाँ अश्वका अपहरण करनेवाला बालक खड़ा था। तब वह चतुरङ्गिणी सेना आगे बढ़ी। सेनापतिने श्रीरामके समान रूपवाले उस बालकको देखा और कहा—‘कुमार ! यह पराक्रमसे शोभा पानेवाले श्रीरामचन्द्रजीका श्रेष्ठ अश्व है, इसे छोड़ दो। तुम्हारी आकृति श्रीरामचन्द्रजीसे बहुत मिलती-जुलती है, इसलिये तुम्हें देखकर मेरे हृदयमें दया आती है। यदि मेरी बात नहीं मानोगे तो तुम्हारे जीवनकी रक्षा नहीं हो सकती।’

शत्रुघ्नजीके योद्धाकी यह बात सुनकर कुमार



लव किञ्चित् मुसकराये और कुछ रोषमें आकर यह अद्भुत वचन बोले—“जाओ, तुम्हें छोड़ देता हूँ श्रीरामचन्द्रजीसे इस घोड़ेके पकड़े जानेका समाचार कहो। वीर ! तुम्हारे इस नीतियुक्त वचनको सुनकर मैं तुमसे भय नहीं खाता। तुम्हारे-जैसे करोड़ों योद्धा आ जायें, तो भी मेरी दृष्टिमें यहाँ उनकी कोई गिनती नहीं है। मैं अपनी माताके चरणोंकी कृपासे उन सबको रूईकी देरीके तुल्य मानता हूँ, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। तुम्हारी माताने जो तुम्हारा नाम ‘कालजित्’ रखा है, उसे सफल बनाओ। मैं तुम्हारा काल हूँ, मुझे जीत लेनेपर ही तुम अपना नाम सार्थक कर सकोगे।”

**कालजितने कहा—बालक !** तुम्हारा जन्म किस वंशमें हुआ है ? तुम किस नामसे प्रसिद्ध हो ? मुझे तुम्हारे कुल, शील, नाम और अवस्थाका कुछ भी पता नहीं है। इसके सिवा, मैं रथपर बैठा हूँ और तुम पैदल हो। ऐसी दशामें मैं तुम्हें अधर्मपूर्वक कैसे परास्त करूँ ?

**लव बोले—**कुल, शील, नाम और अवस्थासे क्या लेना है ? मैं लव हूँ और लवमात्रमें ही समस्त शत्रु-योद्धाओंको जीत लूँगा [मुझे पैदल जानकर संकोच मत करो], लो, तुम्हें भी अभी पैदल किये देता हूँ।

ऐसा कहकर बलवान् लवने धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी तथा पहले अपने गुरु वाल्मीकिका, फिर माता जानकीका स्मरण करके तीखे बाणोंको छोड़ना आरम्भ किया, जो तत्काल ही शत्रुके प्राण लेनेवाले थे। तब कालजितने भी कुपित होकर अपना धनुष चढ़ाया तथा अपने युद्ध-कौशलका परिचय देते हुए बड़े वेगसे लवपर बाणोंका प्रहार किया। किन्तु कुशके छोटे भाईने क्षणभरमें उन सभी बाणोंको काटकर एक-एकके सौ-सौ ढुकड़े कर दिये और आठ बाण मारकर सेनापतिको भी रथहीन कर दिया। रथके नष्ट हो जानेपर वे अपने सैनिकोंद्वारा लाये हुए हाथीपर सवार हुए। वह हाथी बड़ा ही वेगशाली और मदसे उन्मत्त था। उसके मस्तकसे मदकी सात धाराएँ फूटकर बह रही थीं। कालजितको हाथीपर बैठे देख सम्पूर्ण शत्रुओंपर विजय पानेवाले वीर लवने हैंसकर उन्हें दस बाणोंसे बींध डाला। लवका पराक्रम देख कालजितके मनमें बड़ा विस्मय हुआ और उन्होंने एक तीक्ष्ण एवं भयङ्कर परिधिका प्रहार किया, जो शत्रुके प्राणोंका अपहरण करनेवाला था। किन्तु लवने तुरंत ही उसे काट गिराया। फिर उसी क्षण तलवारसे हाथीकी सूँड़ काट डाली और उसके दाँतोंपर पैर रखकर वे तुरंत उसके मस्तकपर चढ़ गये। वहाँ सेनापतिके मुकुटके सौ और कवचके हजार ढुकड़े करके उनके मस्तकका बाल खींचकर उन्हें धरतीपर गिरा दिया। फिर तो सेनापतिको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने लवका वध करनेके लिये तलवार हाथमें ली। उन्हें तलवार लेकर आते देख लवने उनकी

दाहिनी भुजाको बीचसे काट डाला। कटा हुआ हाथ तलवारसहित पृथ्वीपर जा पड़ा। खद्गधारी हाथको कटा देख सेनापतिने क्रोधमें भरकर बायें हाथसे लवपर गदा मारनेकी तैयारी की। इतनेहीमें लवने अपने तीखे



बाणोंसे उनकी उस बाँहको भी भुजबंदसहित काट गिराया। तदनन्तर, कालग्रिके समान प्रज्वलित खद्ग हाथमें लेकर उन्होंने सेनापतिके मुकुटमण्डित मस्तकको भी धड़से अलग कर दिया।

सेनाध्यक्षके मारे जानेपर सेनामें महान् हाहाकार मचा। सारे सैनिक क्रोधमें भरकर लवका वध करनेके लिये क्षणभरमें आगे बढ़ आये, परन्तु लवने अपने बाणोंकी मारसे उन सबको पीछे खदेड़ दिया। कितने ही छिन्न-भिन्न होकर वहीं ढेर हो गये और कितने ही रणभूमि छोड़कर भाग गये। इस प्रकार सम्पूर्ण योद्धाओंको पीछे हटाकर लव बड़ी प्रसन्नताके साथ सेनामें जा घुसे। किन्हींकी बाँहें, किन्हींके पैर, किन्हींके कान, किन्हींकी नाक तथा किन्हींके कवच और कुण्डल कट गये। इस प्रकार सेनापतिके मारे जानेपर सैनिकोंका भयङ्कर संहार हुआ। युद्धमें आये हुए प्रायः सभी वीर

मारे गये, कोई भी जीवित न बचा। इस प्रकार लवने शत्रु-समुदायको परास्त करके युद्धमें विजय पायी तथा दूसरे योद्धाओंके आनेकी आशङ्कासें वे खड़े होकर प्रतीक्षा करने लगे। कोई-कोई योद्धा भाग्यवश उस युद्धसे बच गये। उन्होंने ही शत्रुघ्नके पास जाकर रण-भूमिका सारा समाचार सुनाया। बालकके हाथसे कालजितकी मृत्यु तथा उसके विचित्र रण-कौशलका वृत्तान्त सुनकर शत्रुघ्नको बड़ा विस्मय हुआ। वे बोले—‘बीरो ! तुमलोग छल तो नहीं कर रहे हो ? तुम्हारा चित्त विकल तो नहीं है ? कालजितका मरण कैसे हुआ ? वे तो यमराजके लिये भी दुर्धर्ष थे ? उन्हें एक बालक कैसे परास्त कर सकता है ?’ शत्रुघ्नकी बात सुनकर खूनसे लथपथ हुए उन योद्धाओंने कहा—‘राजन् ! हम छल या खेल नहीं कर रहे हैं; आप विश्वास कीजिये। कालजितकी मृत्यु सत्य है और वह लवके हाथसे ही हुई है। उसका युद्धकौशल अनुपम है। उस बालकने सारी सेनाको मथ डाला। इसके बाद अब जो कुछ करना हो, खूब सोच-विचारकर करें। जिन्हें युद्धके लिये भेजना हो, वे सभी श्रेष्ठ पुरुष होने चाहिये।’ उन बीरोंका कथन सुनकर शत्रुघ्ने श्रेष्ठ बुद्धिवाले मन्त्री सुमतिसे युद्धके विषयमें पूछा—‘मन्त्रिवर ! क्या तुम जानते हो कि किस बालकने मेरे अश्वका अपहरण किया है ? उसने मेरी सारी सेनाका, जो समुद्रके समान विशाल थी, विनाश कर डाला है।’

**सुमतिने कहा—खामिन् !** यह मुनिश्रेष्ठ बालमीकिका महान् आश्रम है, क्षत्रियोंका यहाँ निवास नहीं है। सम्भव है इन्द्र हों और अमर्षमें आकर उन्होंने घोड़ेका अपहरण किया हो। अथवा भगवान् शङ्कर ही बालक-वेषमें आये हों अन्यथा दूसरा कौन ऐसा है, जो तुम्हारे अश्वका अपहरण कर सके। मेरा तो ऐसा विचार है कि अब तुम्हाँ वीर योद्धाओं तथा सम्पूर्ण राजाओंसे भिरे हुए वहाँ जाओ और विशाल सेना भी अपने साथ ले लो। तुम शत्रुका उच्छेद करनेवाले हो, अतः वहाँ जाकर उस वीरको जीते-जी बाँध लो। मैं उसे ले जाकर कौतुक देखनेकी इच्छा रखनेवाले श्रीरघुनाथजीको दिखाऊँगा।

मन्त्रीका यह वचन सुनकर शत्रुघ्ने सम्पूर्ण बीरोंके आज्ञा दी—‘तुमलोग भारी सेनाके साथ चलो, मैं भी पीछेसे आता हूँ।’ आज्ञा पाकर सैनिकोंने कूच किया। बीरोंसे भरी हुई उस विशाल सेनाको आते देख लव सिंहके समान उठकर खड़े हो गये। उन्होंने समस्त योद्धाओंको मृगोंके समान तुच्छ समझा। वे सैनिक उन्हें चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये। उस समय उन्होंने धेरा डालनेवाले समस्त सैनिकोंको प्रज्वलित अग्निकी भाँति भस्म करना आरम्भ किया। किन्हींको तलवारके घाट उतारा, किन्हींको बाणोंसे मार परलोक पहुँचाया तथा किन्हींको प्रास, कुन्त, पट्टिश और परिघ आदि शस्त्रोंका निशाना बनाया। इस प्रकार महात्मा लवने सभी धेरोंके तोड़ डाला। सातों धेरोंसे मुक्त होनेपर कुशके छोटे भाई लव शरद् ऋतुमें मेघोंके आवरणसे उन्मुक्त हुए चन्द्रमाकी भाँति शोभा पाने लगे। उनके बाणोंसे पीड़ित होकर अनेकों वीर धराशायी हो गये। सारी सेना भाग चली। यह देख वीरवर पुष्कल युद्धके लिये आगे बढ़े। उनके नेत्र क्रोधसे भरे थे और वे ‘खड़ा रह, खड़ा रह’ कहकर लवको ललकार रहे थे। निकट अनेपर पुष्कलने लवसे कहा—‘वीर ! मैं तुम्हें उत्तम घोड़ोंसे सुशोभित एक रथ प्रदान करता हूँ, उसपर बैठ जाओ। इस समय तुम पैदल हो; ऐसी दशामें मैं तुम्हारे साथ युद्ध कैसे कर सकता हूँ; इसलिये पहले रथपर बैठो, फिर तुम्हारे साथ लोहा लूँगा।’

यह सुनकर लवने पुष्कलसे कहा—‘वीर ! यदि मैं तुम्हारे दिये हुए रथपर बैठकर युद्ध करूँगा, तो मुझे पाप ही लगेगा और विजय मिलनेमें भी सन्देह रहेगा। हमलोग दान लेनेवाले ब्राह्मण नहीं हैं, अपितु खयं ही प्रतिदिन दान आदि शुभकर्म करनेवाले क्षत्रिय हैं [तुम मेरे पैदल होनेकी चिन्ता न करो]। मैं अभी क्रोधमें भरकर तुम्हारा रथ तोड़ डालता हूँ, फिर तुम भी पैदल ही हो जाओगे। उसके बाद युद्ध करना।’ लवका यह धर्म और धैर्यसे युक्त वचन सुनकर पुष्कलका चित बहुत देरतक विस्मयमें पड़ा रहा। तत्पश्चात् उन्होंने धनुष चढ़ाया। उन्हें धनुष उठाते देख लवने कुपित होकर बाण

मारा और पुष्कलके हाथका धनुष काट डाला । फिर जब वे दूसरे धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाने लगे तबतक उस उद्धत एवं बलवान् वीरने हँसते-हँसते उनके रथको भी तोड़ दिया । महात्मा लवके द्वारा अपने धनुषको छिन्न-भिन्न हुआ देख पुष्कल क्रोधमें भर गये और उस महाबली वीरके साथ बड़े वेगसे युद्ध करने लगे । लवने लवमात्रमें तरकशसे तीर निकाला, जो विषैले साँपकी भाँति जहरीला था । उसने वह तेजस्वी बाण क्रोधपूर्वक छोड़ा । धनुषसे छूटते ही वह पुष्कलकी छातीमें धूंस



गया और वह महावीरशिरोमणि मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा । पुष्कलको मूर्च्छित होकर गिरा देख पवन-कुमारने उठा लिया और श्रीरघुनाथजीके भ्राता शत्रुघ्नको अर्पित कर दिया । उन्हें अचेत देख शत्रुघ्नका चित्त शोकसे विहळ गया । उन्होंने क्रोधमें भरकर हनुमानजीको लवका वध करनेकी आज्ञा दी । हनुमानजी भी कुपित होकर महाबली लवको युद्धमें परास्त करनेके लिये बड़े वेगसे गये और उनके मस्तकको लक्ष्य करके उन्होंने वृक्षका प्रहर किया । वृक्षको अपने ऊपर आते देख लवने अपने बाणोंसे उसको सौ टुकड़े कर डाले । तब हनुमानजीने बड़ी-बड़ी शिलाएँ उखाड़कर बड़े वेगसे लवके मस्तकपर फेंकीं । शिलाओंका आघात पाकर उन्होंने अपना धनुष ऊपरको उठाया और बाणोंकी वर्षासे शिलाओंको चूर्ण कर दिया । फिर तो हनुमानजीके क्रोधकी सीमा न रही; उन्होंने बलवान् लवको पूँछमें लपेट लिया । यह देख लवने अपनी माता जानकीका स्मरण किया और हनुमानजीकी पूँछपर मुकेसे मारा । इससे उनको बड़ी व्यथा हुई और उन्होंने लवको बन्धनसे मुक्त कर दिया । पूँछसे छूटनेपर उस बलवान् वीरने हनुमानजीपर बाणोंकी बौछार आरम्भ कर दी; जिससे उनके समस्त शरीरमें बड़ी पीड़ा होने लगी । उन्होंने लवकी बाणवर्षाको अपने लिये अत्यन्त दुःसह समझा और समस्त वीरोंके देखते-देखते वे मूर्च्छित होकर रणभूमिमें गिर पड़े । फिर लव अन्य सब राजाओंको मारने लगे । वे बाण छोड़नेमें बड़े निपुण थे ।

## ★ ————— ★ —————

**शत्रुघ्नके बाणसे लवकी मूर्छा, कुशका रणक्षेत्रमें आना, कुश और लवकी विजय तथा सीताके प्रभावसे शत्रुघ्न आदि एवं उनके सैनिकोंकी जीवन-रक्षा**

शेषजी कहते हैं—मुने ! वायुनन्दन हनुमानजीके मूर्च्छित होनेका समाचार सुनकर शत्रुघ्नको बड़ा शोक हुआ । अब वे स्वयं सुवर्णमय रथपर विराजमान हुए और श्रेष्ठ वीरोंको साथ ले युद्धके लिये उस स्थानपर गये, जहाँ विचित्र रणकुशल वीरवर लव मौजूद थे । उन्हें देखकर शत्रुघ्नने मन-ही-मन विचार किया कि

‘श्रीरामचन्द्रजीके सदृश स्वरूप धारण करनेवाला यह बालक कौन है ? इसका नीलकमल-दलके समान श्याम शरीर कितना मनोहर है ! हो न हो, यह विदेहकुमारी सीताका ही पुत्र है ।’ भीतर-ही-भीतर ऐसा सोचकर वे बालकसे बोले—‘वत्स ! तुम कौन हो, जो रणभूमिमें हमारे योद्धाओंको गिरा रहे हो ? तुम्हारे

माता-पिता कौन हैं ? तुम बड़े सौभाग्यशाली हो; क्योंकि इस युद्धमें तुमने विजय पायी है। महाबली वीर ! तुम्हारा लोक-प्रसिद्ध नाम क्या है ? मैं जानना चाहता हूँ।' शत्रुघ्नके इस प्रकार पूछनेपर वीर बालक लवने उत्तर दिया—'वीरवर ! मेरे नामसे, पितासे, कुलसे तथा अवस्थासे तुम्हें क्या काम है ? यदि तुम स्वयं बलवान् हो तो समरमें मेरे साथ युद्ध करो, यदि शक्ति हो तो बलपूर्वक अपना घोड़ा छुड़ा ले जाओ।' ऐसा कहकर उस उद्धट वीरने अनेकों बाणोंका सन्धान करके शत्रुघ्नकी छाती, मस्तक और भुजाओंपर प्रहार किया। तब राजा शत्रुघ्ने भी अत्यन्त कोपमें भरकर अपना धनुष चढ़ाया और बालकको त्रास-सा देते हुए मेघके समान गम्भीर वाणीमें टड़ाकर की। बलवानोंमें श्रेष्ठ तो वे थे ही, असंख्य बाणोंकी वर्षा करने लगे। परन्तु बालक लवने उनके सभी सायकोंको बलपूर्वक काट दिया। तत्पश्चात् लवके छोड़े हुए करोड़ों बाणोंसे वहाँकी सारी पृथ्वी आच्छादित हो गयी।

इतने बाणोंका प्रहार देखकर शत्रुघ्न दंग रह गये। फिर उन्होंने लवके लाखों बाणोंको काट गिराया। अपने समस्त सायकोंको कटा देख कुशके छोटे भाई लवने राजा शत्रुघ्नके धनुषको वेगपूर्वक काट डाला। वे दूसरा धनुष लेकर ज्यों ही बाण छोड़नेको उद्यत होते हैं, त्यों ही लवने तीक्ष्ण सायकोंसे उनके रथको भी खण्डित कर दिया। रथ, घोड़े, सारथि और धनुषके कट जानेपर वे दूसरे रथपर सवार हुए और बलपूर्वक लवका सामना करनेके लिये चले। उस समय शत्रुघ्ने अत्यन्त कोपमें भरकर लवके ऊपर दस तीखे बाण छोड़े, जो प्राणोंका संहार करनेवाले थे। परन्तु लवने तीखी गाँठवाले बाणोंसे उनके दुकड़े-दुकड़े करके एक अर्धचन्द्राकार बाणसे शत्रुघ्नकी छातीमें प्रहार किया, उससे उनकी छातीमें गहरी चोट पहुँची और उन्हें बड़ी भयङ्कर पीड़ा हुई। वे हाथमें धनुष लिये ही रथकी बैठकमें गिर पड़े।

शत्रुघ्नको मूर्च्छित देख सुरथ आदि राजा युद्धमें विजय प्राप्तिके लिये उद्यत हो लवपर दूःख हुआ। किसीने क्षुम्प और मुशल चलाये तो कोई अत्यन्त भयानक

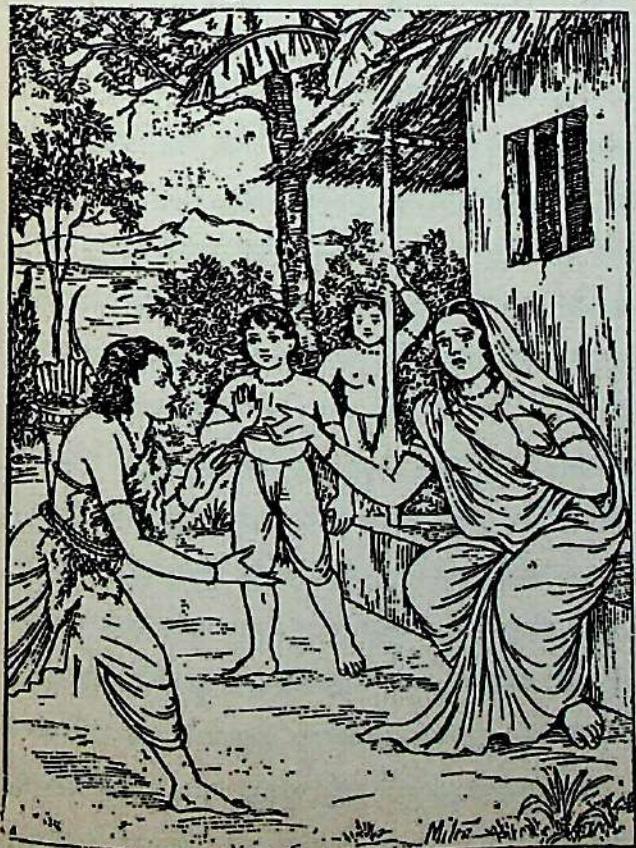
बाणोंद्वारा ही प्रहार करने लगे। किसीने प्राप्त, किसीने कुन्त और किसीने फरसोंसे ही काम लिया। सारांश यह थि, राजालोग सब ओरसे लवपर प्रहार करने लगे। वीरशिरोमणि लवने देखा कि ये क्षत्रिय अर्धमपूर्वक युद्ध करनेको तैयार हैं तो उन्होंने दस-दस बाणोंसे सबको घायल कर दिया। लवकी बाणवर्षासे आहत होकर कितने ही क्रोधी राजा रणभूमिसे पलायन कर गये और कितने ही युद्धक्षेत्रमें ही मूर्च्छित होकर गिर पड़े। इतनेहीमें राजा शत्रुघ्नकी मूर्च्छा दूर हुई और वे महावीर लवसे बलपूर्वक युद्ध करनेके लिये आगे बढ़े तथा सामने आकर बोले—'वीर ! तुम धन्य हो ! देखनेमें ही बालक-जैसे जान पड़ते हो, [वास्तवमें तुम्हारी वीरता अद्भुत है !] अब मेरा पराक्रम देखो; मैं अभी तुम्हें युद्धमें गिराता हूँ।' ऐसा कहकर शत्रुघ्ने एक बाण हाथमें लिया, जिसके द्वारा लवणासुरका वध हुआ था तथा जो यमराजके मुखकी भाँति भयङ्कर था। उस तीखे बाणको धनुषपर चढ़ाकर शत्रुघ्ने लवकी छातीको विदीर्ण करनेका विचार किया। वह बाण धनुषसे छुट्टे ही दसों दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ प्रज्वलित हो उठा। उसे देखकर लवको अपने बलिष्ठ भ्राता कुशकी याद आयी, जो वैरियोंको मार गिरानेवाले थे। वे सोचने लगे, यदि इस समय मेरे बलवान् भाई वीरवर कुश होते तो मुझे शत्रुघ्नके अधीन न होना पड़ता तथा मुझपर यह दारुण भय न आता। इस प्रकार विचारते हुए महात्मा लवकी छातीमें वह महान् बाण आ लगा। जो कालाग्निके समान भयङ्कर था। उसकी छोट खाकर वीर लव मूर्च्छित हो गये।

बलवान् वैरियोंको विदीर्ण करनेवाले लवको मूर्च्छित देख महाबली शत्रुघ्ने युद्धमें विजय प्राप्त की। वे शिरस्त्राण आदिसे अलङ्कृत बालक लवको, जो स्वरूपसे श्रीरामचन्द्रजीकी समानता करता था, रथपर बिठाकर वहाँसे जानेका विचार करने लगे। अपने मित्रको शत्रुके चंगुलमें फँसा देख आश्रमवासी ब्राह्मण-बालकोंको बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने तुरंत जाकर लवकी माता सीतासे सब समाचार कह सुनाया—'मा-

जानकी ! तुम्हारे पुत्र लवने किसी बड़े राजा महाराजाके घोड़ेको जबरदस्ती पकड़ लिया है। राजाके पास सेना भी है तथा उनका मान-सम्मान भी बहुत है। घोड़ा पकड़नेके बाद लवका राजाकी सेनाके साथ भयङ्कर युद्ध हुआ। किन्तु सीता मैया ! तुम्हारे बीर पुत्रने सब योद्धाओंको मार गिराया। उसके बाद वे लोग फिर लड़ने आये। परन्तु उसमें भी तुम्हारे सुन्दर पुत्रकी ही जीत हुई। उसने राजाको बेहोश कर दिया और युद्धमें विजय पायी। तदनन्तर, कुछ ही देरके बाद उस भयङ्कर राजाकी मूर्छा दूर हो गयी और उसने क्रोधमें भरकर तुम्हारे पुत्रको रणभूमिमें मूर्च्छित करके गिरा दिया है।'

**सीता बोलीं—**हाय ! राजा बड़ा निर्दयी है, वह बालकके साथ क्यों युद्ध करता है ? अधर्मके कारण उसकी बुद्धि दूषित हो गयी है, तभी उसने मेरे बच्चेको धराशायी किया है। बालको ! बताओ, उस राजाने मेरे पुत्रको कैसे युद्धमें गिराया है तथा अब वह कहाँ जायगा ?

**पतिव्रता जानकी बालकोंसे** इस प्रकारकी बातें कह रही थीं, इतनेहीमें बीरवर कुश भी महर्षियोंके साथ आश्रमपर आ पहुँचे। उन्होंने देखा, माता जानकी



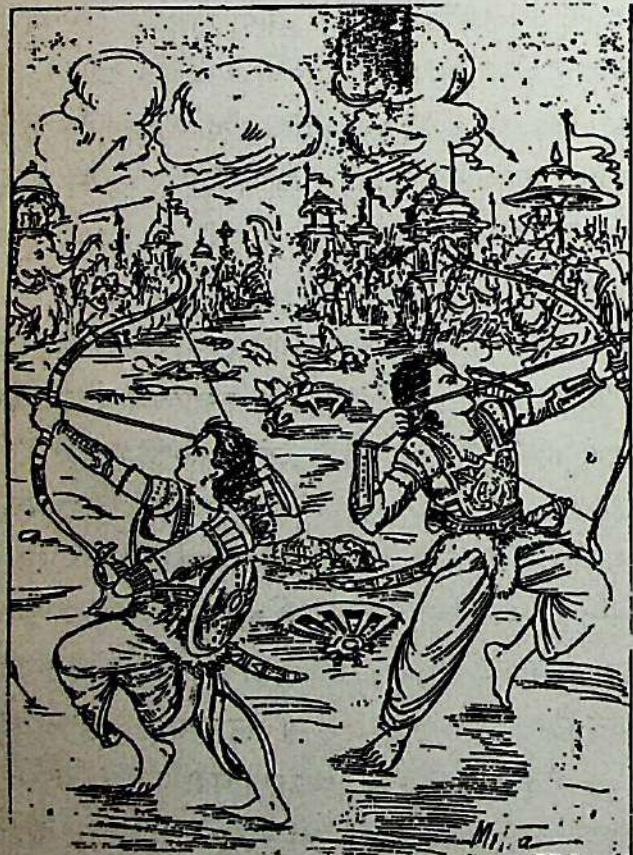
अत्यन्त व्याकुल हैं तथा उनके नेत्रोंसे आँसू बह रहे हैं। तब वे अपनी जननीसे बोले—‘माँ ! मुझ पुत्रके रहते हुए तुमपर कैसा दुःख आ पड़ा ? शत्रुओंका मर्दन करनेवाला मेरा भाई लव कहाँ है ? वह बलवान् बीर दिखायी क्यों नहीं देता ? कहाँ घूमने चला गया ? मेरी माँ ! तुम रोती क्यों हो ? बताओ न, लव कहाँ है ?’

जानकीने कहा—**बेटा !** किसी राजाने लवको पकड़ लिया है। वह अपने घोड़ेकी रक्षाके लिये यहाँ आया था। सुना है, मेरे बच्चेने उसके यज्ञसम्बन्धी अश्वको पकड़कर बाँध लिया था। लव बलवान् है, उसे अकेले ही अनेकों शत्रुओंसे लड़ना पड़ा है। फिर भी उसने बहुत-से अश्व-रक्षकोंको परास्त किया है। परन्तु अन्तमें उस राजाने लवको युद्धमें मूर्च्छित करके बाँध लिया है, यह बात इन बालकोंने बतायी है, जो उसके साथ ही गये थे। यही सुनकर मुझे दुःख हुआ है। वत्स ! तुम समयपर आ गये। जाओ और उस श्रेष्ठ राजाके हाथसे लवको बलपूर्वक छुड़ा लाओ।

**कुश बोले—**माँ ! तुम जान लो कि लव अब उस राजाके बन्धनसे मुक्त हो गया। मैं अभी जाकर राजाको सेना और सवारियोंसहित अपने बाणोंका निशाना बनाता हूँ। यदि कोई अमर देवता या साक्षात् रुद्र आ गये हों तो भी अपने तीखे बाणोंकी मारसे उन्हें व्यथित करके मैं लवको छुड़ा लूँगा। माता ! तुम रोओ मत; बीर पुरुषोंका संग्राममें मूर्च्छित होना उनके यशका कारण होता है। युद्धसे भागना ही उनके लिये कलङ्ककी बात है।

**शेषजी कहते हैं—**मुने ! कुशके इस वचनसे शुभलक्षणा सीताको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने पुत्रको सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र दिये और विजयके लिये आशीर्वाद देकर कहा—‘बेटा ! युद्ध-क्षेत्रमें जाकर मूर्च्छित हुए लवको बन्धनसे छुड़ाओ।’ माताकी यह आज्ञा पाकर कुशने कवच और कुण्डल धारण किये तथा जननीके चरणोंमें प्रणाम करके बड़े वेगसे रणकी ओर प्रस्थान किया। वे वेगपूर्वक युद्धके लिये संग्रामभूमिमें उपस्थित हुए, वहाँ पहुँचते ही उनकी दृष्टि

लवके ऊपर पड़ी, जिन्हें शत्रुओंने मूर्च्छित करके गिराया था। [वे रथपर बँधे पड़े थे और उनकी मूर्छा दूर हो चुकी थी] अपने महाबली भ्राता कुशको आया देख लव युद्धभूमिमें चमक उठे; मानो वायुका सहयोग पाकर अग्नि प्रज्वलित हो उठी हो। वे रथसे अपनेको छुड़ाकर युद्धके लिये निकल पड़े। फिर तो कुशने रणभूमिमें खड़े हुए समस्त वीरोंको पूर्व दिशाकी ओरसे मारना आरम्भ किया और लवने कोपमें भरकर सबको पश्चिम ओरसे पीटना शुरू किया। एक ओर कुशके बाणोंसे व्यथित और दूसरी ओर लवके सायकोंसे पीड़ित हो सेनाके समस्त योद्धा उत्ताल तरङ्गोंसे युक्त समुद्रकी भैंवरके समान क्षुब्ध हो गये। सारी सेना इधर-उधर भाग चली।



सबके ऊपर आतঙ्क छा रहा था। कोई भी बलवान् रणभूमिमें कहीं भी खड़ा होकर युद्ध करना नहीं चाहता था।

इसी समय शत्रुओंको ताप देनेवाले राजा शत्रुघ्न लवके समान ही प्रतीत होनेवाले वीरवर कुशसे युद्ध करनेके लिये आगे बढ़े। समीप पहुँचकर उन्होंने पूछा—'महावीर! तुम कौन हो? आकार-प्रकारसे तो

तुम अपने भाई लवके ही समान जान पड़ते हो। तुम्हारा बल भी महान् है। बताओ तुम्हारा नाम क्या है? तुम्हारी माता कहाँ हैं? और पिता कौन हैं?'

कुशने कहा—राजन्! पातिव्रत्य धर्मका पलब्द करनेवाली केवल माता सीताने हमें जन्म दिया है। हम दोनों भाई महर्षि वाल्मीकिके चरणोंका पूजन करते हुए इस वनमें रहते हैं और माताकी सेवा किया करते हैं। हम दोनोंने सब प्रकारकी विद्याओंमें प्रवीणता प्राप्त की है। मेरा नाम कुश है और इसका नाम लव। अब तुम अपना परिचय दो, कौन हो? युद्धकी शलाघा रखनेवाले वीर जान पड़ते हो। यह सुन्दर अश्व तुमने किसलिये छोड़ रखा है? भूपाल! यदि वास्तवमें वीर हो तो मैं साथ युद्ध करो। मैं अभी इस युद्धके मुहानेपर तुम्हारा वध कर डालूँगा।

शत्रुघ्नको जब यह मालूम हुआ कि यह श्रीरामचन्द्रजीके वीर्यसे उत्पन्न सीताका पुत्र है, तो उनके चित्तमें बड़ा विस्मय हुआ [किन्तु उस बालकने उन्हें युद्धके लिये ललकारा था; इसलिये] उन्होंने क्रोधमें भरकर धनुष उठा लिया। उन्हें धनुष लेते देख कुशको भी क्रोध हो आया और उसने अपने सुदृढ़ एवं उत्तम धनुषको खींचा। फिर तो कुश और शत्रुघ्नके धनुषसे लाखों बाण छूटने लगे। उनसे वहाँका सारा प्रदेश व्याप्त हो गया। यह एक अद्भुत बात थी। उस समय उद्दट वीर कुशने शत्रुघ्नपर नारायणास्त्रका प्रयोग किया; किन्तु वह अस्त्र उन्हें पीड़ा देनेमें समर्थ न हो सका। यह देख कुशके क्रोधकी सीमा न रही। वे महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न राजा शत्रुघ्नसे बोले—'राजन्! मैं जानता हूँ, तुम संग्राममें जीतनेवाले महान् वीर हो; क्योंकि मेरे इस भयङ्कर अस्त्र—नारायणास्त्रने भी तुम्हें तनिक बाधा नहीं पहुँचायी; तथापि आज इसी समय मैं अपने तीन बाणोंसे तुम्हें गिरा दूँगा। यदि ऐसा न करूँ तो मेरी प्रतिज्ञा सुनो, जो करोड़ों पुण्योंसे भी दुर्लभ मनुष्य-शरीरको पाकर मोहवश उसका आदर नहीं करता [भगवद्भजन आदिके द्वारा उसको सफल नहीं बनाता] उस पुरुषको लगनेवाला पातक मुझे भी लगे। अच्छा,

अब तुम सावधान हो जाओ ! मैं तत्काल ही तुम्हें पृथ्वीपर गिराता हूँ।' ऐसा कहकर कुशने अपने धनुषपर एक बाण चढ़ाया, जो कालाग्निके समान भयङ्कर था। उन्होंने शत्रुके अत्यन्त कठोर एवं विशाल वक्षःस्थलको लक्ष्य करके छोड़ दिया। कुशको उस बाणका सञ्चान करते देख शत्रुघ्न कोपमें भर गये तथा श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करके उन्होंने तुरंत ही उसे काट डाला। बाणके कटनेसे कुशका क्रोध और भी भड़क उठा तथा उन्होंने धनुषपर दूसरा बाण चढ़ाया। उस बाणके द्वारा वे शत्रुघ्नकी छाती छेद डालनेका विचार कर ही रहे थे कि शत्रुघ्ने उसको भी काट गिराया। तब तो कुशको और भी क्रोध हुआ। अब उन्होंने अपनी माताके चरणोंका स्मरण करके धनुषपर तीसरा उत्तम बाण रखा। शत्रुघ्ने उसको भी शीघ्र ही काट डालनेके विचारसे बाण हाथमें लिया; किन्तु उसे छोड़नेके पहले ही वे कुशके बाणसे घायल होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। शत्रुघ्नके गिरनेपर सेनामें बड़ा भारी हाहाकार मचा। उस समय अपनी भुजाओंके बलपर गर्व रखनेवाले वीरवर कुशकी विजय हुई।

शेषजी कहते हैं—मुने ! राजाओंमें श्रेष्ठ सुरथने जब शत्रुघ्नको गिरा देखा तो वे अत्यन्त अद्भुत मणिमय रथपर बैठकर युद्धके लिये गये। वे महान् वीरोंके शिरोमणि थे। कुशके पास पहुँचकर उन्होंने अनेकों बाण छोड़े और समरभूमिमें कुशको व्यथित कर दिया। तब कुशने भी दस बाण मारकर सुरथको रथहीन कर दिया और प्रत्यक्षा चढ़ाये हुए उनके सुटूँ धनुषको भी वेगपूर्वक काट डाला। जब एक किसी दिव्य अस्त्रका प्रयोग करता, तो दूसरा उसके बदलेमें संहारास्त्रका उपयोग करता था और जब दूसरा किसी अस्त्रको फेंकता तो पहला भी वैसा ही अस्त्र चलाकर तुरंत उसका बदला चुकाता था। इस प्रकार उन दोनोंमें घोर घमासान युद्ध हुआ, जो वीरोंके रोंगटे खड़े कर देनेवाला था। कुशने सोचा, अब मुझे क्या करना चाहिये ? कर्तव्यका निश्चय करके उन्होंने एक तीक्ष्ण एवं भयङ्कर सायक हाथमें लिया। छूटते ही वह कालाग्निके समान प्रज्वलित हो उठा। उसे आते देख सुरथने ज्यों ही काटनेका विचार

किया त्यों ही वह महाबाण तुरंत उनकी छातीमें आ लगा। सुरथ मूर्च्छित होकर रथपर गिर पड़े। यह देख सारथि उन्हें रणभूमिसे बाहर ले गया।

सुरथके गिर जानेपर कुश विजयी हुए—यह देख पवनकुमार हनुमान्‌जीने सहसा एक विशाल शालका वृक्ष उखाड़ लिया। महान् बलवान् तो वे थे ही, कुशकी छातीको लक्ष्य बनाकर उनसे युद्ध करनेके लिये गये। निकट जाकर उन्होंने कुशकी छातीपर वह शालवृक्ष दे मारा। उसकी छोट खाकर वीर कुशने संहारास्त्र उठाया। उनका छोड़ा हुआ संहारास्त्र दुर्जय (अमोघ) था। उसे देखकर हनुमान्‌जी मन-ही-मन भक्तोंका विघ्न नष्ट करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करने लगे। इतनेहीमें उनकी छातीपर उस अस्त्रकी करारी छोट पड़ी। वह बड़ी व्यथा पहुँचानेवाला अस्त्र था। उसके लगते ही हनुमान्‌जीको मूर्च्छा आ गयी। तत्पश्चात् उस रणक्षेत्रमें कुशके चलाये हुए हजारों बाणोंकी मार खाकर सारी सेनाके पाँव उखड़ गये। समूची चतुरङ्गिणी सेना भाग चली।

उस समय वानरराज सुग्रीव उस विशाल वाहिनीके संरक्षक हुए। वे अनेकों वृक्ष उखाड़कर उद्धट वीर कुशकी ओर दौड़े। परन्तु कुशने हँसते-हँसते खेलमें ही वे सारे वृक्ष काट गिराये। तब सुग्रीवने एक भयंकर पर्वत उठाकर कुशके मस्तकको उसका निशाना बनाया। उस पर्वतको आते देख कुशने शीघ्र ही अनेकों बाणोंका प्रहर करके उसे चूर्ण कर डाला। वह पर्वत महारुद्रके शरीरमें लगाने योग्य भस्म-सा बन गया। बालकका यह महान् पराक्रम देखकर सुग्रीवको बड़ा अमर्ष हुआ और उन्होंने कुशको मारनेके लिये रोषपूर्वक एक वृक्ष हाथमें लिया। इतनेहीमें लवके बड़े भाई वीरवर कुशने वारुणास्त्रका प्रयोग किया और सुग्रीवको वरुण-पाशसे दृढ़तापूर्वक बाँध लिया। बलशाली कुशके द्वारा कोमल पाशोंसे बाँधे जानेपर सुग्रीव रणभूमिमें गिर पड़े। सुग्रीवको गिरा देख सभी योद्धा इधर-उधर भाग गये। महावीरशिरोमणि कुशने विजय पायी। इसी समय लवने भी पुष्कल, अङ्गद, प्रतापाग्र्य, वीरमणि तथा अन्य

राजाओंको जीतकर रणमें विजय पायी। फिर दोनों भाई बड़े हर्षमें भरकर एक-दूसरेसे मिले।



लवने कहा— भैया ! आपकी कृपासे मैं युद्धरूपी समुद्रके पार हुआ। अब हमलोग इस रणकी स्मृतिके लिये कोई सुन्दर चिह्न तलाश करने चलें।' ऐसा कहकर लव अपने भाई कुशके साथ पहले राजा शत्रुघ्नके निकट गये। वहाँ कुशने उनकी सुवर्णमण्डित मनोहर मुकुटमणि ले ली। फिर वीरवर लवने पुष्कलका सुन्दर किरीट उतार लिया। इसके बाद दोनों भाइयोंने उनके बहुमूल्य भुजबंद तथा हथियारोंको भी हथिया लिया। तदनन्तर हनुमान् और सुग्रीवके पास जाकर उन दोनोंको बाँधा। फिर लवने अपने भाईसे कहा— 'भैया ! मैं इन दोनोंको अपने आश्रममें ले चलूँगा। वहाँ मुनियोंके बालक इनसे खेलेंगे और मेरे भी मनोरञ्जन होगा।' इस तरहकी बातें करते हुए उन दोनों महाबली वानरोंको पकड़कर वे आश्रमकी ओर चले और माताकी कुटीपर जा पहुँचे। अपने दोनों मनोहर बालकोंको आया देख माता जानकीको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने बड़े स्नेहके साथ उन्हें छातीसे लगाया। किन्तु जब उनके लाये हुए दोनों वानरोंपर उनकी दृष्टि पड़ी

तो उन्होंने हनुमान् और वानरराज सुग्रीवको सहसा पहचान लिया। अब वे उन्हें छोड़ देनेकी आज्ञा देती हुई यह श्रेष्ठ वचन बोलीं— 'पुत्रो ! ये दोनों वानर बड़े वीर



और महाबलवान् हैं; इन्हें छोड़ दो। ये वीर हनुमान्‌जी हैं, जिन्होंने रावणकी पुरी लङ्घाको भस्म किया था; तथा ये भी वानर और भालुओंके राजा सुग्रीव हैं। इन दोनोंको तुमने किसलिये पकड़ा है ? अथवा क्यों इनके साथ अनादरपूर्ण बर्ताव किया है ?'

पुत्रोंने कहा— 'माँ ! एक राम नामसे प्रसिद्ध बलवान् राजा हैं, जो महाराज दशरथके पुत्र हैं। उन्होंने एक सुन्दर घोड़ा छोड़ रखा है, जिसके ललाटपर सोनेका पत्र बाँधा है। उसमें यह लिखा है कि 'जो सच्चे क्षत्रिय हों, वे इस घोड़ेको पकड़ें; अन्यथा मेरे सामने मस्तक झुकावें।' उस राजाकी ढिठाई देखकर मैंने घोड़ेको पकड़ लिया। सारी सेनाको हमलोगोंने युद्धमें मार गिराया है। यह राजा शत्रुघ्नका मुकुट है तथा यह दूसरे वीर महात्मा पुष्कलका किरीट है।'

सीतानें कहा— पुत्रो ! तुम दोनोंने बड़ा अन्याय किया। श्रीरामचन्द्रजीका घोड़ा हुआ महान् अश्व तुमने

पकड़ा, अनेकों वीरोंको मार गिराया और इन कपीश्वरोंको भी बाँध लिया—यह सब अच्छा नहीं हुआ। वीरो ! तुम नहीं जानते, वह तुम्हारे पिताका ही घोड़ा है [श्रीराम तुम्हारे पिता है], उन्होंने अश्वमेध-यज्ञके लिये उस अश्वको छोड़ रखा था। इन दोनों वानर वीरोंको छोड़ दो तथा उस श्रेष्ठ अश्वको भी खोल दो।

माताकी बात सुनकर उन बलवान् बालकोंने कहा—‘माँ ! हमलोगोंने क्षत्रिय-धर्मके अनुसार उस बलवान् राजाको परास्त किया है। क्षात्रधर्मके अनुसार युद्ध करनेवालोंको अन्यायका भागी नहीं होना पड़ता। आजके पहले जब हमलोग पढ़ रहे थे, उस समय महर्षि वाल्मीकिजीने भी हमसे ऐसा ही कहा था—‘क्षात्र-धर्मके अनुसार पुत्र पितासे, भाई भाईसे और शिष्य गुरुसे भी युद्ध कर सकता है, इससे पाप नहीं होता।’ तुम्हारी आज्ञासे हमलोग अभी उस उत्तम अश्वको

लौटाये देते हैं; तथा इन वानरोंको भी छोड़ देंगे। तुमने जो कुछ कहा है, सबका हम पालन करेंगे।’

मातासे ऐसा कहकर वे दोनों वीर पुनः रणभूमिमें गये और वहाँ उन दोनों कपीश्वरों तथा उस अश्वमेध-योग्य अश्वको भी छोड़ आये। अपने पुत्रोंके द्वारा सेनाका मारा जाना सुनकर सीतादेवीने मन-ही-मन श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान किया और सबके साक्षी भगवान् सूर्यकी ओर देखा। वे कहने लगीं—‘यदि मैं मन, वाणी तथा क्रियाद्वारा केवल श्रीरघुनाथजीका ही भजन करती हूँ दूसरे किसीको कभी मनमें भी नहीं लाती तो ये राजा शत्रुघ्न जीवित हो जायें तथा इनकी वह विशाल सेना भी, जो मेरे पुत्रोंके द्वारा बलपूर्वक नष्ट की गयी है, मेरे सत्यके प्रभावसे जी उठे।’ पतित्रता जानकीने ज्यों ही यह वचन मुँहसे निकाला, त्यों ही वह सारी सेना, जो संग्राम-भूमिमें नष्ट हुई थी, जीवित हो गयी।

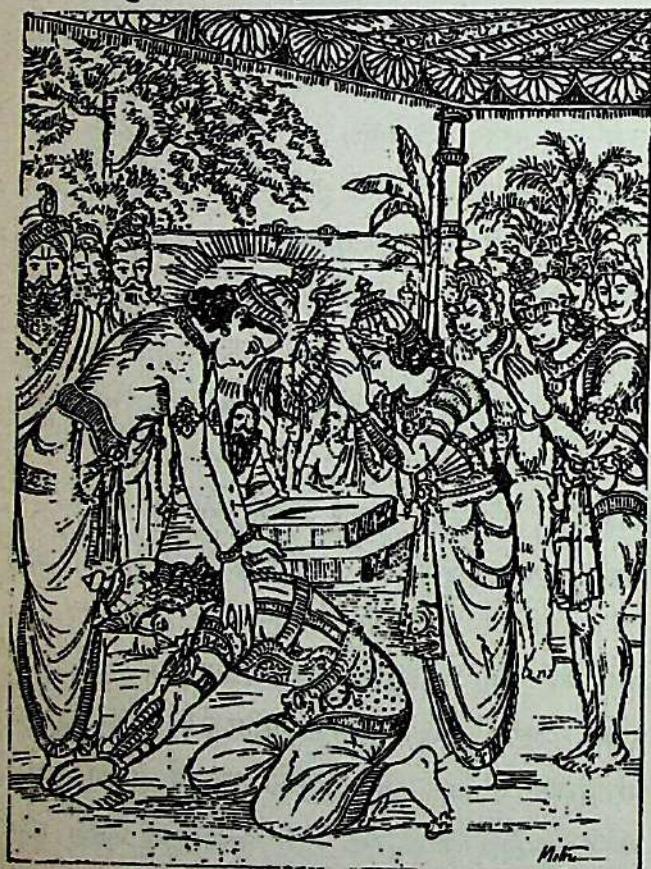


## शत्रुघ्न आदिका अयोध्यामें जाकर श्रीरघुनाथजीसे मिलना तथा मन्त्री सुमतिका उन्हें यात्राका समाचार बतलाना

शेषजी कहते हैं—मुने ! रणभूमिमें पड़े हुए वीर शत्रुघ्नने क्षणभरमें मूर्च्छा त्याग दी तथा अन्यान्य बलवान् वीर भी, जो मूर्च्छामें पड़े थे, जीवित हो गये। शत्रुघ्नने देखा अश्वमेधका श्रेष्ठ अश्व सामने खड़ा है, मेरे मस्तकका मुकुट गायब है तथा मरी हुई सेना भी जी उठी है। यह सब देखकर उनके मनमें बड़ा आश्रय हुआ और वे मूर्च्छासे जगे हुए बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ सुमतिसे बोले—‘मन्त्रिवर ! इस बालकने कृपा करके यज्ञ पूर्ण करनेके लिये यह घोड़ा दे दिया है। अब हमलोग जल्दी ही श्रीरघुनाथजीके पास चलें। वे घोड़ेके आनेकी प्रतीक्षा करते होंगे।’ यों कहकर वे अपने रथपर जा बैठे और घोड़ेको साथ लेकर वेगपूर्वक उस आश्रमसे दूर चले गये। ऐसी और शङ्खकी आवाज बंद थी। उनके पीछे-पीछे विशाल चतुरङ्गिणी सेना चली जा रही थी। तरङ्ग-मालाओंसे सुशोभित गङ्गा नदीको पार करके उन्होंने अपने राज्यमें प्रवेश किया, जो आत्मीयजनोंके

निवाससे शोभा पा रहा था। शत्रुघ्न मणिमय रथपर बैठे महान् कोदण्ड धारण किये हुए जा रहे थे। उनके साथ भरतकुमार पुष्कल और राजा सुरथ भी थे। चलते-चलते क्रमशः वे अपनी नगरी अयोध्यामें पहुँचे, जो सूर्यवंशी क्षत्रियोंसे सुशोभित थी। वहाँ फहराती हुयी अनेकों ऊँची-ऊँची पताकाएँ उस नगरकी शोभा बढ़ा रही थीं। दुर्गके कारण उसकी सुषमा और भी बढ़ गयी थी। श्रीरामचन्द्रजीने जब सुना कि महात्मा शत्रुघ्न और वीर पुष्कलके साथ अश्व आ पहुँचा तो उन्हें बड़ा हर्ष हुआ और बलवानोंमें श्रेष्ठ भाई लक्ष्मणको उन्होंने शत्रुघ्नके पास भेजा। लक्ष्मण सेनाके साथ जाकर प्रवाससे आये हुए भाई शत्रुघ्नसे बड़ी प्रसन्नताके साथ मिले। शत्रुघ्नका शरीर अनेकों घावोंसे सुशोभित था। उन्होंने कुशल पूछी और तरह-तरहकी बातें कीं। उनसे मिलकर शत्रुघ्नको बड़ी प्रसन्नता हुई। महापना लक्ष्मणने भाई शत्रुघ्नके साथ अपने रथपर बैठकर विशाल

सेनासहित नगरमें प्रवेश किया; जहाँ तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाली पुण्यसलिला सरयू श्रीरघुनाथजीकी चरण-रजसे पवित्र होकर शरत्कालीन चन्द्रमाके समान स्वच्छ जलसे शोभा पा रही है। श्रीरघुनाथजी शत्रुघ्नको पुष्कलके साथ आते देख अपने आनन्दोल्लासको रोक न सके। वे अपने अश्वरक्षक बन्धुसे मिलनेके लिये ज्यों ही खड़े हुए त्यों ही आतृभक्त शत्रुघ्न उनके चरणोंमें पड़



गये। घावके चिह्नोंसे सुशोभित अपने विनयशील भाईको पैरोंपर पड़ा देख श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें प्रेमपूर्वक उठाकर भुजाओंमें कस लिया और उनके मस्तकपर हर्षके आँसू गिराते हुए परमानन्दमें निमग्र हो गये। उस समय उन्हें जितनी प्रसन्नता हुई, वह वाणीसे परे है— उसका वर्णन नहीं हो सकता। तत्पश्चात् पुष्कलने विनयसे विहळ होकर भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम किया। उन्हें अपने चरणोंमें पड़ा देख श्रीरघुनाथजीने गोदमें उठा लिया और कसकर छातीसे लगाया। इसी प्रकार हनुमान्, सुग्रीव, अङ्गद, लक्ष्मीनिधि, प्रतापाग्रय, सुबाहु, सुमद, विमल, नीलरत्न, सत्यवान्, वीरमणि, श्रीरामभक्त सुरथ तथा अन्य बड़भागी स्नेहियों और चरणोंमें पड़े हुए

राजाओंको श्रीरघुनाथजीने अपने हृदयसे लगाया। सुमति भी भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले श्रीरघुनाथजीका गाढ़ आलिङ्गन करके प्रसन्नतापूर्वक उनके सामने खड़े हो गये। तब वक्ताओंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी समीप आये हुए अपने मन्त्रीकी ओर देख अत्यन्त हर्षमें भरकर बोले— 'मन्त्रिवर ! बताओ, ये कौन-कौन-से राजा हैं ? तथा ये सब लोग यहाँ कैसे पधारे हैं ? अपना अश्व कहाँ-कहाँ गया, किसने-किसने उसे पकड़ा तथा मेरे महान् बलशाली बन्धुने किस प्रकार उसको छुड़ाया ?'

सुमतिने कहा—भगवन् ! आप सर्वज्ञ हैं, भला आपके सामने आज मैं इन सब बातोंका वर्णन कैसे करूँ। आप सबके द्रष्टा हैं, सब कुछ जानते हैं, तो भी लौकिक रीतिका आश्रय लेकर मुझसे पूछ रहे हैं। तथापि मैं सदाकी भाँति आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके कहता हूँ सुनिये—'स्वामिन् ! आप समस्त राजाओंके शिरोमणि हैं। आपकी कृपासे आपके अश्वने, जो भालपत्रके कारण बड़ी शोभा पा रहा था, इस पृथ्वीपर सर्वत्र भ्रमण किया है। प्रायः कोई राजा ऐसा नहीं निकला, जिसने अपने मान और बलके घमंडमें आकर अश्वको पकड़ा हो। सबने अपना-अपना राज्य समर्पण करके आपके चरणोंमें मस्तक झुकाया। भला, विजयकी अभिलाषा रखनेवाला कौन ऐसा राजा होगा, जो राक्षसराज रावणके प्राण-हन्ता श्रीरघुनाथजीके श्रेष्ठ अश्वको पकड़ सके ? प्रभो ! आपका मनोहर अश्व सर्वत्र घूमता हुआ अहिच्छत्रा नगरीमें पहुँचा। वहाँके राजा सुमदने जब सुना कि श्रीरामचन्द्रजीका अश्व आया है, तो उन्होंने सेना और पुत्रोंके साथ आकर अपना सारा अकण्टक राज्य आपकी सेवामें समर्पित कर दिया। ये हैं राजा सुमद, जो बड़े-बड़े राजा—प्रभुओंके सेव्य आपके चरणोंमें प्रणाम करते हैं। इनके हृदयमें बहुत दिनोंसे आपके दर्शनकी अभिलाषा थी। आज अपनी कृपादृष्टिसे इन्हें अनुगृहीत कीजिये। अहिच्छत्रा नगरीसे आगे बढ़नेपर वह अश्व राजा सुबाहुके नगरमें गया, जो सब प्रकारके बलसे सम्पन्न हैं। वहाँ राजकुमार दमनने उस श्रेष्ठ अश्वको पकड़ लिया। फिर तो युद्ध छिड़ा और

पुष्कलने सुबाहु-पुत्रको मूर्च्छित करके विजय प्राप्त की । तब महाराज सुबाहु भी क्रोधमें भरकर रणभूमिमें आये और पवनकुमार हनुमानजीसे बलपूर्वक युद्ध करने लगे । उनका ज्ञान शापसे विलुप्त हो गया था । हनुमानजीके चरण-प्रहारसे उनका शाप दूर हुआ और वे अपने खोये हुए ज्ञानको पाकर अपना सब कुछ आपकी सेवामें अर्पण करके अश्वके रक्षक बन गये । ये ऊँचे ढील-डौलवाले राजा सुबाहु हैं, जो आपको नमस्कार करते हैं । ये युद्धकी कलामें बड़े निपुण हैं । आप अपनी दया-दृष्टिसे देखकर इनके ऊपर स्नेहकी वर्षा कीजिये । तदनन्तर, अपना यज्ञसम्बन्धी अश्व देवपुरमें गया, जो भगवान् शिवका निवासस्थान होनेके कारण अत्यन्त शोभा पा रहा था । वहाँका हाल तो आप जानते ही हैं, क्योंकि स्वयं आपने पदार्पण किया था । तत्पश्चात् विद्युन्माली दैत्यका वध किया गया । उसके बाद राजा सत्यवान् हमलोगोंसे मिले । महामते ! वहाँसे आगे जानेपर कुण्डलनगरमें राजा सुरथके साथ जो युद्ध हुआ, उसका हाल भी आपको मालूम ही है । कुण्डलनगरसे छूटनेपर अपना घोड़ा सब ओर बेखटके विचरता रहा । किसीने भी अपने पराक्रम और बलके घमण्डमें आकर उसे पकड़नेका नाम नहीं लिया । नरश्रेष्ठ ! तदनन्तर, लैटते समय जब आपका मनोरम अश्व महर्षि वाल्मीकिके रमणीय आश्रमपर पहुँचा, तो वहाँ जो कौतुक हुआ,

उसको ध्यान देकर सुनिये । वहाँ एक सोलह वर्षका बालक आया, जो रूप-रंगमें हू-बहू आपहीके समान था । वह बलवानोंमें श्रेष्ठ था । उसने भालपत्रसे चिह्नित अश्वको देखा और उसे पकड़ लिया । वहाँ सेनापति कालजितने उसके साथ घोर युद्ध किया । किन्तु उस बीर बालकने अपनी तीखी तलवारसे सेनापतिका काम तमाम कर दिया । फिर उस बीरशिरेमणिने पुष्कल आदि अनेकों बलवानोंको युद्धमें मार गिराया और शत्रुघ्नको भी मूर्च्छित किया । तब राजा शत्रुघ्नने अपने हृदयमें महान् दुःखकां अनुभव करके क्रोध किया और बलवानोंमें श्रेष्ठ उस बीरको मूर्च्छित कर दिया । शत्रुघ्नके द्वारा ज्यों ही वह मूर्च्छित हुआ त्यों ही उसीके आकारका एक दूसरा बालक वहाँ आ पहुँचा । फिर तो उसने और इसने भी एक-दूसरेका सहारा पाकर आपकी सारी सेनाका संहार कर डाला । मूर्च्छमें पड़े हुए सभी बीरोंके अश्व और आभूषण उतार लिये । फिर सुग्रीव और हनुमान्—इन दो बानरोंको उन्होंने पकड़कर बाँधा और इन्हें वे अपने आश्रमपर ले गये । पुनः कृपा करके उन्होंने स्वयं ही यह यज्ञका महान् अश्व लौटा दिया और मरी हुई समस्त सेनाको जीवन-दान दिया । तत्पश्चात् घोड़ा लेकर हमलोग आपके समीप आ गये । इतनी ही बातें मुझे ज्ञात हैं, जिन्हें मैंने आपके सामने प्रकट कर दिया ।

## ————★————

**वाल्मीकिजीके द्वारा सीताकी शुद्धता और अपने पुत्रोंका परिचय पाकर श्रीरामका सीताको लानेके लिये लक्ष्मणको भेजना, लक्ष्मण और सीताकी बातचीत, सीताका अपने पुत्रोंको भेजकर स्वयं न आना, श्रीरामकी प्रेरणासे पुनः लक्ष्मणका उन्हें बुलानेको**

**जाना तथा शेषजीका वात्स्यायनको रामायणका परिचय देना**

शेषजी कहते हैं—मुने ! सुमतिने जो वाल्मीकि मुनिके आश्रमपर रहनेवाले दो बालकोंकी चर्चा की, उसे सुनकर श्रीरामचन्द्रजी समझ गये वे दोनों मेरे ही पुत्र हैं, तो भी उन्होंने अपने यज्ञमें पधारे हुए महर्षि वाल्मीकिसे पूछा—मुनिवर ! आपके आश्रमपर मेरे समान रूप धारण करनेवाले दो महाबली बालक कौन हैं ? वहाँ

किसलिये रहते हैं ? सुननेमें आया है, वे धनुर्विद्यामें बड़े प्रवीण हैं । अमात्यके मुखसे उनका वर्णन सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है ! वे कैसे बालक हैं, जिन्होंने खेल-खेलमें ही शत्रुघ्नको भी मूर्च्छित कर दिया और हनुमानजीको भी बाँध लिया था ? महर्षे ! कृपा करके उन बालकोंका सारा चरित्र सुनाइये ।

वाल्मीकिने कहा—प्रभो ! आप अन्तर्यामी हैं; मनुष्योंके सम्बन्धकी हर एक बातका ज्ञान आपको क्यों न होगा ? तथापि आपके सन्तोषके लिये मैं कह रहा हूँ। जिस समय आपने जनककिशोरी सीताको बिना किसी अपराधके बनमें त्याग दिया, उस समय वह गर्भवती थी और बारम्बार विलाप करती हुई घोर बनमें भटक रही थी। परमपवित्र जनककिशोरीको दुःखसे आतुर होकर कुरीकी भाँति रोती-बिलखती देख मैं उसे अपने आश्रमपर ले गया। मुनियोंके बालकोंने उसके रहनेके लिये एक बड़ी सुन्दर पर्णशाला तैयार कर दी। उसीमें उसके दो पुत्र उत्पन्न हुए। जो अपनी कान्तिसे दसों दिशाओंको प्रकाशित कर रहे थे। उनमेंसे एकका नाम मैंने कुश-रख दिया और दूसरेका लव। वे दोनों बालक शुल्पपक्षके चन्द्रमाकी भाँति वहाँ प्रतिदिन बढ़ने लगे। समय-समयपर उनके उपनयन आदि जो-जो आवश्यक संस्कार थे, उनको भी मैंने सम्पन्न किया तथा उन्हें अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन कराया। इसके सिवा आयुर्वेद, धनुर्वेद और शास्त्रविद्या आदि सभी शास्त्रोंकी उनके रहस्योंसहित शिक्षा दी। इस प्रकार सम्पूर्ण शास्त्रोंका ज्ञान करकर मैंने उनके मस्तकपर हाथ रखा। वे दोनों संगीतमें भी बड़े प्रवीण हुए। उन्हें देखकर सब लोगोंको विस्मय होने लगा। घडज, मध्यम, गाढ़ार आदि स्वरोंकी विद्यामें उन्होंने बड़ी कुशलता प्राप्त की। उनकी ऐसी योग्यता देखकर मैं प्रतिदिन उनसे परम मनोहर रामायण-काव्यका गान कराया करता हूँ। भविष्य-ज्ञानकी शक्ति होनेके कारण इस रामायणको मैंने पहलेसे बना रखा था। मृदङ्ग, पणव, यन्त्र और वीणा आदि बाजे बजानेमें भी वे दोनों बालक बड़े चतुर हैं। बन-बनमें घूमकर रामायण गाते हुए वे मृग और पक्षियोंको भी मोहित कर लेते हैं। श्रीराम ! उन बालकोंके गीतका माधुर्य अद्भुत है। एक दिन उनका संगीत सुननेके लिये वरुणदेवता उन दोनों बालकोंको विभावरी पुरीमें ले गये। उनकी अवस्था, उनका रूप सभी मनोहर है। वे गान-विद्यारूपी समुद्रके पारगामी हैं। लोकपाल वरुणके आदेशसे उन्होंने मधुरस्वरमें

आपके परम सुन्दर, मृदु एवं पवित्र चरित्रका गान किया। वरुणने दूसरे-दूसरे गायकों तथा अपने समस्त परिवारके साथ सुना। मित्र देवता भी उनके साथ थे। रघुनन्दन ! आपका चरित्र सुधासे भी अधिक सरस एवं स्वादिष्ट है। उसे सुनते-सुनते मित्र और वरुणकी तृपि नहीं हुई।

तत्पश्चात् मैं भी उत्तम वरुणलोकमें गया। वहाँ वरुणने प्रेमसे द्रवीभूत होकर मेरी पूजा की। वे उन दोनों बालकोंके गाने-बजानेकी विद्या, अवस्था और गुणोंसे बहुत प्रसन्न थे। उस समय उन्होंने सीताके सम्बन्धमें [आपसे कहनेके लिये] मुझसे इस प्रकार बातचीत की—सीता पतिव्रताओंमें अग्रगण्य हैं। वे शील, रूप और अवस्था—सभी सद्गुणोंसे सम्पन्न हैं। उन्होंने वीर पुत्रोंको जन्म दिया है। वे बड़ी सौभाग्यशालिनी हैं; कदापि त्याग करनेके योग्य नहीं हैं। उनका चरित्र सदासे ही पवित्र है—इस बातके हम सभी देवता साक्षी हैं। जो लोग सीताजीके चरणोंका चिन्तन करते हैं, उन्हें तत्काल सिद्धि प्राप्त होती है। सीताके सङ्कल्पमात्रसे ही संसारकी सृष्टि, स्थिति और लय आदि कार्य होते हैं। ईश्वरीय व्यापार भी उन्होंसे सम्पन्न होते हैं। सीता ही मृत्यु और अमृत है। वे ही ताप देती और वे ही वर्षा करती हैं। श्रीरघुनाथजी ! आपकी जानकी ही स्वर्ग, मोक्ष, तप और दान हैं। ब्रह्मा, शिव तथा हम सभी लोकपालोंको वे ही उत्पन्न करती हैं। आप सम्पूर्ण जगत्के पिता और सीता सबकी माता हैं। आप सर्वज्ञ हैं, साक्षात् भगवान् हैं; अतः आप भी इस बातको जानते हैं कि सीता नित्य शुद्ध है। वे आपको प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हैं; इसलिये जनककिशोरी सीताको शुद्ध एवं अपनी प्रिया जानकर आप सदा उनका आदर करें। प्रभो ! आपका या सीताका किसी शापके कारण पराभव नहीं हो सकता—मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिजी ! मेरी ये सभी बातें आप साक्षात् महाराज श्रीरामचन्द्रजीसे कहियेगा।'

इस प्रकार सीताको स्वीकार करनेके सम्बन्धमें वरुणने मुझसे अपना विचार प्रकट किया था। इसी तरह अन्य सब लोकपालोंने भी अपनी-अपनी सम्मति दी है।

देवता, असुर और गन्धर्व—सबने कौतूहलवश आपके पुत्रोंके मुखसे रामायणका गान सुना है। सुनकर सभी प्रसन्न ही हुए हैं। उन्होंने आपके पुत्रोंकी बड़ी प्रशंसा की है। उन दोनों बालकोंने अपने रूप, गान, अवस्था और गुणोंके द्वारा तीनों लोकोंको मोह लिया है। लोकपालोंने आशीर्वादरूपसे जो कुछ दिया, उसे आपके पुत्रोंने स्वीकार किया। उन्होंने ऋषियों तथा अन्य लोकोंसे भी बढ़कर कीर्ति पायी है। पुण्यश्लोक (पवित्र यशवाले) पुरुषोंके शिरोमणि श्रीरघुनाथजी! आप त्रिलोकीनाथ होकर भी इस समय गृहस्थ-धर्मकी लीला कर रहे हैं; अतः विद्या, शील एवं सदगुणोंसे विभूषित अपने दोनों पुत्रोंको उनकी मातासहित ग्रहण कीजिये। सीताने ही आपकी मरी हुई सेनाको जिलाकर उसे प्राण-दान दिया है—इससे सब लोगोंको उनकी शुद्धिका विश्वास हो गया है। [यह लोगोंकी प्रतीतिके लिये प्रत्यक्ष प्रमाण है] यह प्रसङ्ग पतित पुरुषोंको भी पावन बनानेवाला है। मानद! सीताकी शुद्धिके विषयमें न तो आपसे कोई बात छिपी है, न हमलोगोंसे और न देवताओंसे ही। केवल साधारण लोगोंको कुछ भ्रम हो गया था, किन्तु उपर्युक्त घटनासे वह भी अवश्य दूर हो गया।

शेषजी कहते हैं—मुने ! भगवान् श्रीराम यद्यपि सर्वज्ञ हैं, तो भी जब वाल्मीकिजीने उन्हें इस प्रकार समझाया, तो वे उनकी स्तुति और नमस्कार करके लक्ष्मणसे बोले—‘तात ! तुम सुमित्रसहित रथपर बैठकर धर्मचारिणी सीताको पुत्रोंसहित ले आनेके लिये अभी जाओ। वहाँ मेरे तथा मुनिके इन वचनोंको सुनाना और सीताको समझा-बुझाकर शीघ्र ही अयोध्यापुरीमें ले आना।’

लक्ष्मणने कहा—प्रभो ! मैं अभी जाऊँगा, यदि आप सब लोगोंका प्रिय संदेश सुनकर महारानी सीताजी यहाँ पथारेंगी तो समझूँगा, मेरी यात्रा सफल हो गयी।

श्रीरामचन्द्रजीसे ऐसा कहकर लक्ष्मण उनकी आज्ञासे रथपर बैठे और मुनिके एक शिष्य तथा सुमित्रको साथ लेकर आश्रमको गये। रास्तेमें यह सोचते जाते थे कि ‘भगवती सीताको किस प्रकार प्रसन्न करना

चाहिये ?’ ऐसा विचार करनेसे उनके हृदयमें कभी हर्ष होता था और कभी संकोच। वे दोनों भावोंके बीचकी स्थितिमें थे। इसी अवस्थामें सीताके आश्रमपर पहुँचे, जो उनके श्रमको दूर करनेवाला था। वहाँ लक्ष्मण रथसे उतरकर सीताके समीप गये और आँखोंमें आँसू भरकर ‘आर्ये ! पूजनीये !! भगवति !! कल्याणमयी !’ इत्यादि सम्बोधनोंका बारम्बार उच्चारण करते हुए उनके चरणोंमें गिर पड़े। भगवती सीताने वात्सल्य-प्रेमसे विह्वल होकर लक्ष्मणको उठाया और इस प्रकार पूछा—‘सौम्य ! मुनिजनोंको ही प्रिय लगानेवाले इस बनमें तुम कैसे आये ? बताओ, माता कौसल्याके गर्भरूपी शुक्तिसे जो मौक्किकके समान प्रकट हुए हैं, वे मेरे आराध्यदेव श्रीरघुनाथजी तो कुशलसे हैं न ? देवर ! उन्होंने अकीर्तिसे डरकर तुम्हें मेरे परित्यागका कार्य सौंपा था। यदि इससे भी संसारमें उनकी निर्मल कीर्तिका विस्तार हो सके तो मुझे संतोष ही होगा। मैं अपने प्राण देकर भी पतिदेवके सुयशको स्थिर रखना चाहती हूँ। उन्होंने मुझे त्याग दिया है तो भी मैंने उनका थोड़ी देरके लिये भी कभी त्याग नहीं किया है। [निरन्तर उन्हींका चिन्तन करती रहती हूँ] मेरे ऊपर सदा कृपा रखनेवाली माता कौसल्याको तो कोई कष्ट नहीं है ? वे कुशलसे हैं न ? भरत आदि भाई भी तो सकुशल हैं न ? तथा महाभागा सुमित्रा, जो मुझे अपने प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय मानती है, कैसी है ? उनकी कुशल बताओ।’

इस प्रकार सीताने जब बारम्बार सबकी कुशल पूछी तो लक्ष्मणने कहा—‘देवि ! महाराज कुशलसे हैं और आपकी भी कुशलता पूछ रहे हैं। माता कौसल्या, सुमित्रा तथा राजभवनकी अन्य सभी देवियोंने प्रेमपूर्वक आशीर्वाद देते हुए आपकी कुशल पूछी है। भरत और शत्रुघ्ने कुशल-प्रश्नके साथ ही आपके श्रीचरणोंमें प्रणाम कहलाया है, जिसे मैं सेवामें निवेदन करता हूँ। गुरुओं तथा समस्त गुरुपत्नियोंने भी आशीर्वाद दिया है, साथ ही कुशल-मङ्गल भी पूछा है। महाराज श्रीराम आपको बुला रहे हैं। हमारे स्वामीने कुछ रोते-रोते आपके प्रति जो सन्देश दिया है, उसे सुनिये। वक्ताके

हृदयमें जो बात रहती है, वह उसकी वाणीमें निस्सन्देह व्यक्त हो जाती है [श्रीरघुनाथजीने कहा है—] 'सतीशिरोमणि सीते ! लोग मुझे ही सबके ईश्वरका भी ईश्वर कहते हैं; किन्तु मैं कहता हूँ जगत्में जो कुछ हो रहा है, इसका स्वतन्त्र कारण अदृष्ट (प्रारब्ध) ही है। जो सबका ईश्वर है, वह भी प्रत्येक कार्यमें अदृष्टका ही अनुसरण करता है। मेरे धनुष तोड़नेमें, कैकेयीकी बुद्धि अदृष्ट होनेमें, पिताकी मृत्युमें, मेरे वन जानेमें, वहाँ तुम्हारा हरण होनेमें, समुद्रके पार जानेमें, राक्षसराज रावणके मारनेमें, प्रत्येक युद्धके अवसरपर वानर, भालू और राक्षसोंकी सहायता मिलनेमें, तुम्हारी प्राप्तिमें, मेरी प्रतिज्ञाके पूर्ण होनेमें, पुनः अपने बन्धुओंके साथ संयोग होनेमें, राज्यकी प्राप्तिमें तथा फिर मुझसे मेरी प्रियाका वियोग होनेमें एकमात्र अदृष्ट ही अनिवार्य कारण है। देवि ! आज वही अदृष्ट फिर हम दोनोंका संयोग करनेके लिये प्रसन्न हो रहा है। ज्ञानीलोग भी अदृष्टका ही अनुसरण करते हैं। उस अदृष्टका भोगसे ही क्षय होता है; अतः तुमने वनमें रहकर उसका भोग पूरा कर लिया है। सीते ! तुम्हारे प्रति जो मेरा अकृत्रिम स्नेह है, वह निरन्तर बढ़ता रहता है, आज वही स्नेह निन्दा करनेवाले लोगोंकी उपेक्षा करके तुम्हें आदरपूर्वक बुला रहा है। दोषकी आशङ्का-मात्रसे भी स्नेहकी निर्मलता नष्ट हो जाती है; इसलिये विद्वानोंको [दोषके मार्जनद्वारा] स्नेहको शुद्ध करके ही उसका आस्वादन करना चाहिये। कल्याणी ! [तुम्हें वनमें भेजकर] मैंने तुम्हारे प्रति अपने स्नेहकी शुद्धि ही की है; अतः तुम्हें इस विषयमें कुछ अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। [मैंने तुम्हारा त्याग किया है—ऐसा नहीं मानना चाहिये]। शिष्ट पुरुषोंके मार्गका अनुसरण करके मैंने निन्दा करनेवाले लोगोंकी भी रक्षा ही की है। देवि ! हम दोनोंकी जो निन्दा की गयी है, इससे हमारी तो प्रत्येक अवस्थामें शुद्धि ही होगी; किन्तु ये मूर्खलोग जो महापुरुषोंके चरित्रको लेकर निन्दा करते हैं; इससे वे स्वयं ही नष्ट हो जायेंगे। हम दोनोंकी कीर्ति उज्ज्वल है, हम दोनोंका स्नेह-रस उज्ज्वल है, हमलोगोंके वंश

उज्ज्वल हैं तथा हमारे सम्पूर्ण कर्म भी उज्ज्वल है। इस पृथ्वीपर जो हम दोनोंकी कीर्तिका गान करनेवाले पुरुष हैं, वे भी उज्ज्वल रहेंगे। जो हम दोनोंके प्रति भक्ति रखते हैं, वे संसार-सागरसे पार हो जायेंगे।' इस प्रकार आपके गुणोंसे प्रसन्न होकर श्रीरघुनाथजीने यह संदेश दिया है; अतः अब आप अपने पतिदेवके चरण-कमलोंका दर्शन करनेके लिये अपने मनको उनके प्रति सदय बनाइये। महारानी ! आपके दोनों कुमार हाथीपर बैठकर आगे-आगे चलें, आप शिविकामें आरूढ़ होकर मध्यमें रहें और मैं आपके पीछे-पीछे चलूँ। इस तरह आप अपनी पुरी अयोध्यामें पधारें। वहाँ चलकर जब आप अपने प्रियतम श्रीरामसे मिलेंगी, उस समय यज्ञशालामें सब ओरसे आयी हुई सम्पूर्ण राज-महिलाओंको, समस्त ऋषि-पलियोंको तथा माता कौसल्याको भी बड़ा अनन्द होगा। नाना प्रकारके बाजे बजेंगे, मङ्गलगान होंगे तथा अन्य ऐसे ही समारोहोंके द्वारा आज आपके शुभागमनका महान् उत्सव मनाया जायगा।'

शेषजी कहते हैं—मुने ! यह सन्देश सुनकर महारानी सीताने कहा—'लक्ष्मण ! मैं धर्म, अर्थ और कामसे शुन्य हूँ। भला मेरे द्वारा महाराजका कौन-सा कार्य सिद्ध होगा ? पाणिग्रहणके समय जो उनका मनोहर रूप मेरे हृदयमें बस गया, वह कभी अलग नहीं होता। ये दोनों कुमार उन्हींके तेजसे प्रकट हुए हैं। ये वंशके अङ्गुर और महान् वीर हैं। इन्होंने धनुर्विद्यामें विशिष्ट योग्यता प्राप्त की है। इन्हें पिताके समीप ले जाकर यत्पूर्वक इनका लालन-पालन करना। मैं तो अब यहीं रहकर तपस्याके द्वारा अपनी इच्छाके अनुसार श्रीरघुनाथजीकी आराधना करूँगी। महाभाग ! तुम वहाँ जाकर सभी पूज्यजनोंके चरणोंमें मेरा प्रणाम कहना और सबसे कुशल बताकर मेरी ओरसे भी सबकी कुशल पूछना।'

इसके बाद सीताने अपने दोनों बालकोंको आदेश दिया—'पुत्रो ! अब तुम अपने पिताके पास जाओ। उनकी सेवा-शुश्रूषा करना। वे तुम दोनोंको अपना पद

प्रदान करेंगे ।' कुमार कुश और लव नहीं चाहते थे कि



हम माताके चरणोंसे अलग हों; फिर भी उनकी आज्ञा मानकर वे लक्ष्मणके साथ गये । वहाँ पहुँचनेपर भी वे वाल्मीकिजीके ही चरणोंके निकट गये । लक्ष्मणने भी बालकोंके साथ जाकर पहले महर्षिको ही प्रणाम किया । फिर वाल्मीकि, लक्ष्मण तथा वे दोनों कुमार सब एक साथ मिलकर चले और श्रीरामचन्द्रजीको सभामें स्थित जान उनके दर्शनके लिये उत्कण्ठित हो वहीं गये । लक्ष्मणने श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रणाम करके सीताके साथ जो कुछ बातचीत हुई थी, वह सब उनसे कह सुनायी । उस समय परम बुद्धिमान् लक्ष्मण हर्ष और शोक—दोनों भावोंमें मग्न हो रहे थे ।

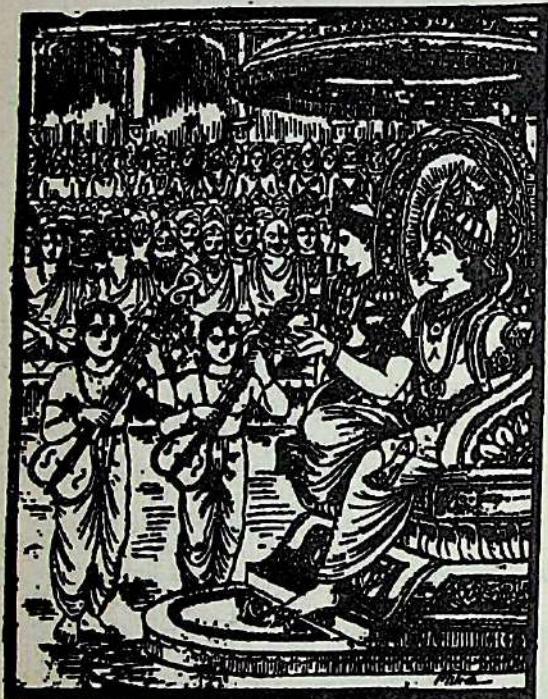
श्रीरामचन्द्रजीने कहा—सखे ! एक बार फिर वहाँ जाओ और महान् प्रयत्न करके सीताको शीघ्र यहाँ ले आओ । तुम्हारा कल्याण हो । मेरी ये बातें जानकीसे कहना—‘देवि ! क्या वनमें तपस्या करके तुमने मेरे सिवा कोई दूसरी गति प्राप्त करनेका विचार किया है ? अथवा मेरे अतिरिक्त और कोई गति सुनी या देखी है जो मैं बुलानेपर भी नहीं आ रही हो ? तुम अपनी ही

इच्छाके कारण यहाँसे मुनियोंको प्रिय लगनेवाले वनमें गयी थीं । वहाँ तुमने मुनिपतियोंका पूजन किया और मुनियोंके भी दर्शन किये; अब तो तुम्हारी इच्छा पूरी हुई ! अब क्यों नहीं आतीं ? जानकी ! रुक्षी कहीं भी क्यों न जाय, पति ही उसके लिये एकमात्र गति है । वह गुणहीन होनेपर भी पलीके लिये गुणोंका सागर है । फिर यदि वह मनके अनुकूल हुआ तब तो उसकी मान्यताके विषयमें कहना ही क्या है । उत्तम कुलकी स्त्रियाँ जो-जो कार्य करती हैं, वह सब पतिको सन्तुष्ट करनेके लिये ही होता है । परन्तु मैं तो तुमपर पहलेसे ही विशेष सन्तुष्ट हूँ और इस समय वह सन्तोष और भी बढ़ गया है । त्याग, जप, तप, दान, ब्रत, तीर्थ और दया आदि सभी साधन मेरे प्रसन्न होनेपर ही सफल होते हैं । मेरे सन्तुष्ट होनेपर सम्पूर्ण देवता सन्तुष्ट हो जाते हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ।'

लक्ष्मणने कहा—भगवन् ! सीताको ले आनेके उद्देश्यसे प्रसन्न होकर आपने जो-जो बातें कही हैं, वह सब मैं उन्हें विनयपूर्वक सुनाऊँगा ।

ऐसा कहकर लक्ष्मणने श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें प्रणाम किया और अत्यन्त वेगशाली रथपर सवार हो वे तुरंत सीताके आश्रमपर चल दिये । तदनन्तर वाल्मीकिजीने श्रीरामचन्द्रजीके दोनों पुत्रोंकी ओर, जो परम शोभायमान और अत्यन्त तेजस्वी थे, देखा तथा किञ्चित् मुसकराकर कहा—‘वत्स ! तुम दोनों वीणा बजाते हुए मधुर स्वरसे श्रीरामचन्द्रजीके अन्धुत चरित्रका गान करो ।’ महर्षिके इस प्रकार आज्ञा देनेपर उन बड़भागी बालकोंने महान् पुण्यदायक श्रीरामचरित्रका गान किया, जो सुन्दर वाक्यों और उत्तम पदोंमें चित्रित हुआ था, जिसमें धर्मकी साक्षात् विधि, पातिव्रत्यके उपदेश, महान् भ्रातृ-स्नेह तथा उत्तम गुरुभक्तिका वर्णन है । जहाँ स्वामी और सेवककी नीति मूर्तिमान् दिखायी देती है तथा जिसमें साक्षात् श्रीरघुनाथजीके हाथसे पापाचारियोंको दण्ड मिलनेका वर्णन है । बालकोंके उस गानसे सारा जगत् मुग्ध हो गया । स्वर्गके देवता भी विस्मयमें पड़ गये । किन्त्र भी वह गान सुनकर मूर्च्छित

हो गये। श्रीराम आदि सभी राजा नेत्रोंसे आनन्दके आँसू



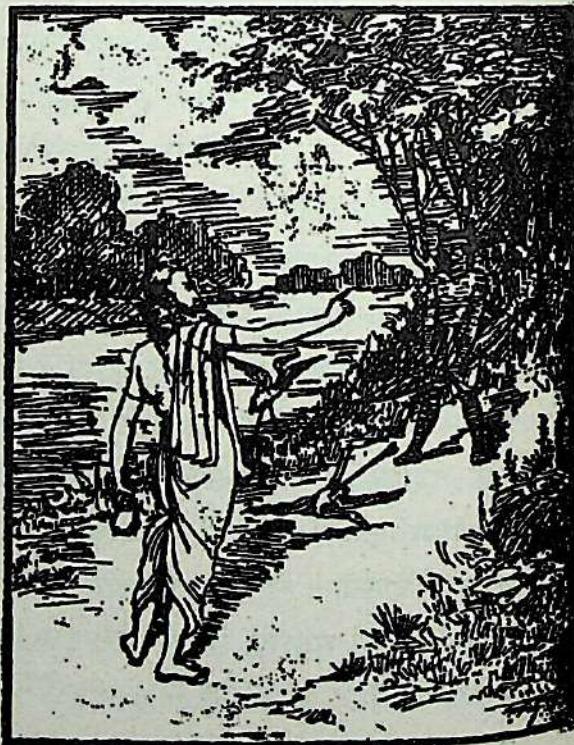
बहाने लगे। वे गीतके पञ्चम स्वरका आलाप सुनकर ऐसे मोहित हुए कि हिल-डुल नहीं सकते थे; चित्र-लिखित-से जान पड़ते थे।

तत्पश्चात् महर्षि वाल्मीकिने कुश और लवसे कृपापूर्वक कहा—‘वत्स ! तुमलोग नीतिके विद्वानोंमें श्रेष्ठ हो, अपने पिताको पहचानो [ये श्रीरघुनाथजी तुम्हारे पिता हैं; इनके प्रति पुत्रोचित बर्ताव करो]।’ मुनिका यह वचन सुनकर दोनों बालक विनीतभावसे पिताके चरणोंमें लग गये। माताकी भक्तिके कारण उन दोनोंके हृदय अत्यन्त निर्मल हो गये थे। श्रीरामचन्द्रजीने अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने दोनों बालकोंको छातीसे लगा लिया। उस समय उन्होंने ऐसा माना कि मेरा धर्म ही इन दोनों पुत्रोंके रूपमें मूर्तिमान् होकर उपस्थित हुआ है। वात्स्यायनजी ! सभामें बैठे हुए लोगोंने भी श्रीरामचन्द्र-जीके पुत्रोंका मनोहर मुख देखकर जानकीजीकी पति-भक्तिको सत्य माना।

शेषजीके मुखसे इतनी कथा सुनकर वात्स्यायनको सम्पूर्ण धर्मोंसे युक्त रामायणके विषयमें कुछ सुननेकी इच्छा हुई; अतएव उन्होंने पूछा—‘स्वामिन् ! महर्षि

वाल्मीकिने इस रामायण नामक महान् काव्यकी रचना किस समय की, किस कारणसे की तथा इसके भीतर किन-किन बातोंका वर्णन है ?’

शेषजीने कहा—एक समयकी बात है, वाल्मीकिजी महान् वनके भीतर गये, जहाँ ताल, तमाल और खिले हुए पलाशके वृक्ष शोभा पा रहे थे। कोयलकी मीठी तान और भ्रमरोंकी गुंजारसे गुंजते रहनेके कारण वह वन्यप्रदेश सब ओरसे रमणीय जान पड़ता था। कितने ही मनोहर पक्षी वहाँ बसेरा ले रहे थे। महर्षि जहाँ खड़े थे, उसके पास ही दो सुन्दर क्रौञ्चपक्षी कामबाणसे पीड़ित हो रमण कर रहे थे। दोनोंमें परस्पर स्नेह था और दोनों एक-दूसरेके सम्पर्कमें रहकर अत्यन्त हर्षका अनुभव करते थे। इसी समय एक व्याध वहाँ आया और उस निर्दयीने उन पक्षियोंमेंसे



एकको जो बड़ा सुन्दर था, बाणसे मार गिराया। यह देख मुनिको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने सरिताका पावन जल हाथमें लेकर क्रौञ्चकी हत्या करनेवाले उस निषादको शाप दिया—‘ओ निषाद ! तुझे कभी भी शाश्वत शान्ति नहीं मिलेगी; क्योंकि तूने इन क्रौञ्च पक्षियोंमेंसे एककी, जो कामसे मोहित हो रहा था,

[बिना किसी अपराधके] हत्या कर डाली है।'\*

यह वाक्य छन्दोबद्ध इलोकके रूपमें निकला; इसे सुनकर मुनिके शिष्योंने प्रसन्न होकर कहा—‘स्वामिन्! आपने शाप देनेके लिये जिस वाक्यका प्रयोग किया है, उसमें सरस्वती देवीने इलोकका विस्तार किया है। मुनिश्रेष्ठ! यह वाक्य अत्यन्त मनोहर इलोक बन गया है।’ उस समय ब्रह्मिं वाल्मीकिजीके मनमें भी बड़ी प्रसन्नता हुई। उसी अवसरपर ब्रह्माजीने आकर



वाल्मीकिजीसे कहा—‘मुनीश्वर! तुम धन्य हो। आज सरस्वती तुम्हारे मुखमें स्थित होकर इलोकरूपमें प्रकट हुई है। इसलिये अब तुम मधुर अक्षरोंमें सुन्दर रामायणकी रचना करो। मुखसे निकलनेवाली वही वाणी धन्य है, जो श्रीरामनामसे युक्त हो। इसके सिवा, अन्य जितनी बातें हैं, सब कामकी कथाएँ हैं, ये मनुष्योंके लिये केवल सूतक (अपवित्रता) उत्पन्न करती हैं। अतः तुम श्रीरामचन्द्रजीके लोकप्रसिद्ध चरित्रको लेकर काव्य रचना करो, जिससे पद-पदपर पापियोंके पापका निवारण होगा।’ इतना कहकर ब्रह्माजी सम्पूर्ण देवताओंके साथ अन्तर्धान हो गये।

तदनन्तर, एक दिन वाल्मीकिजी नदीके मनोहर तटपर ध्यान लगा रहे थे। उस समय उनके हृदयमें सुन्दर रूपधारी श्रीरामचन्द्रजी प्रकट हुए। नील पद्म-दलके समान रथाम विग्रहवाले कमलनयन श्रीरामचन्द्रजीका



दर्शन पाकर मुनिने उनके भूत, वर्तमान और भविष्य—तीनों कालके चरित्रोंका साक्षात्कार किया। फिर तो उन्हें बड़ा आनन्द मिला और उन्होंने मनोहर पदों तथा नाना प्रकारके छन्दोंमें रामायणकी रचना की। उसमें अत्यन्त मनोरम छः काण्ड हैं—बाल, आरण्यक, किष्किन्धा, सुन्दर, युद्ध तथा उत्तर। महामते! जो इन काण्डोंको सुनता है, वह मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। बालकाण्डमें—राजा दशरथने प्रसन्नतापूर्वक पुत्रेष्ठि यज्ञ करके चार पुत्र प्राप्त किये, जो साक्षात् सनातन ब्रह्म श्रीहरिके अवतार थे। फिर श्रीरामचन्द्रजीका विश्वामित्रके यज्ञमें जाना, वहाँसे मिथिलामें जाकर सीतासे विवाह करना, मार्गमें परशुरामजीसे मिलते हुए अयोध्यापुरीमें आना, वहाँ युवराजपदपर अभिषेक होनेकी तैयारी, फिर

\* मा निषाद् प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः । यंज्ञौञ्चपक्षिणोरेकमवधीः काममोहितम् ॥

माता कैकेयीके कहनेसे वनमें जाना, गङ्गापार करके चित्रकूट पर्वतपर पहुँचना तथा वहाँ सीता और लक्ष्मणके साथ निवास करना—इत्यादि प्रसङ्गोंका वर्णन है। इसके अतिरिक्त न्यायके अनुसार चलनेवाले भरतने जब अपने भाई श्रीरामके वनमें जानेका समाचार सुना तो वे भी उन्हें लौटानेके लिये चित्रकूट पर्वतपर गये, किन्तु उन्हें जब न लौटा सके तो स्वयं भी उन्होंने अयोध्यासे बाहर नन्दिग्राममें वास किया। ये सब बातें भी बालकाण्डके ही अन्तर्गत हैं। इसके बाद आरण्यककाण्डमें आये हुए विषयोंका वर्णन सुनिये। सीता और लक्ष्मणसहित श्रीरामका भिन्न-भिन्न मुनियोंके आश्रमोंमें निवास करना, वहाँ-वहाँके स्थान आदिका वर्णन, शूर्पणखाकी नाकका काटा जाना, खर और दूषणका विनाश, मायामय मृगके रूपमें आये हुए मारीचका मारा जाना, राक्षस रावणके द्वारा राम-पत्नी सीताका हरण, श्रीरामका विरहाकुल होकर वनमें भटकना और मानवोचित लीलाएँ करना, फिर कबन्धसे भेट होना, पम्पासरोवरपर जाना और श्रीहनुमान्जीसे मिलाप होना—ये सभी कथाएँ आरण्यककाण्डके नामसे प्रसिद्ध हैं। तदनन्तर श्रीरामद्वारा सप्त ताल-वृक्षोंका भेदन, बालिका अद्भुत वध, सुग्रीवको राज्यदान, लक्ष्मणके द्वारा सुग्रीवको कर्तव्य-पालनका सन्देश देना, सुग्रीवका नगरसे निकलना, सैन्यसंग्रह, सीताकी खोजके लिये वानरोंका भेजा जाना। वानरोंकी सम्पातिसे भेट, हनुमान्जीके द्वारा

समुद्र-लङ्घन और दूसरे तटपर उनका पहुँचना—ये सब प्रसङ्ग किञ्चित्क्षाकाण्डके अन्तर्गत हैं। यह काण्ड अद्भुत है। अब सुन्दरकाण्डका वर्णन सुनिये, जहाँ श्रीराम-चन्द्रजीकी अद्भुत कथाका उल्लेख है। हनुमान्जीका सीताकी खोजके लिये लङ्घके प्रत्येक घरमें घूमना तथा वहाँके विचित्र-विचित्र दृश्योंका देखना, फिर सीताका दर्शन, उनके साथ बातचीत तथा वनका विध्वंस, कुपित हुए राक्षसोंके द्वारा हनुमान्जीका बन्धन, हनुमान्जीके द्वारा लङ्घका दाह, फिर समुद्रके इस पार आकर उनका वानरोंसे मिलना। श्रीरामचन्द्रजीको सीताकी दी हुई पहचान अर्पण करना, सेनाका लङ्घके लिये प्रस्थान, समुद्रमें पुल बाँधना तथा सेनामें शुक और सारणका आना—ये सब विषय सुन्दरकाण्डमें हैं। इस प्रकार सुन्दरकाण्डका परिचय दिया गया। युद्धकाण्डमें युद्ध और सीताकी प्राप्तिका वर्णन है। उत्तरकाण्डमें श्रीरामका ऋषियोंके साथ संवाद तथा यज्ञका आरम्भ आदि है। उसमें श्रीरामचन्द्रजीकी अनेकों कथाओंका वर्णन है, जो श्रोताओंके पापको नाश करनेवाली हैं। इस प्रकार मैंने छः काण्डोंका वर्णन किया। ये ब्रह्महत्याके पापको भी दूर करनेवाले हैं। उनकी कथाएँ बड़ी मनोहर हैं। मैंने यहाँ संक्षेपसे ही इनका परिचय दिया है। जो छः काण्डोंसे चिह्नित और चौबीस हजार इलोंकोंसे युक्त है, उसी वाल्मीकिनिर्मित ग्रन्थको रामायण नाम दिया गया है।



## सीताका आगमन, यज्ञका आरम्भ, अश्वकी मुक्ति, उसके पूर्वजन्मकी कथा, यज्ञका उपसंहार और रामभक्ति तथा अश्वमेध-कथा-श्रवणकी महिमा

शेषजी कहते हैं—मुने ! तदनन्तर लक्ष्मणने आकर पुनः जानकीके चरणोंमें प्रणाम किया। विनयशील लक्ष्मणको आया देख पुनः अपने बुलाये जानेकी बात सुनकर सीताने कहा—‘सुमित्रानन्दन ! मुझे श्रीरामचन्द्रजीने महान् वनमें त्याग दिया है, अतः अब मैं कैसे चल सकती हूँ ? यहीं महर्षि वाल्मीकिके आश्रमपर रहँगी और निरन्तर श्रीरामका स्मरण किया करँगी।’ उनकी बात सुनकर लक्ष्मणने कहा—

‘माताजी ! आप पतिव्रता हैं, श्रीरघुनाथजी बारम्बार आपको बुला रहे हैं। पतिव्रता स्त्री अपने पतिके अपराधको मनमें नहीं लाती; इसलिये इस उत्तम रथपर बैठिये और मेरे साथ चलनेकी कृपा कीजिये।’ पतिको ही देवता माननेवाली जानकीने लक्ष्मणकी ये सब बातें सुनकर आश्रमकी सम्पूर्ण तपस्विनी खियों तथा वेदवेत्ता मुनियोंको प्रणाम किया और मन-ही-मन श्रीरामका स्मरण करती हुई वे रथपर बैठकर अयोध्यापुरीकी ओर

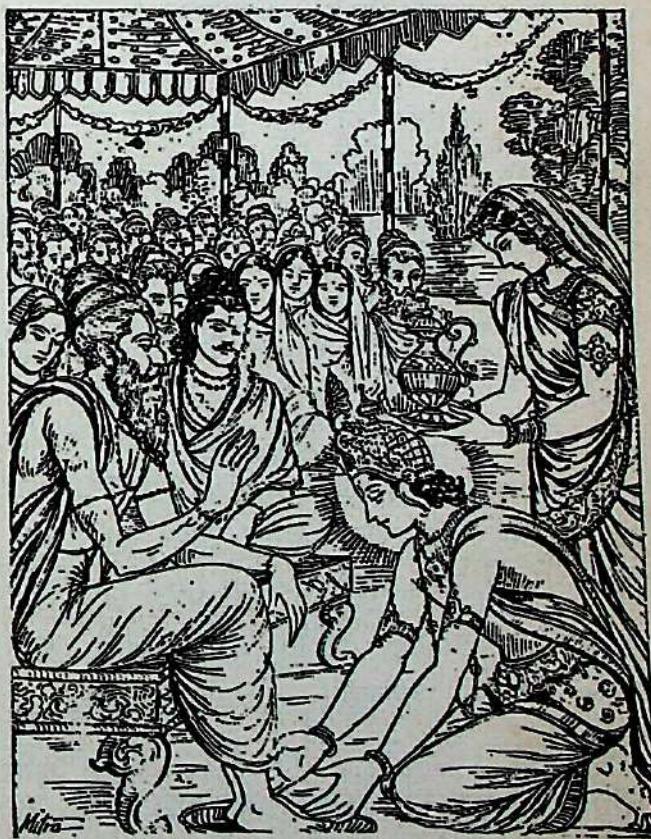
चलीं। उस समय उन्होंने बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण धारण किये थे। क्रमशः नगरीमें पहुँचकर वे सरयू नदीके तटपर गयीं, जहाँ स्वयं श्रीरघुनाथजी विराजमान थे। पातित्रत्यमें तत्पर रहनेवाली सुन्दरी सीता वहाँ जाकर रथसे उतर गयीं और लक्ष्मणके साथ श्रीराम-चन्द्रजीके समीप पहुँचकर उनके चरणोंमें लग गयीं।



प्रेमविह्वला जानकीको आयी देख श्रीरामचन्द्रजी बोले—‘साध्वि ! इस समय तुम्हारे साथ मैं यज्ञकी समाप्ति करूँगा।’

तत्पश्चात् सीता महर्षि वाल्मीकि तथा अन्यान्य ब्रह्मियोंको नमस्कार करके माताओंके चरणोंमें प्रणाम करनेके लिये उत्कण्ठापूर्वक उनके पास गयीं। वीर पुत्रोंको जन्म देनेवाली अपनी प्यारी बहू जानकीको आती देख कौसल्याको बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने सीताको बहुत आशीर्वाद दिया। कैकेयीने भी विदेहनन्दिनीको अपने चरणोंमें प्रणाम करती देखकर आशीर्वाद देते हुए कहा—‘बेटी ! तुम अपने पति और पुत्रोंके साथ चिरकालतक जीवित रहो।’ इसी प्रकार सुमित्राने भी पुत्रवती जानकीको अपने पैरपर पड़ी देख उत्तम

आशीर्वाद प्रदान किया। श्रीरामचन्द्रजीकी प्यारी पली सती-साध्वी सीता सबको प्रणाम करके बहुत प्रसन्न हुई। श्रीरघुनाथजीकी धर्मपलीको उपस्थित देख महर्षि कुम्भजने सोनेकी सीताको हट दिया और उसकी जगह उन्हींको बिठाया। उस समय यज्ञमण्डपमें सीताके साथ बैठे हुए श्रीरामचन्द्रजीकी बड़ी शोभा हुई। फिर उत्तम समय आनेपर श्रीरघुनाथजीने यज्ञका कार्य आरप्त किया। उन्होंने उत्तम बुद्धिवाले वसिष्ठसे पूछा—‘स्वामिन् ! अब इस श्रेष्ठ यज्ञमें कौन-सा आवश्यक कर्तव्य बाकी रह गया है ?’ रामकी बात सुनकर महाबुद्धिमान् गुरुदेवने कहा—‘अब आपको ब्राह्मणोंकी सन्तोषजनक पूजा करनी चाहिये।’ यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने महर्षि कुम्भजको पूज्य मानकर सबसे पहले उन्हींका पूजन किया। रत्न और सुवर्णोंकी अनेकों



भार, मनुष्योंसे भरे हुए कई देश तथा अत्यन्त प्रीतिदायक वस्तुएँ दक्षिणामें देकर उन्होंने पलीसहित अगस्त्य मुनिका सत्कार किया। फिर उत्तम रत्न आदिके द्वारा पलीसहित महर्षि च्यवनका पूजन किया। इसी प्रकार अन्यान्य महर्षियों तथा सम्पूर्ण तपस्वी ऋत्तिविजोंका

भी उन्होंने अनेकों भार सुवर्ण और रल आदिके द्वारा सत्कार किया। उस यज्ञमें श्रीरामने ब्राह्मणोंको बहुत दक्षिणा दी। दीनों, अंधों और दुःखियोंको भी नाना प्रकारके दान दिये। विचित्र-विचित्र वस्त्र तथा मधुर भोजन वितीर्ण किये। भगवान् ने शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार ऐसा दान किया, जो सबको सन्तोष देनेवाला था। उन्हें सबको दान देते देख महर्षि कुम्भजको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने अश्वको नहलानेके निमित्त अमृतके समान जल मँगानेके लिये चौसठ राजाओंको उनकी रानियोंसहित बुलाया। श्रीरामचन्द्रजी सब प्रकारके अलङ्कारोंसे सुशोभित सीताजीके साथ सोनेके घड़ेमें जल ले आनेके लिये गये। उनके पीछे माण्डवीके साथ भरत, अर्मिलाके साथ लक्ष्मण, श्रुतिकीर्तिके साथ शत्रुघ्न, कान्तिमतीके साथ पुष्कल, कोमलाके साथ लक्ष्मीनिधि, महामूर्तिके साथ विभीषण, सुमनोहारीके साथ सुरथ तथा मोहनाके साथ सुग्रीव भी चले। इसी प्रकार और कई राजाओंको वसिष्ठ ऋषिने भेजा। उन्होंने स्वयं भी शीतल एवं पवित्र जलसे भरी हुई सरयूमें जाकर वेदमन्त्रके द्वारा उसके जलको अभिमन्त्रित किया। वे बोले—‘हे जल ! तुम सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षा करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीके यज्ञके लिये निश्चित किये हुए इस अश्वको पवित्र करो।’

मुनिके अभिमन्त्रित किये हुए उस जलको राम आदि सभी राजा ब्राह्मणोंद्वारा सुसंस्कृत यज्ञ-मण्डपमें ले आये। उस निर्मल जलसे दूधके समान श्वेत अश्वको नहलाकर महर्षि कुम्भजने मन्त्रद्वारा रामके हाथसे उसे अभिमन्त्रित कराया। श्रीरामचन्द्रजी अश्वको लक्ष्य करके बोले—‘महाबाह ! ब्राह्मणोंसे भरे हुए इस यज्ञ-मण्डपमें तुम मुझे पवित्र करो।’ ऐसा कहकर श्रीरामने सीताके साथ उस अश्वका स्पर्श किया। उस समय सम्पूर्ण ब्राह्मणोंको कौतूहलवश यह बड़ी विचित्र बात मालूम पड़ी। वे आपसमें कहने लगे—‘अहो ! जिनके नामका स्मरण करनेसे मनुष्य बड़े-बड़े पापोंसे छुटकाय पा जाते हैं, वे ही श्रीरामचन्द्रजी यह क्या कह रहे हैं [क्या अश्व इन्हें पवित्र करेगा ?] ।’ यज्ञ-मण्डपमें



श्रीरामके हाथका स्पर्श होते ही उस अश्वने पशु-शरीरका परित्याग करके तुरंत दिव्यरूप धारण कर लिया। घोड़ेका शरीर छोड़कर दिव्यरूपधारी मनुष्यके रूपमें प्रकट हुए उस अश्वको देखकर यज्ञमें आये हुए सब लोगोंको बड़ा विस्मय हुआ। यद्यपि श्रीरामचन्द्रजी स्वयं सब कुछ जानते थे, तो भी सब लोगोंको इस रहस्यका ज्ञान करानेके लिये उन्होंने पूछा—‘दिव्य शरीर धारण करनेवाले पुरुष ! तुम कौन हो ? अश्व-योनिमें क्यों पड़े थे तथा इस समय क्या करना चाहते हो ? ये सब बातें बताओ।’

रामकी बात सुनकर दिव्यरूपधारी पुरुषने कहा—‘भगवन् ! आप बाहर और भीतर सर्वत्र व्याप हैं; अतः आपसे कोई बात छिपी नहीं है। फिर भी यदि पूछ रहे हैं तो मैं आपसे सब कुछ ठीक-ठीक बता रहा हूँ। पूर्वजन्ममें मैं एक परम धर्मात्मा ब्राह्मण था, किन्तु मुझसे एक अपराध हो गया। महाबाहो ! एक दिन मैं पापहारिणी सरयूके तटपर गया और वहाँ स्नान, पितरोंका तर्पण तथा विधिपूर्वक दान करके वेदोक्त रीतिसे आपका ध्यान करने लगा। महाराज ! उस समय मेरे पास

बहुत-से मनुष्य आये और उन सबको ठगनेके लिये मैंने कई प्रकारका दम्भ प्रकट किया। इसी समय महातेजस्वी महर्षि दुर्वासा अपनी इच्छाके अनुसार पृथ्वीपर विचरते हुए वहाँ आये और सामने खड़े होकर मुझे दम्भीको देखने लगे। मैंने मौन धारण कर रखा था; न तो उठकर उन्हें अर्घ्य दिया और न उनके प्रति कोई स्वागतपूर्ण वचन ही मुँहसे निकाला। मैं उन्मत्त हो रहा था। महामति दुर्वासाका स्वभाव तो यों ही तीक्ष्ण है, मुझे दम्भ करते देख वे और भी प्रचण्ड क्रोधके वशीभूत हो गये तथा शाप देते हुए बोले—‘तापसाधम ! यदि तू सरयूके तटपर ऐसा घोर दम्भ कर रहा है तो पशु-योनिको प्राप्त हो जा !’ मुनिके दिये हुए शापको सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ और मैंने उनके चरण पकड़ लिये। रघुनन्दन ! तब मुनिने मुझपर महान् अनुग्रह किया। वे बोले—‘तापस ! तू श्रीरामचन्द्रजीके अश्वमेध यज्ञका अश्व बनेगा; फिर भगवान्के हाथका स्पर्श होनेसे तू दम्भहीन, दिव्य एवं मनोहर रूप धारण कर परमपदको प्राप्त हो जायगा।’ महर्षिका दिया हुआ यह शाप भी मेरे लिये अनुग्रह बन गया। राम ! अनेकों जन्मोंके पश्चात् देवता आदिके लिये भी जिसकी प्राप्ति होनी कठिन है वही आपकी अङ्गुलियोंका अत्यन्त दुर्लभ स्पर्श आज मुझे प्राप्त हुआ है। महाराज ! अब आज्ञा दीजिये, मैं आपकी कृपासे महत् पदको प्राप्त हो रहा हूँ। जहाँ न शोक है, न जरा; न मृत्यु है, न कालका विलास—उस स्थानको जाता हूँ। राजन् ! यह सब आपका ही प्रसाद है।’

यह कहकर उसने श्रीरघुनाथजीकी परिक्रमा की और श्रेष्ठ विमानपर बैठकर भगवान्के चरणोंकी कृपासे वह उनके सनातन धामको चला गया। उस दिव्य पुरुषकी बातें सुनकर अन्य साधारण लोगोंको भी श्रीरामचन्द्रजीकी महिमाका ज्ञान हुआ और वे सब-के-सब परस्पर आनन्दमग्र होकर बड़े विस्मयमें पड़े। महाबुद्धिमान् वात्स्यायनजी ! सुनिये; दम्भपूर्वक स्मरण करनेपर भी भगवान् श्रीहरि मोक्ष प्रदान करते हैं, फिर यदि दम्भ छोड़कर उनका भजन किया जाय तब तो कहना ही क्या है ? जैसे भी हो, श्रीरामचन्द्रजीका निरन्तर

स्मरण करना चाहिये; जिससे उस परमपदकी प्राप्ति होती है, जो देवता आदिके लिये भी दुर्लभ है। अश्वकी मुक्तिरूप विचित्र व्यापार देखकर मुनियोंने अपनेको भी कृतार्थ समझा; क्योंकि वे स्वयं भी श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंके दर्शन और करस्पर्शसे पवित्र हो रहे थे। तदनन्तर, मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजी, जो सम्पूर्ण देवताओंका मनोभाव समझनेमें निपुण थे, बोले—‘रघुनन्दन ! आप देवताओंको कर्पूर भेट कीजिये, जिससे वे स्वयं प्रत्यक्ष प्रकट होकर हविष्य ग्रहण करेंगे।’ यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने देवताओंकी प्रसन्नताके लिये शीघ्र ही बहुत सुन्दर कर्पूर अर्पण किया। इससे महर्षि वसिष्ठके हृदयमें बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने अङ्गुलियोंका देवताओंका आवाहन किया। मुनिके आवाहन करनेपर एक ही क्षणमें सम्पूर्ण देवता अपने-अपने परिवारसहित वहाँ आ पहुँचे।

शेषजी कहते हैं—मुने ! उस यज्ञमें दी जानेवाली हवि श्रीरामचन्द्रजीकी दृष्टि पड़नेसे अत्यन्त पवित्र हो गयी थी। देवताओंसहित इन्द्र उसका आस्वादन करने लगे, उन्हें तृप्ति नहीं होती थी—अधिकाधिक लेनेकी इच्छा बनी रहती थी। नारायण, महादेव, ब्रह्मा, वरुण, कुबेर तथा अन्य लोकपाल सब-के-सब तृप्त हो अपना-अपना भाग लेकर अपने धामको चले गये। होताका कार्य करनेवाले जो प्रधान-प्रधान ऋषि थे, उन सबको भगवान्ने चारों दिशाओंमें राज्य दिया तथा उन्होंने भी सन्तुष्ट होकर श्रीरघुनाथजीको उत्तम आशीर्वाद दिये। तत्पश्चात् वसिष्ठजीने पूर्णहृति करके कहा—‘सौभाग्यवती लियाँ आकर यज्ञकी पूर्ति करनेवाले महाराजकी संवर्द्धना (अभ्युदय-कामना) करें।’ उनकी बात सुनकर लियाँ उठीं और बड़े-बड़े राजाओंद्वारा पूजित श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर, जो अपने सौन्दर्यसे कामदेवको भी परास्त कर रहे थे, अत्यन्त हर्षके साथ लाजा (खील) की वर्षा करने लगीं। इसके बाद महर्षिने श्रीरामचन्द्रजीको अवभृथ (यज्ञान्त) स्थानके लिये प्रेरित किया। तब श्रीरघुनाथजी आत्मीयजनोंके साथ सरयूके उत्तम तटपर गये। उस समय जो लोग

सीतापतिके मुखचन्द्रका अवलोकन करते, वे एकटक दृष्टिसे देखते ही रह जाते थे; उनकी आँखें स्थिर हो जाती थीं। जिनके हृदयमें चिरन्तन कालसे भगवान्‌के दर्शनकी लालसा लगी हुई थी, वे लोग महाराज श्रीरामको सीताके साथ सरयूकी ओर जाते देखकर आनन्दमें मग्न हो गये। अनेकों नट और गन्धर्व उज्ज्वल यशका गान करते हुए सर्वलोक-नमस्कृत महाराजके पीछे-पीछे गये। नदीका मार्ग झुंड-के-झुंड खी-पुरुषोंसे भरा था। उसीसे चलकर वे शीतल एवं पवित्र जलसे परिपूर्ण सरयू नदीके समीप पहुँचे, वहाँ पहुँचकर कमलनयन श्रीरामने सीताके साथ सरयूके पावन जलमें प्रवेश किया। तत्पश्चात् भगवान्‌के चरणोंकी धूलिसे पवित्र हुए उस विश्ववन्दित जलमें सम्पूर्ण राजा तथा साधारण जन-समुदायके लोग भी उतरे। धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी सरयूके पावन जलप्रवाहमें सीताके साथ चिरकालतक क्रीड़ा करके बाहर निकले। फिर उन्होंने धौत-वस्त्र धारण किया, किरीट और कुण्डल पहने तथा केयूर और कङ्कणकी शोभाको भी अपनाया। इस प्रकार वस्त्र और आभूषणोंसे विभूषित होकर करोड़ों कन्दपोंकी सुषमा धारण करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी अत्यन्त सुशोभित हुए। उस समय कितने ही राजे-महाराजे उनकी स्तुति करने लगे। महामना श्रीरघुनाथजीने सरयूके पावन तटपर उत्तम वर्णसे सुशोभित यज्ञयूपकी स्थापना करके अपनी भुजाओंके बलसे तीनों लोकोंकी अद्भुत सम्पत्ति प्राप्ति की, जो दूसरे नरेशोंके लिये सर्वथा दुर्लभ है। इस तरह भगवान् श्रीरामने जनकनन्दिनी सीताके साथ तीन

अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान किया तथा त्रिभुवनमें अत्यन्त दुर्लभ और अनुपम कीर्ति प्राप्त की।

बात्स्यायनजी ! आपने जो श्रीरामचन्द्रजीकी उत्तम कथाके विषयमें प्रश्न किया था, उसका उपर्युक्त प्रकारसे वर्णन किया गया। अश्वमेध यज्ञका वृत्तान्त मैंने विस्तारके साथ कहा है; अब आप और क्या पूछा चाहते हैं ? जो मनुष्य भगवान्‌के प्रति भक्ति रखते हुए श्रीरामचन्द्रजीके इस उत्तम यज्ञका श्रवण करता है, वह ब्रह्महत्या-जैसे पापको भी क्षणभरमें पार करके सनातन ब्रह्मको प्राप्त होता है। इस कथाके सुननेसे पुत्रहीन पुरुषको पुत्रोंकी प्राप्ति होती है, धनहीनको धन मिलता है, रोगी रोगसे और कैदमें पड़ा हुआ मनुष्य बन्धनसे छुटकारा पा जाता है। जिनकी कथा सुननेसे दुष्ट चाप्डाल भी परम पदको प्राप्त होता है, उन्हीं श्रीरामचन्द्रजीकी भक्तिमें यदि श्रेष्ठ ब्राह्मण प्रवृत्त हो तो उसके लिये क्या कहना ? महाभाग श्रीरामका स्मरण करके पापी भी उस परम पद या परम स्वर्गको प्राप्त होते हैं, जो इन्द्र आदि देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। संसारमें वे ही मनुष्य धन्य हैं, जो श्रीरघुनाथजीका स्मरण करते हैं ! वे लोग क्षणभरमें इस संसार-समुद्रको पार करके अक्षय सुखको प्राप्त होते हैं। इस अश्वमेधकी कथाको सुनकर वाचकको दो गौ प्रदान करे तथा वस्त्र, अलङ्कार और भोजन आदिके द्वारा उसका तथा उसकी पलीका सत्कार करे। यह कथा ब्रह्महत्याकी राशिका विनाश करनेवाली है। जो लोग इसका श्रवण करते हैं, वे देवदुर्लभ परम पदको प्राप्त होते हैं।



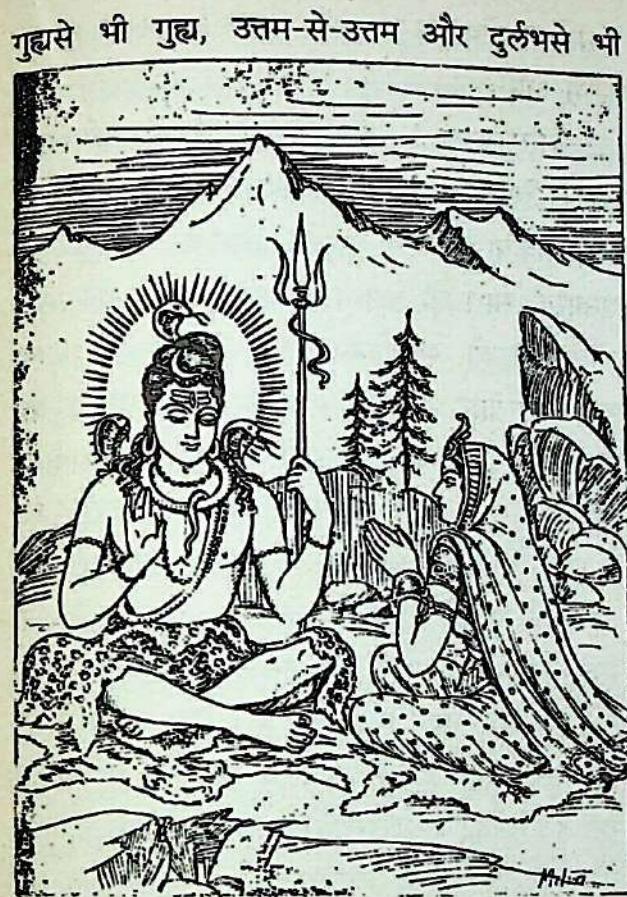
## वृन्दावन और श्रीकृष्णका माहात्म्य

ऋषियोंने कहा—सूतजी ! महाराज ! हमने आपके मुखसे रामाश्वमेधकी कथा अच्छी तरह सुन ली; अब परमात्मा श्रीकृष्णके माहात्म्यका वर्णन कीजिये।

सूतजी बोले—महर्षियो ! जिनका हृदय भगवान् शक्तरके प्रेममें ढूबा रहता है, वे पार्वती देवी एक दिन

अपने पतिको प्रेमपूर्वक नमस्कार करके इस प्रकार बोलीं—‘प्रभो ! वृन्दावनका माहात्म्य अथवा अद्भुत रहस्य क्या है, उसे मैं सुनना चाहती हूँ ?’

महादेवजीने कहा—देवि ! मैं यह बता चुका हूँ कि वृन्दावन ही भगवान्‌का सबसे प्रियतम धाम है। वह



गुह्यसे भी गुह्य, उत्तम-से-उत्तम और दुर्लभसे भी दुर्लभ है। तीनों लोकोंमें अत्यन्त गुप्तस्थान है। बड़े-बड़े देवेश्वर भी उसकी पूजा करते हैं। ब्रह्मा आदि भी उसमें रहनेकी इच्छा करते हैं। वहाँ देवता और सिद्धोंका निवास है। योगीन्द्र और मुनीन्द्र आदि भी सदा उसके ध्यानमें तत्पर रहते हैं। श्रीवृन्दावन बहुत ही सुन्दर और पूर्णनन्दमय रसका आश्रय है। वहाँकी भूमि चिन्तामणि है, और जल रससे भरा हुआ अमृत है। वहाँके पेड़ कल्पवृक्ष हैं, जिनके नीचे झुंड-की-झुंड कामधेनु गौएं निवास करती हैं। वहाँकी प्रत्येक स्त्री लक्ष्मी और हरेक पुरुष विष्णु हैं; क्योंकि वे लक्ष्मी और विष्णुके दशांशसे प्रकट हुए हैं। उस वृन्दावनमें सदा इयाम तेज विराजमान रहता है, जिसकी नित्य-निरन्तर किशोरावस्था (पंद्रह वर्षकी उम्र) बनी रहती है। वह आनन्दका मूर्तिमान् विग्रह है। उसमें संगीत, नृत्य और वार्तालाप आदिकी अद्भुत योग्यता है। उसके मुखपर सदा मन्द मुस्कानकी छटा छायी रहती है। जिनका अन्तःकरण शुद्ध है, जो प्रेमसे परिपूर्ण है, ऐसे वैष्णवजन ही उस वनका आश्रय लेते हैं। वह वन पूर्ण ब्रह्मानन्दमें निमग्न है। वहाँ ब्रह्मके

ही स्वरूपकी स्फुरणा होती है। वास्तवमें वह वन ब्रह्मानन्दमय ही है। वहाँ प्रतिदिन पूर्ण चन्द्रमाका उदय होता है। सूर्यदेव अपनी मन्द रश्मियोंके द्वारा उस वनकी सेवा करते हैं। वहाँ दुःखका नाम भी नहीं है। उसमें जाते ही सारे दुःखोंका नाश हो जाता है। वह जरा और मृत्युसे रहित स्थान है। वहाँ क्रोध और मत्सरताका प्रवेश नहीं है। धेद और अहङ्कारकी भी वहाँ पहुँच नहीं होती। वह पूर्ण आनन्दमय अमृत-रससे भरा हुआ अखण्ड प्रेमसुखका समुद्र है, तीनों गुणोंसे परे है और महान् प्रेमधाम है। वहाँ प्रेमकी पूर्णरूपसे अभिव्यक्ति हुई है। जिस वृन्दावनके वृक्ष आदिने भी पुलकित होकर प्रेमजनित आनन्दके आँसू बरसाये हैं; वहाँके चेतन वैष्णवोंकी स्थितिके सम्बन्धमें क्या कहा जा सकता है ?

भगवान् श्रीकृष्णकी चरण-रजका स्पर्श होनेके कारण वृन्दावन इस भूतलपर नित्य धामके नामसे प्रसिद्ध है। वह सहस्रदल-कमलका केन्द्रस्थान है। उसके स्पर्शमात्रसे यह पृथ्वी तीनों लोकोंमें धन्य समझी जाती है। भूमण्डलमें वृन्दावन गुह्यसे भी गुह्यतम्, रमणीय, अविनाशी तथा परमानन्दसे परिपूर्ण स्थान है। वह गोविन्दका अक्षयधाम है। उसे भगवान्के स्वरूपसे भिन्न नहीं समझना चाहिये। वह अखण्ड ब्रह्मानन्दका आश्रय है। जहाँकी धूलिका स्पर्श होनेमात्रसे मोक्ष हो जाता है, उस वृन्दावनके माहात्म्यका किस प्रकार वर्णन किया जा सकता है। इसलिये देवि ! तुम सम्पूर्ण चित्तसे अपने हृदयके भीतर उस वृन्दावनका चिन्तन करो तथा उसकी विहारस्थलियोंमें किशोरविग्रह श्रीकृष्णचन्द्रका ध्यान करती रहो। पहले बता आये हैं कि वृन्दावन सहस्रदल-कमलका केन्द्रस्थान है। कलिन्द-कन्या यमुना उस कमल-कर्णिकाकी प्रदक्षिणा किया करती है। उनका जल अनायास ही मुक्ति प्रदान करनेवाला और गहरा है। वह अपनी सुगन्धसे मनुष्योंका मन मोह लेता है। उस जलमें आनन्ददायिनी सुधासे मिश्रित घनीभूत मकरन्द (रस) की प्रतिष्ठा है। पद्म और उत्पल आदि नाना प्रकारके पुष्पोंसे यमुनाका स्वच्छ सलिल अनेक रंगका दिखायी देता है। अपनी चञ्चल तरङ्गोंके कारण

वह जल अत्यन्त मनोहर एवं रमणीय प्रतीत होता है।

**पार्वतीजीने पूछा—**दयानिधे ! भगवान् श्रीकृष्णका आश्चर्यमय सौन्दर्य और श्रीविग्रह कैसा है, मैं उसे सुनना चाहती हूँ; कृपया बतलाइये।

**महादेवजीने कहा—**देवि ! परम सुन्दर वृन्दावनके मध्यभागमें एक मनोहर भवनके भीतर अत्यन्त उज्ज्वल योगपीठ है। उसके ऊपर माणिक्यका बना हुआ सुन्दर सिंहासन है, सिंहासनके ऊपर अष्टदल कमल है, जिसकी कर्णिका अर्थात् मध्यभागमें सुखदायी आसन लगा हुआ है; वही भगवान् श्रीकृष्णका उत्तम स्थान है। उसकी महिमाका क्या वर्णन किया जाय ? वहीं भगवान् गोविन्द विराजमान होते हैं। वैष्णववृन्द उनकी सेत्रामें लगा रहता है। भगवान्का ब्रज, उनकी अवस्था और उनका रूप—ये सभी दिव्य हैं। श्रीकृष्ण ही वृन्दावनके अधीश्वर हैं, वे ही ब्रजके राजा हैं। उनमें सदा षड्विध ऐश्वर्य विद्यमान रहते हैं। वे ब्रजकी बालक-बालिकाओंके एकमात्र प्राण-बल्लभ हैं और किशोरावस्थाको पार करके यौवनमें पदार्पण कर रहे हैं। उनका शरीर अद्भुत है, वे सबके आदि कारण हैं, किन्तु उनका आदि कोई भी नहीं है। वे नन्दगोपके प्रिय पुत्ररूपसे प्रकट हुए हैं; परन्तु वास्तवमें अजन्मा एवं नित्य ब्रह्म हैं, जिन्हें वेदकी श्रुतियाँ सदा ही खोजती रहती हैं। उन्होंने गोपीजनोंका चित्त चुरा लिया है। वे ही परमधाम हैं। उनका स्वरूप सबसे उल्कृष्ट है। उनका श्रीविग्रह दो भुजाओंसे सुशोभित है। वे गोकुलके अधिपति हैं। ऐसे गोपीनन्दन श्रीकृष्णका इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—

भगवान्की कान्ति अत्यन्त सुन्दर और अवस्था नूतन है। वे बड़े स्वच्छ दिखायी देते हैं। उनके शरीरकी आभा इयाम रङ्गकी है, जिसके कारण उनकी झाँकी बड़ी मनोहर जान पड़ती है। उनका विग्रह नूतन मेघ-मालाके समान अत्यन्त स्निग्ध है। वे कानोंमें मनोहर कुण्डल धारण किये हुए हैं। उनकी कान्ति खिले हुए नील कमलके समान जान पड़ती है। उनका स्पर्श सुखद है। वे सबको सुख पहुँचानेवाले हैं। वे अपनी साँवली

छटासे मनको मोहे लेते हैं। उनके केश बहुत ही चिकने, काले और धुँधराले हैं। उनसे सब प्रकारकी सुगम्य निकलती रहती है। केशोंके ऊपर ललाटके दक्षिण भागमें इयाम रङ्गकी चूड़ाके कारण वे अत्यन्त मनोहर जान पड़ते हैं। नाना रंगके आभूषण धारण करनेसे उनकी दीसि बड़ी उज्ज्वल दिखायी देती है। सुन्दर मोरपङ्ख उनके मस्तककी शोभा बढ़ाता है। उनकी सज-धज बड़ी सुन्दर है। वे कभी तो मन्दारपुष्पोंसे सुशोभित गोपुच्छके आकारकी बनी हुई चूड़ा (चोटी) धारण करते हैं, कभी मोरपङ्खके मुकुटसे अलङ्कृत होते हैं और कभी अनेकों मणि-माणिक्योंके बने हुए सुन्दर किरीटोंसे विभूषित होते हैं। चञ्चल अलकावली उनके मस्तककी शोभा बढ़ाती है। उनका मनोहर मुख करोड़ों चन्द्रमाओंके समान कान्तिमान् है। ललाटमें कस्तूरीका तिलक है, साथ ही सुन्दर गोरोचनकी बिंदी भी शोभा दे रही है। उनका शरीर इन्दीवरके समान स्निग्ध और नेत्र कमल-दलकी भाँति विशाल हैं। वे कुछ-कुछ भौंह नचाते हुए मन्द मुसकानके साथ तिरछी चितवनसे देखा करते हैं। उनकी नासिकाका अग्रभाग रमणीय सौन्दर्यसे युक्त है, जिसके कारण वे अत्यन्त मनोहर जान पड़ते हैं। उन्होंने नासाग्रभागमें गजमोती धारण करके उसकी कान्तिसे त्रिभुवनका मन मोह लिया है। उनका नीचेका ओठ सिन्दूरके समान लाल और चिकना है, जिससे उनकी मनोहरता और भी बढ़ गयी है। वे अपने कानोंमें नाना प्रकारके वर्णोंसे सुशोभित सुवर्णनिर्मित मकराकृत कुण्डल पहने हुए हैं। उन कुण्डलोंकी किरण पड़नेसे उनका सुन्दर कपोल दर्पणके समान शोभा पा रहा है। वे कानोंमें पहने हुए कमल, मन्दारपुष्प और मकराकार कुण्डलसे विभूषित हैं। उनके वक्षःस्थलपर कौस्तुभमणि और श्रीवत्सचिह्न शोभा पा रहे हैं। गलेमें मोतियोंका हार चमक रहा है। उनके विभिन्न अङ्गोंमें दिव्य माणिक्य तथा मनोहर सुवर्णमिश्रित आभूषण सुशोभित हैं। हाथोंमें कँडे, भुजाओंमें बाजूबन्द तथा कमरमें करधनी शोभा दे रही है। सुन्दर मञ्जीरकी सुषमासे चरणोंकी श्री बहुत बढ़ गयी है, जिससे भगवान्का श्रीविग्रह अत्यन्त

शोभायमान दिखायी दे रहा है। श्रीअङ्गोंमें कर्पूर, अगरु, कस्तूरी और चन्दन आदि सुगच्छित द्रव्य शोभा पा रहे हैं। गोरोचन आदिसे मिश्रित द्रव्य अङ्गरागोद्भारा विचित्र पत्र-भङ्गी (रंग-बिरंगे चित्र) आदिकी रचना की गयी है। कटिसे लेकर पैरोंके अग्रभागतक चिकने पीताम्बरसे शोभायमान है। भगवान्‌का नाभि-कमल गम्भीर है, उसके नीचेकी रोमावलियोंतक माला लटक रही है। उनके दोनों घुटने सुन्दर गोलाकार हैं तथा कमलोंकी शोभा धारण करनेवाले चरण बड़े मनोहर जान पड़ते हैं। हाथ और पैरोंके तलुवे ध्वज, वज्र, अङ्गुश और कमलके चिह्नसे सुशोभित हैं तथा उनके ऊपर नखरूपी चन्द्रमाकी किरणावलियोंका प्रकाश पड़ रहा है। सनक-सनन्दन आदि योगीश्वर अपने हृदयमें भगवान्‌के इसी स्वरूपकी झाँकी करते हैं। उनकी त्रिभङ्गी छवि है। उनके श्रीअङ्ग इतने सुन्दर, इतने मनोहर हैं, मानो सृष्टिकी समस्त निर्माण-सामग्रीका सार निकालकर बनाये गये हों। जिस समय वे गर्दन मोड़कर खड़े होते हैं, उस समय उनका सौन्दर्य इतना बढ़ जाता है कि उसके सामने अनन्तकोटि कामदेव लज्जित होने लगते हैं। बायें कंधेपर झुका हुआ उनका सुन्दर कपोल बड़ा भला मालूम होता है। उनके सुवर्णमय कुण्डल जगमगाते रहते हैं। वे तिरछी चितवन और मंद मुसकानसे सुशोभित होनेवाले करोड़ों कामदेवोंसे भी अधिक सुन्दर हैं। सिकोड़े हुए ओठपर वंशी रखकर बजाते हैं और उसकी मीठी तानसे त्रिभुवनको मोहित करते हुए सबको प्रेम-सुधाके समुद्रमें निमग्न कर रहे हैं।

पार्वतीजीने कहा—देवदेवेश्वर ! आपके उपदेशसे यह ज्ञात हुआ कि गोविन्द नामसे प्रसिद्ध भगवान् श्रीकृष्ण ही इस जगत्के परम कारण हैं। वे ही परमपद हैं, वृन्दावनके अधीश्वर हैं तथा नित्य परमात्मा

हैं। प्रभो ! अब मैं यह सुनना चाहती हूँ कि श्रीकृष्णका गूढ रहस्य, माहात्म्य और सुन्दर ऐश्वर्य क्या है; आप उसका वर्णन कीजिये।

महादेवजीने कहा—देवि ! जिनके चन्द्र-तुल्य चरण-नखोंकी किरणोंके माहात्म्यका भी अन्त नहीं है, उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णकी महिमाके सम्बन्धमें मैं कुछ बातें बता रहा हूँ, तुम आनन्दपूर्वक श्रवण करो। सृष्टि, पालन और संहारकी शक्तिसे युक्त, जो ब्रह्मा आदि देवता हैं, वे सब श्रीकृष्णके ही वैभव हैं। उनके रूपका जो करोड़वाँ अंश है, उसके भी करोड़ अंश करनेपर एक-एक अंश कलासे असंख्य कामदेवोंकी उत्पत्ति होती है, जो इस ब्रह्माण्डके भीतर व्याप्त होकर जगत्के जीवोंको मोहमें डालते रहते हैं। भगवान्‌के श्रीविग्रहकी शोभामयी कान्तिके कोटि-कोटि अंशसे चन्द्रमाका आविर्भाव हुआ है। श्रीकृष्णके प्रकाशके करोड़वें अंशसे जो किरणें निकलती हैं, वे ही अनेकों सूर्योंकी रूपमें प्रकट होती हैं। उनके साक्षात् श्रीअङ्गसे जो रश्मियाँ प्रकट होती हैं, वे परमानन्दमय रसामृतसे परिपूर्ण हैं, परम आनन्द और परम चैतन्य ही उनका स्वरूप है। उन्हींसे इस विश्वके ज्योतिर्मय जीव जीवन धारण करते हैं, जो भगवान्‌के ही कोटि-कोटि अंश हैं। उनके युगल चरणारविन्दोंके नखरूपी चन्द्रकान्तमणिसे निकलेवाली प्रभाको ही सबका कारण बताया गया है। वह कारण-तत्त्व वेदोंके लिये भी दुर्गम्य है। विश्वको विमुग्ध करनेवाले जो नाना प्रकारके सौरभ (सुगन्ध) हैं, वे सब भगवद्विग्रहकी द्रव्य सुगन्धके अनन्तकोटि अंशमात्र हैं। भगवान्‌के स्पर्शसे ही पुष्पगन्ध आदि नाना सौरभोंका प्रादुर्भाव होता है। श्रीकृष्णकी प्रियतमा—उनकी प्राणवल्लभा श्रीराधा हैं, वे ही आद्या प्रकृति कही गयी हैं।



## श्रीराधा-कृष्ण और उनके पार्षदोंका वर्णन तथा नारदजीके द्वारा ब्रजमें अवतीर्ण श्रीकृष्ण और राधाके दर्शन

**पार्वती बोलीं—**दयानिधे ! अब, भगवान् श्रीकृष्णके जो पार्षद हैं, उनका वर्णन सुननेकी इच्छा हो रही है; अतः बतलाइये ।

**महादेवजीने कहा—**देवि ! भगवान् श्रीकृष्ण श्रीराधाके साथ सुवर्णमय सिंहासनपर विराजमान हैं । उनका रूप और लावण्य वैसा ही है, जैसा कि पहले बताया गया है । वे दिव्य वस्त्र, दिव्य आभूषण और दिव्य हारसे विभूषित हैं । उनकी त्रिभङ्गी छबि बड़ी मनोहर जान पड़ती है । उनका स्वरूप अत्यन्त स्निग्ध है । वे गोपियोंकी आँखोंके तारे हैं । उपर्युक्त सिंहासनसे पृथक् एक योगपीठ है । वह भी सोनेके सिंहासनसे आवृत है । उसके ऊपर ललिता आदि प्रधान-प्रधान सखियाँ, जो श्रीकृष्णको बहुत ही प्रिय हैं, विराजमान होती हैं । उनका प्रत्येक अङ्ग भगवन्मिलनकी उत्कण्ठा तथा रसावेशसे युक्त होता है । ये ललिता आदि सखियाँ प्रकृतिकी अंशभूता हैं । श्रीराधिका ही इनकी मूलप्रकृति है । श्रीराधा और श्रीकृष्ण पश्चिमाभिमुख विराजमान हैं, उनकी पश्चिम दिशामें ललितादेवी विद्यमान हैं, वायव्यकोणमें श्यामला नामवाली सखी हैं । उत्तरमें श्रीमती धन्या हैं । ईशानकोणमें श्रीहरिप्रियाजी विराज रही हैं । पूर्वमें विशाखा, अग्निकोणमें शैव्या, दक्षिणमें पद्मा तथा नैऋत्यकोणमें भद्रा हैं । इसी क्रमसे ये आठों सखियाँ योगपीठपर विराजमान हैं । योगपीठकी कर्णिकामें परमसुन्दरी चन्द्रावलीकी स्थिति है—वे भी श्रीकृष्णकी प्रिया हैं । उपर्युक्त आठ सखियाँ श्रीकृष्णको प्रिय लगनेवाली परमपवित्र आठ प्रधान प्रकृतियाँ हैं । वृद्धावनकी अधीश्वरी श्रीराधा तथा चन्द्रावली दोनों ही भगवान्की प्रियतमा हैं । इन दोनोंके आगे चलनेवाली हजारों गोपकन्याएँ हैं, जो गुण, लावण्य और सौन्दर्यमें एक समान हैं । उन सबके नेत्र विस्मयकारी गुणोंसे युक्त हैं । वे बड़ी मनोहर हैं । उनका वेष मनको मुग्ध कर लेनेवाला है । वे सभी किशोर-अवस्था (पंद्रह वर्षकी

उम्र) वाली हैं । उन सबकी कान्ति उज्ज्वल है । वे सब-की-सब श्याममय अमृतरसमें निमग्न रहती हैं । उनके हृदयमें श्रीकृष्णके ही भाव स्फुरित होते हैं । वे अपने कमलवत् नेत्रोंके द्वारा पूजित श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंमें अपना-अपना चित्त समर्पित कर चुकी हैं ।

श्रीराधा और चन्द्रावलीके दक्षिण भागमें श्रुति-कन्याएँ रहती हैं [वेदकी श्रुतियाँ ही इन कन्याओंके रूपमें प्रकट हुई हैं] इनकी संख्या सहस्र अयुत (एक करोड़) है । इनकी मनोहर आकृति संसारको मोहित कर लेनेवाली है । इनके हृदयमें केवल श्रीकृष्णकी लालसा है । ये नाना प्रकारके मधुर स्वर और आलाप आदिके द्वारा त्रिभुवनको मुग्ध करनेकी शक्ति रखती हैं तथा प्रेमसे विह्वल होकर श्रीकृष्णके गूढ़ रहस्योंका गान किया करती हैं । इसी प्रकार श्रीराधा आदिके वामभागमें दिव्यवेष-धारिणी देवकन्याएँ रहती हैं, जो रसातिरेकके कारण अत्यन्त उज्ज्वल प्रतीत होती हैं । वे भाँति-भाँतिकी प्रणयचातुरीमें निपुण तथा दिव्य भावसे परिपूर्ण हैं । उनका सौन्दर्य चरम सीमाको पहुँचा हुआ है । वे कटाक्षपूर्ण चितवनके कारण अत्यन्त मनोहर जान पड़ती हैं । उनके मनमें श्रीकृष्णके प्रति तनिक भी संकोच नहीं है; उनके अङ्गोंका स्पर्श प्राप्त करनेके लिये सदा उत्कण्ठित रहती हैं । उनका हृदय निरन्तर श्रीकृष्णके ही चिन्तनमें मग्न रहता है । वे भगवान्की ओर मंद-मंद मुसकाती हुई तिरछीं चितवनसे निहारा करती हैं ।

तदनन्तर, मन्दिरके बाहर गोपगण स्थित होते हैं, वे भगवान्के प्रिय सखा हैं, उन सबके वेष, अवस्था, बल, पौरुष, गुण, कर्म तथा वस्त्राभूषण आदि एक समान हैं । वे एक समान स्वरसे गाते हुए वेणु बजाया करते हैं । मन्दिरके पश्चिम द्वारपर श्रीदामा, उत्तरमें वसुदामा, पूर्वमें सुदामा तथा दक्षिण द्वारपर किङ्किणीका निवास है । उस स्थानसे पृथक् एक सुवर्णमय मन्दिरके भीतर सुवर्णविदी

बनी हुई है। उसके ऊपर सोनेके आभूषणोंसे विभूषित सुवर्णपीठ है, जिसके ऊपर अंशुभद्र आदि हजारों बालबाल विराजते हैं। वे सब-के-सब एक समान साँग, वीणा, वेणु, बेंतकी छड़ी, किशोरावस्था, मनोहर वेष, सुन्दर आकार तथा मधुर स्वर धारण करते हैं। वे भगवान्के गुणोंका चिन्तन करते हुए उनका गान करते हैं तथा भगवत्-प्रेममय रससे विह्वल रहते हैं। ध्यानमें स्थिर होनेके कारण वे चित्र-लिखित-से जान पड़ते हैं। उनका रूप आश्चर्यजनक सौन्दर्यसे युक्त होता है। वे सदा आनन्दके आँसू बहाया करते हैं। उनके सम्पूर्ण अङ्गोंमें रोमाञ्च छाया रहता है तथा वे योगीश्वरोंकी भाँति सदा विस्मयविमुग्ध रहते हैं। अपने थनोंसे दूध बहानेवाली असंख्य गौएँ उन्हें धेरे रहती हैं। वहाँसे बाहरके भागमें एक सोनेकी चहारदिवारी है, जो करोड़ों सूर्योंके समान देदीप्यमान दिखायी देती है। उसके चारों ओर बड़े-बड़े उद्यान हैं, जिनकी मनोहर सुगन्ध सब ओर फैली रहती है।

जो मन और इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए सदा पवित्र भावसे श्रीकृष्णचरित्रिका भक्तिपूर्वक पाठ या श्रवण करता है, उसे भगवान् श्रीकृष्णकी प्राप्ति होती है।

**पार्वतीजीने पूछा—भगवन्!** अत्यन्त मोहक रूप धारण करनेवाले श्रीकृष्णने गोपियोंके साथ किन-किन विशेषताओंके कारण क्रीड़ा की, इस रहस्यका मुझसे वर्णन कीजिये।

**महादेवजीने कहा—देवि!** एक समयकी बात है, मुनिश्रेष्ठ नारद यह जानकर कि श्रीकृष्णका ग्राकट्ट्य हो चुका है, वीणा बजाते हुए नन्दजीके गोकुलमें पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने देखा महायोगमायाके स्वामी सर्वव्यापी भगवान् अच्युत बालकका स्वाँग धारण किये नन्दजीके घरमें कोमल बिछौनोंसे युक्त सोनेके पलंगपर सो रहे हैं और गोपकन्याएँ बड़ी प्रसन्नताके साथ निरन्तर उनकी ओर निहार रही हैं। भगवान्का श्रीविग्रह अत्यन्त सुकुमार था। उनके काले-काले धूंधराले बाल सब ओर बिखरे हुए थे। किञ्चित्-किञ्चित् मुसकराहटके कारण उनके दो-एक दाँत दिखायी दे जाते थे। वे अपनी प्रभासे

समूचे घरके भीतरी भागमें प्रकाश फैला रहे थे। नग्न शिशुके रूपमें भगवान्की झाँकी करके नारदजीको बड़ा



हर्ष हुआ। वे भगवान्के प्रिय भक्त तो थे ही, गोपति नन्दजीसे बातचीत करके सब बातें बताने लगे, 'नन्दरायजी! भगवान्के भक्तोंका जीवन अत्यन्त दुर्लभ होता है। आपके इस बालकका प्रभाव अनुपम है, इसे कोई नहीं जानता। शिव और ब्रह्म आदि देवता भी इसके प्रति सनातन प्रेम चाहते हैं। इस बालकका चरित्र सबको हर्ष प्रदान करनेवाला होगा। भगवद्भक्त पुरुष इस बालककी लीलाओंका श्रवण, गायन और अभिनन्दन करते हैं। आपके पुत्रका प्रभाव अचिन्त्य है। जिनका इसके प्रति हार्दिक प्रेम होगा, वे संसार-समुद्रसे तर जायेंगे। उन्हें इस जगत्की कोई बाधा नहीं सत्तायेगी; अतः नन्दजी! आप भी इस बालकके प्रति निरन्तर अनन्य भावसे प्रेम कीजिये।'

यों कहकर मुनिश्रेष्ठ नारदजी नन्दके घरसे निकले। नन्दने भी भगवद्बुद्धिसे उनका पूजन किया और प्रणाम करके उन्हें विदा दी। तदनन्तर वे महाभागवत मुनि मन-ही-मन सोचने लगे, 'जब भगवान्का अवतार हो

हो चुका है, तो उनकी परम प्रियतमा भगवती भी अवश्य अवतीर्ण हुई होंगी। वे भगवान्‌की क्रीड़ाके लिये गोपी रूप धारण करके निश्चय ही प्रकट हुई होंगी, इसमें तनिक भी सन्देहकी बात नहीं है; इसलिये अब मैं ब्रजवासियोंके घर-घरमें घूमकर उनका पता लगाऊँगा।' ऐसा विचारकर मुनिवर नारदजी ब्रजवासियोंके घरोंमें अतिथिरूपसे जाने और उनके द्वारा विष्णु-बुद्धिसे पूजित होने लगे। नन्द-कुमार श्रीकृष्णमें समस्त गोप-गोपियोंका प्रगाढ़ प्रेम देखकर नारदजीने उन्हें मन-ही-मन प्रणाम किया।

तदनन्तर, बुद्धिमान् नारदजी किसी श्रेष्ठ गोपके विशाल भवनमें गये। वह नन्दके सखा महात्मा भानुका घर था। वहाँ जानेपर भानुने नारदजीका विधिवत् सत्कार किया। तत्पश्चात् महामना नारदजीने पूछा—'साधो! तुम अपनी धर्मनिष्ठताके लिये इस भूमण्डलपर विरच्यात हो, बताओ, क्या तुम्हें कोई योग्य पुत्र अथवा उत्तम लक्षणोंवाली कन्या है?' मुनिके ऐसा कहनेपर भानुने अपने पुत्रको लाकर दिखाया। उसे देखकर नारदजीने कहा—'तुम्हारा यह पुत्र बलराम और श्रीकृष्णका



श्रेष्ठ सखा होगा तथा आलस्यरहित होकर सदा उन दोनोंके साथ विहार करेणा।'

भानुने कहा—मुनिवर! मेरे एक पुत्री भी है, जो इस बालककी छोटी बहिन है, कृपया उसपर भी दृष्टिपात कीजिये।

यह सुनकर नारदजीके मनमें बड़ा कौतूहल हुआ। उन्होंने घरके भीतर प्रवेश करके देखा, भानुकी कन्या धरतीपर लोट रही है। नारदजीने उसे अपनी गोदमें उठा लिया। उस समय उनका चित्त अत्यधिक स्नेहके कारण विहळ हो रहा था। महामुनि नारद भगवत्प्रेमके साक्षात् स्वरूप हैं। बालरूप श्रीकृष्णको देखकर उनकी जो अवस्था हुई थी, वही इस कन्याको भी देखकर हुई। उनका मन मुश्क हो गया। वे एकमात्र रसके आश्रयभूत परमानन्दके समुद्रमें फूब गये। चार घड़ीतक नारदजी पत्थरकी भाँति निश्चेष्ट बैठे रहे। उसके बाद उन्हें चेत हुआ। फिर मुनीश्वरने धीरे-धीरे अपने दोनों नेत्र खोले और महान् आश्चर्यमें मग्न होकर वे चुपचाप स्थित हो गये। तत्पश्चात् वे महाबुद्धिमान् महर्षि मन-ही-मन इस प्रकार सोचने लगे—'मैं सदा स्वच्छन्द विचरनेवाला हूँ मैंने सभी लोकोंमें भ्रमण किया है, परन्तु रूपमें इस बालिकाकी समानता करनेवाली रूपी कहीं नहीं देखी है। महामायास्वरूपिणी गिरिराज-कुमारी भगवती उमाको भी देखा है, किन्तु वे भी इस बालिकाकी शोभाको कदापि नहीं पा सकतीं। लक्ष्मी, सरस्वती, कान्ति तथा विद्या आदि सुन्दरी स्त्रियाँ तो कभी इसके सौन्दर्यकी छायाका भी स्पर्श करती नहीं दिखायी देतीं; अतः मुझमें इसके तत्त्वको समझनेकी किसी प्रकार शक्ति नहीं है। यह भगवान्‌की प्रियतमा है, इसे प्रायः दूसरे लोग भी नहीं जानते। इसके दर्शनमात्रसे ही श्रीकृष्णके चरण-कमलोंमें मेरे प्रेमकी जैसी वृद्धि हुई है, वैसी आजके पहले कभी भी नहीं हुई थी; अतः अब मैं एकान्तमें इस देवीकी सुति करूँगा। इसका रूप श्रीकृष्णको अत्यन्त आनन्द प्रदान करनेवाला होगा।'

ऐसा विचारकर मुनिने गोप-प्रवर भानुको कहीं भेज दिया और स्वयं एकान्तमें उस दिव्य रूपधारिणी

बालिकाकी स्तुति करने लगे—‘देवि ! तुम महायोगमयी



हो, मायाकी अधीश्वरी हो। तुम्हारा तेजःपुञ्च महान् है। तुम्हारे दिव्याङ्ग मनको अत्यन्त मोहित करनेवाले हैं। तुम महान् माधुर्यकी वर्षा करनेवाली हो। तुम्हारा हृदय अत्यन्त अद्भुत रसानुभूति-जनित आनन्दसे शिथिल रहता है। मेरा कोई महान् सौभाग्य था, जिससे तुम मेरे नेत्रोंके समक्ष प्रकट हुई हो। देवि ! तुम्हारी दृष्टि सदा आन्तरिक सुखमें निमग्न दिखायी देती है। तुम भीतर-ही-भीतर किसी महान् आनन्दसे परितृप्त जान पड़ती हो। तुम्हारा यह प्रसन्न, मधुर एवं शान्त मुखमण्डल तुम्हारे अन्तःकरणमें किसी परम आश्चर्यमय आनन्दके उद्रेककी सूचना दे रहा है। सृष्टि, स्थिति और संहार—तुम्हारे ही स्वरूप हैं, तुम्हीं इनका अधिष्ठान हो। तुम्हीं विशुद्ध सत्त्वमयी हो तथा तुम्हीं पराविद्यारूपिणी उत्तम शक्ति हो। तुम्हारा वैभव आश्चर्यमय है। ब्रह्मा और रुद्र आदिके लिये भी तुम्हारे तत्त्वका बोध होना कठिन है। बड़े-बड़े योगीश्वरोंके ध्यानमें भी तुम कभी नहीं आतीं। तुम्हीं सबकी अधीश्वरी हो। इच्छा-शक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रिया-शक्ति—ये सब तुम्हारे अंशमात्र हैं। ऐसी ही

मेरी धारणा है—मेरी बुद्धिमें यही बात आती है। मायासे बालकरूप धारण करनेवाले परमेश्वर महाविष्णुकी जो मायामयी अचिन्त्य विभूतियाँ हैं, वे सब तुम्हारी अंशभूता हैं। तुम आनन्दरूपिणी शक्ति और सबकी ईश्वरी हो; इसमें तनिक भी संदेहकी बात नहीं है। निश्चय ही, भगवान् श्रीकृष्ण वृन्दावनमें तुम्हारे ही साथ क्रीड़ा करते हैं। कुमारावस्थामें भी तुम अपने रूपसे विश्वको मोहित करनेकी शक्ति रखती हो। तुम्हारा जो स्वरूप भगवान् श्रीकृष्णको परम प्रिय है, मैं उसका दर्शन करना चाहता हूँ। महेश्वरि ! मैं तुम्हारी शरणमें आया हूँ, चरणोंमें पढ़ा हूँ, मुझपर दया करके इस समय अपना वह मनोहर रूप प्रकट करो, जिसे देखकर नन्द-नन्दन श्रीकृष्ण भी मोहित हो जायेंगे।’

यों कहकर देवर्षि नारदजी श्रीकृष्णका ध्यान करते हुए इस प्रकार उनके गुणोंका गान करने लगे—‘भक्तोंके चित्त चुरानेवाले श्रीकृष्ण ! तुम्हारी जय हो, वृन्दावनके प्रेमी गोविन्द ! तुम्हारी जय हो। बाँकी भौंहोंके कारण अत्यन्त सुन्दर, वंशी बजानेमें व्यग्र, मोरपंखका मुकुट धारण करनेवाले गोपीमोहन ! तुम्हारी जय हो, जय हो। अपने श्रीअङ्गोंमें कुङ्कुम लगाकर रत्नमय आभूषण धारण करनेवाले नन्दनन्दन ! तुम्हारी जय हो, जय हो। अपने किशोरस्वरूपसे प्रेमीजनोंका मन मोहनेवाले जगदीश्वर ! वह दिन कब आयगा, जब कि मैं तुम्हारी ही कृपासे तुम्हें अभिनव तरुणावस्थाके कारण अङ्ग-अङ्गमें मनोहरण शोभा धारण करनेवाली इस दिव्यरूपा बालिकाके साथ देखूँगा।’

नारदजी जब इस प्रकार कीर्तन कर रहे थे, उसी समय वह बालिका क्षणभरमें अत्यन्त मनोहर दिव्यरूप धारण करके पुनः उनके सामने प्रकट हुई। वह रूप चौदह वर्षकी अवस्थाके अनुरूप और सौन्दर्यकी चरम सीमाको पहुँचा हुआ था। तत्काल ही उसीके समान अवस्थावाली दूसरी ब्रज-बालाएँ भी दिव्य वस्त्र, आभूषण और मालाओंसे सुसज्जित हो वहाँ आ पहुँचीं तथा भानुकुमारीको सब ओरसे घेरकर खड़ी हो गयीं। मुनीश्वर नारदजीकी स्तवन-शक्तिने जवाब दे दिया। वे

आश्वर्यसे मोहित हो गये, तब उन ब्रजबालाओंने कृपा-पूर्वक अपनी सखीका चरणोदक लेकर मुनिके ऊपर छोटा दिया। इस प्रकार जब वे होशमें आये तो बालिकाओंने



कहा—मुनिश्रेष्ठ ! तुम बड़े भाग्यशाली हो, महान् योगेश्वरोंके भी ईश्वर हो। तुम्हीने पराभक्तिके साथ सर्वेश्वर भगवान् श्रीहरिकी आराधना की है। भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करनेवाले भगवान्की उपासना वास्तवमें तुम्हारे ही द्वारा हुई है। यही कारण है कि ब्रह्मा और रुद्र आदि देवता, सिद्ध, मुनीश्वर तथा अन्य भगवद्भक्तोंके लिये भी जिसे देखना और जानना कठिन है, वही अपनी अद्भुत

अवस्था और रूपसे सबको मोहित करनेवाली यह श्रीकृष्णकी प्रियतमा हमारी सखी आज तुम्हारे समक्ष प्रकट हुई है। निश्चय ही यह तुम्हारे किसी अचिन्त्य सौभाग्यका प्रभाव है। ब्रह्मणे ! धैर्य धारण करके शीघ्र ही उठो, खड़े हो जाओ और इस देवीकी प्रदक्षिणा करो; इसके चरणोंमें बारम्बार मस्तक झुका लो। फिर समय नहीं मिलेगा, यह अभी इसी क्षण अन्तर्धान हो जायगी। अब इसके साथ तुम्हारी बातचीत किसी तरह नहीं हो सकेगी।'

ब्रज-बालाओंका चित्त स्नेहसे विह्वल हो रहा था। उनकी बातें सुनकर नारदजी नाना प्रकारके वेष-विन्याससे शोभा पानेवाली उस दिव्य बालाके चरणोंमें दो मुहूर्ततक पढ़े रहे। तदनन्तर उन्होंने भानुको बुलाकर उस सर्वशोभा-सम्पन्न कन्याके सम्बन्धमें इस प्रकार कहा—‘गोपश्रेष्ठ ! तुम्हारी इस कन्याका स्वरूप और स्वभाव दिव्य है। देवता भी इसे अपने वशमें नहीं कर सकते। जो घर इसके चरण-चिह्नोंसे विभूषित होगा, वहाँ भगवान् नारायण सम्पूर्ण देवताओंके साथ निवास करेंगे और भगवती लक्ष्मी भी सब प्रकारकी सिद्धियोंके साथ वहाँ मौजूद रहेंगी। अब तुम सम्पूर्ण आभूषणोंसे विभूषित इस सुन्दरी कन्याको परा देवीकी भाँति समझकर इसकी अपने घरमें यत्पूर्वक रक्षा करो।’

ऐसा कहकर भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ नारदजीने मन-ही-मन उस देवीको प्रणाम किया और उसीके स्वरूपका चिन्तन करते हुए वे गहन वनके भीतर चले गये।

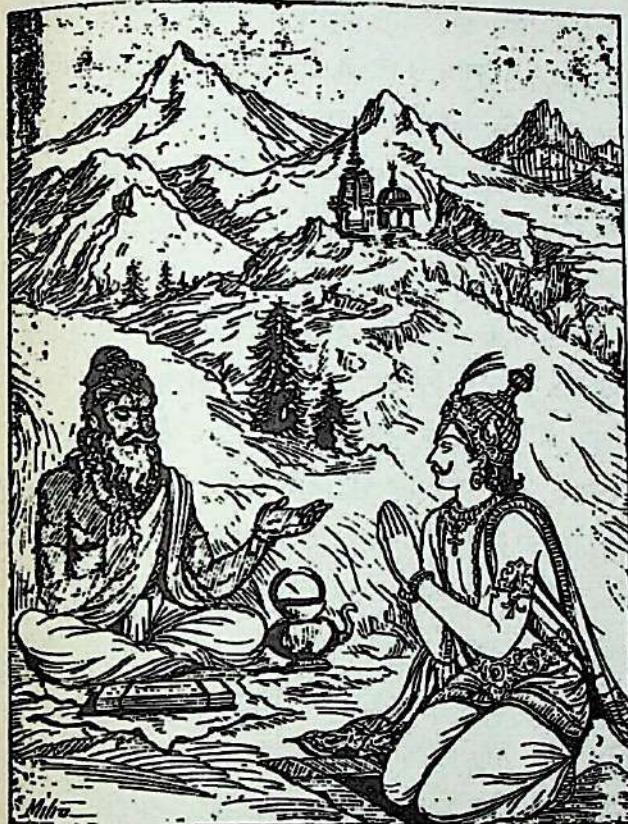
————★————

### भगवान्के परात्पर स्वरूप—श्रीकृष्णकी महिमा तथा मथुराके माहात्म्यका वर्णन

श्रीमहादेवजीने कहा—देवि ! महर्षि वेदव्यासने विष्णुभक्त महाराज अम्बरीषसे जिस रहस्यका वर्णन किया था, वही मैं तुम्हें भी बतला रहा हूँ। एक समयकी बात है, यजा अम्बरीष बदरिकाश्रममें गये। वहाँ परम जितेन्द्रिय महर्षि वेदव्यास विराजमान थे। राजाने विष्णु-धर्मको जाननेकी इच्छासे महर्षिको प्रणाम करके

उनका स्तवन करते हुए कहा—भगवन् ! आप विषयोंसे विरक्त हैं। मैं आपको बारम्बार नमस्कार करता हूँ। प्रभो ! जो परमपद, उद्वेगशून्य—शान्त है, जो सच्चिदानन्द-स्वरूप और परब्रह्मके नामसे प्रसिद्ध है, जिसे ‘परम आकाश’ कहा गया है, जो इस भौतिक जड आकाशसे सर्वथा विलक्षण है, जहाँ किसी रोग-व्याधिका प्रवेश

नहीं है तथा जिसका साक्षात्कार करके मुनिगण भवसागरसे पार हो जाते हैं, उस अव्यक्त परमात्मामें मेरे मनकी नित्य स्थिति कैसे हो ?'

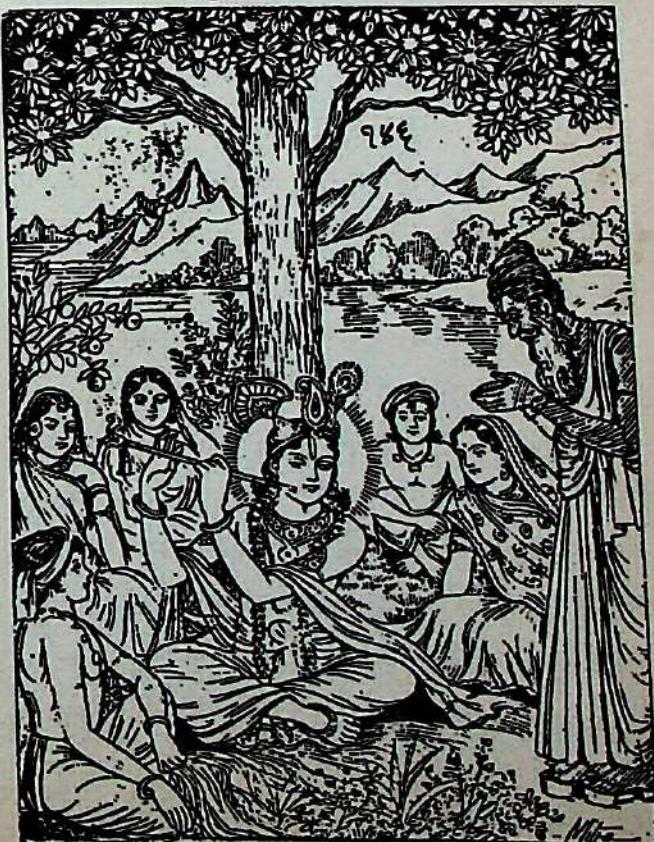


वेदव्यासजी बोले—राजन् ! तुमने अत्यन्त गोपनीय प्रश्न किया है, जिस आत्मानन्दके विषयमें मैंने अपने पुत्र शुकदेवको भी कुछ नहीं बतलाया था, वही आज तुमको बता रहा हूँ; क्योंकि तुम भगवानके प्रिय भक्त हो। पूर्वकालमें यह सारा विश्व-ब्रह्माण्ड जिसके रूपमें स्थित रहकर अव्यक्त और अविकारी स्वरूपसे प्रतिष्ठित था, उसी परमेश्वरके रहस्यका वर्णन किया जाता है, सुनो—प्राचीन समयमें मैंने फल, मूल, पत्र, जल, वायुका आहार करके कई हजार वर्षोंतक भारी तपस्या की। इससे भगवान् मुझपर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने ध्यानमें लगे रहनेवाले मुझ भक्तसे कहा—‘महामते ! तुम कौन-सा कार्य करना अथवा किस विषयको जानना चाहते हो ? मैं प्रसन्न हूँ तुम मुझसे कोई वर माँगो। संसारका बन्धन तभीतक रहता है, जबतक कि मेरा साक्षात्कार नहीं हो जाता; यह मैं तुमसे सच्ची बात बता रहा हूँ।’ यह सुनकर मेरे शरीरमें रोमाञ्च

हो आया; मैंने श्रीकृष्णसे कहा—‘मधुसूदन ! मैं आपहीके तत्त्वका यथार्थरूपसे साक्षात्कार करना चाहता हूँ। नाथ ! जो इस जगत्का पालक और प्रकाशक है; उपनिषदोंमें जिसे सत्यस्वरूप परब्रह्म बतलाया गया है; आपका वही अद्भुत रूप मेरे समक्ष प्रकट हो—यही मेरी प्रार्थना है।’

श्रीभगवानने कहा—महर्षे ! [मेरे विषयमें लोगोंकी भिन्न-भिन्न धारणाएँ हैं] कोई मुझे ‘प्रकृति’ कहते हैं, कोई पुरुष। कोई ईश्वर मानते हैं, कोई धर्म। किन्हीं-किन्हींके मतमें मैं सर्वथा भयरहित मोक्षस्वरूप हूँ। कोई भाव (सत्तास्वरूप) मानते हैं और कोई-कोई कल्याणमय सदाशिव बतलाते हैं। इसी प्रकार दूसरे लोग मुझे वेदान्तप्रतिपादित अद्वितीय सनातन ब्रह्म मानते हैं। किन्तु वास्तवमें जो सत्तास्वरूप और निर्विकार है, सत्-चित् और आनन्द ही जिसका विग्रह है तथा वेदोंमें जिसका रहस्य छिपा हुआ है, अपना वह पारमार्थिक स्वरूप आज तुम्हारे सामने प्रकट करता हूँ, देखो।

राजन् ! भगवानके इतना कहते ही मुझे एक बालकका दर्शन हुआ, जिसके शरीरकी कान्ति नील



मेघके समान रथाम थी। वह गोपकन्याओं और ग्वाल-बालोंसे धिरकर हँस रहा था। वे भगवान् रथामसुन्दर थे, जो पीत वस्त्र धारण किये कदम्बकी जड़पर बैठे हुए थे। उनकी झाँकी अद्भुत थी। उनके साथ ही नूतन पल्लवोंसे अलङ्कृत 'वृन्दावन' नामवाला वन भी दृष्टिगोचर हुआ। इसके बाद मैंने नील कमलकी आभा धारण करनेवाली कलिन्दकन्या यमुनाके दर्शन किये। फिर गोवर्धन-पर्वतपर दृष्टि पड़ी, जिसे श्रीकृष्ण तथा बलरामने इन्द्रका घमंड चूर्ण करनेके लिये अपने हाथोंपर उठाया था। वह पर्वत गौओं तथा गोपोंको बहुत सुख देनेवाला है। गोपाल श्रीकृष्ण अबलाओंके साथ बैठकर बड़ी प्रसन्नताके साथ वेणु बजा रहे थे, उनके शरीरपर सब प्रकारके आभूषण शोभा पा रहे थे। उनका दर्शन करके मुझे बड़ा हर्ष हुआ। तब वृन्दावनमें विचरनेवाले भगवान् ने स्वयं मुझसे कहा—‘मुने ! तुमने जो इस दिव्य सनातनरूपका दर्शन किया है, यही मेरा निष्कल, निष्क्रिय, शान्त और सच्चिदानन्दमय पूर्ण विग्रह है। इस कमललोचनस्वरूपसे बढ़कर दूसरा कोई उल्कृष्ट तत्त्व नहीं है। वेद इसी स्वरूपका वर्णन करते हैं। यही कारणोंका भी कारण है। यही सत्य, परमानन्दस्वरूप, चिदानन्दधन, सनातन और शिवतत्त्व है। तुम मेरी इस मथुरापुरीको नित्य समझो। यह वृन्दावन, यह यमुना, ये गोपकन्याएँ तथा ग्वाल-बाल सभी नित्य हैं। यहाँ जो मेरा अवतार हुआ है, यह भी नित्य है। इसमें संशय न करना। राधा मेरी सदाकी प्रियतमा हैं। मैं सर्वज्ञ, परात्पर, सर्वकाम, सर्वेश्वर तथा सर्वानन्दमय परमेश्वर हूँ। मुझमें ही यह सारा विश्व, जो मायाका विलासमात्र है, प्रतीत हो रहा है।’

तब मैंने जगत्के कारणोंके भी कारण भगवान् से कहा—‘नाथ ! ये गोपियाँ और ग्वाल कौन हैं ? तथा यह वृक्ष कैसा है ?’ तब वे बड़े प्रेमसे बोले—‘मुने ! गोपियोंको श्रुतियाँ समझो तथा देवकन्याएँ भी इनके रूपमें प्रकट हुई हैं। तपस्यामें लगे हुए मुमुक्षु मुनि ही इन ग्वाल-बालोंके रूपमें दिखायी दे रहे हैं। ये सभी मेरे आनन्दमय विग्रह हैं। यह कदम्ब कल्पवृक्ष है, जो परमानन्दमय श्रीकृष्णका एकमात्र आश्रय बना हुआ है तथा यह पर्वत

भी अनादिकालसे मेरा भक्त है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। अहो ! कितने आश्र्यकी बात है कि दूषित चित्त-वाले मनुष्य मेरी इस उल्कृष्ट, सनातन एवं मनोरम पुरीको, जिसकी देवराज इन्द्र, नागराज अनन्त तथा बड़े-बड़े मुनीश्वर भी सुति करते हैं, नहीं जानते। यद्यपि काशी आदि अनेकों मोक्षदायिनी पुरियाँ विद्यमान हैं, तथापि उन सबमें मथुरापुरी ही धन्य है; क्योंकि यह अपने क्षेत्रमें जन्म, उपनयन, मृत्यु और दाह-संस्कार—इन चारों ही कारणोंसे मनुष्योंको मोक्ष प्रदान करती है। जब तप आदि साधनोंके द्वारा मनुष्योंके अन्तःकरण शुद्ध एवं शुभसङ्कल्पसे युक्त हो जाते हैं और वे निरन्तर ध्यानरूपी धनका संग्रह करने लगते हैं, तभी उन्हें मथुराकी प्राप्ति होती है। मथुरावासी धन्य हैं, वे देवताओंके भी माननीय हैं, उनकी महिमाकी गणना नहीं हो सकती। मथुरावासियोंके जो दोष हैं; वे नष्ट हो जाते हैं; उनमें जन्म लेने और मरनेका दोष नहीं देखा जाता। जो निरन्तर मथुरापुरीका चिन्तन करते हैं, वे निर्धन होनेपर भी धन्य हैं; क्योंकि मथुरामें भगवान् भूतेश्वरका निवास है, जो पापियोंको भी मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। देवताओंमें श्रेष्ठ भगवान् भूतेश्वर मुझको सदा ही प्रिय हैं; क्योंकि वे मेरी प्रसन्नताके लिये कभी भी मथुरापुरीका परित्याग नहीं करते। जो भगवान् भूतेश्वरको नमस्कार, उनका पूजन अथवा स्मरण नहीं करता, वह मनुष्य दुराचारी है। जो मेरे परम भक्ति शिवका पूजन नहीं करता, उस पापीको किसी तरह मेरी भक्ति नहीं प्राप्त होती। ध्रुवने बालक होनेपर भी यहाँ मेरी आराधना करके उस परम विशुद्ध स्थानको प्राप्त किया, जो उसके बाप-दादोंको भी नहीं नसीब हुआ था; वह मेरी मथुरापुरी देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। वहाँ जाकर मनुष्य यदि लँगड़ा या अंधा होकर भी प्राणोंका परित्याग करे तो उसकी भी मुक्ति हो जाती है। महामना वेदव्यास ! तुम इस विषयमें कभी सन्देह न करना। यह उपनिषदोंका रहस्य है, जिसे मैंने तुम्हरे सामने प्रकाशित किया है।’

जो मनुष्य पवित्र होकर भगवान् के श्रीमुखसे कहे हुए इस अध्यायका भक्तिपूर्वक पाठ या श्रवण करता है, उसे भी सनातन मोक्षकी प्राप्ति होती है।

**भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा ब्रज तथा द्वारकामें निवास करनेवालोंकी मुक्ति, वैष्णवोंकी द्वादश शुद्धि, पाँच प्रकारकी पूजा, शालग्रामके स्वरूप और महिमाका वर्णन, तिलककी विधि, अपराध और उनसे छूटनेके उपाय, हविष्यान्न और तुलसीकी महिमा**

महादेवजी कहते हैं—देवि ! एक समयकी बात है, भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकासे मथुरामें आये और वहाँसे यमुना पार करके नन्दके ब्रजमें गये। वहाँ उन्होंने अपने पिता नन्दजी तथा यशोदा मैयाको प्रणाम करके उन्हें भलीभाँति सान्त्वना दी, फिर पिता-माताने भी उन्हें छातीसे लगाया। इसके बाद वे बड़े-बूढ़े गोपोंसे मिले। उन सबको आश्वासन दिया तथा बहुत-से वस्त्र और आभूषण आदि भेटमें देकर वहाँ रहनेवाले सब लोगोंको सन्तुष्ट किया।

तत्पश्चात् पावन वृक्षोंसे भरे हुए यमुनाके रमणीय तटपर गोपाङ्गनाओंके साथ श्रीकृष्णने तीन राततक वहाँ सुखपूर्वक निवास किया। उस समय उस स्थानपर अपने पुत्रों और स्त्रियोंसहित नन्दगोप आदि सब लोग, यहाँतक कि पशु, पक्षी और मृग आदि भी भगवान् वासुदेवकी कृपासे दिव्य रूप धारण कर विमानपर आरूढ़ हुए और परम धाम—वैकुण्ठलोकको चले गये। इस प्रकार नन्दके ब्रजमें निवास करनेवाले सब लोगोंको अपना निरामय पद प्रदान करके भगवान् श्रीकृष्ण देवियों और देवताओंके मुखसे अपनी सुति सुनते हुए शोभा-सम्पन्न द्वारकापुरीमें आये।

वहाँ वसुदेव, उग्रसेन, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और अक्षूर आदि यादव प्रतिदिन उनकी पूजा करते थे तथा वे विश्वरूपधारी भगवान् दिव्य रत्नोद्धारा बने लतागृहोंमें परिजात-पुष्प बिछाये हुए मृदुल पलंगोंपर शयन करके अपनी सोलह हजार आठ रानियोंके साथ विहार किया करते थे। इस प्रकार सम्पूर्ण देवताओंका हित और समस्त भूभारका नाश करनेके लिये भगवान् यदुवंशमें अवतीर्ण हुए थे। उन्होंने सभी राक्षसोंका संहार करके पृथ्वीके महान् भारको दूर किया तथा नन्दके

ब्रज और द्वारकापुरीमें निवास करनेवाले समस्त चराचर प्राणियोंको भवबन्धनसे मुक्त करके उन्हें योगियोंके ध्येयभूत परम सनातन धाममें स्थापित कर दिया। तदनन्तर, वे स्वयं भी अपने परम धामको पधारे।

पार्वतीने कहा—भगवन् ! वैष्णवोंका जो यथार्थ धर्म है, जिसका अनुष्ठान करके सब मनुष्य भवसागरसे पार हो जाते हैं, उसका मुझसे वर्णन कीजिये।

महादेवजीने कहा—देवि ! प्रथम वैष्णवोंकी द्वादश<sup>३</sup> प्रकारकी शुद्धि बतायी जाती है। भगवान्‌के मन्दिरको लीपना, भगवान्‌की प्रतिमाके पीछे-पीछे जाना तथा भक्तिपूर्वक उनकी प्रदक्षिणा करना—ये तीन कर्म चरणोंकी शुद्धि करनेवाले हैं। भगवान्‌की पूजाके लिये भक्तिभावके साथ पत्र और पुष्पोंका संग्रह करना—यह हाथोंकी शुद्धिका उपाय है। यह शुद्धि सब प्रकारकी शुद्धियोंसे बढ़कर है। भक्तिपूर्वक भगवान् श्रीकृष्णके नाम और गुणोंका कीर्तन वाणीकी शुद्धिका उपाय बताया गया है। उनकी कथाका श्रवण और उत्सवका दर्शन—ये दो कार्य क्रमशः कानों और नेत्रोंकी शुद्धि करनेवाले कहे गये हैं। मस्तकपर भगवान्‌का चरणोदक, निर्माल्य तथा माला धारण करना—ये भगवान्‌के चरणोंमें पड़े हुए पुरुषके लिये सिरकी शुद्धिके साधन हैं। भगवान्‌के निर्माल्यभूत पुष्प आदिको सूँघना अन्तःशुद्धि तथा ग्राणशुद्धिका उपाय माना गया है। श्रीकृष्णके युगल चरणोंपर चढ़ा हुआ पत्र-पुष्प आदि संसारमें एकमात्र पावन है, वह सभी अङ्गोंको शुद्ध कर देता है।

भगवान्‌की पूजा पाँच प्रकारकी बतायी गयी है; उन पाँचों भेदोंको सुनो—अभिगमन, उपादान, योग, स्वाध्याय और इज्या—ये ही पूजाके पाँच प्रकार हैं; अब तुम्हें इनका क्रमशः परिचय दे रहा हूँ। देवताके स्थानको

झाड़-बुहारकर साफ करना, उसे लीपना तथा पहलेके चढ़े हुए निर्माल्यको दूर हटाना—‘अभिगमन’ कहलाता है। पूजाके लिये चन्दन और पुष्पादिके संग्रहका नाम ‘उपादान’ है। अपने साथ अपने इष्टदेवकी आत्मभावना करना अर्थात् मेरा इष्टदेव मुझसे भिन्न नहीं है, वह मेरा ही आत्मा है; इस तरहकी भावनाको दृढ़ करना ‘योग’ कहा गया है। इष्टदेवके मन्त्रका अर्थात् नुसन्धानपूर्वक जप करना ‘स्वाध्याय’ है। सूक्त और स्तोत्र आदिका पाठ, भगवान्का कीर्तन तथा भगवत्-तत्त्व आदिका प्रतिपादन करनेवाले शास्त्रोंका अभ्यास भी ‘स्वाध्याय’ कहलाता है। अपने आराध्यदेवकी यथार्थ विधिसे पूजा करनेका नाम ‘इज्या’ है। सुन्नते ! यह पाँच प्रकारकी पूजा मैंने तुम्हें बतायी। यह क्रमशः सार्षि, सामीष्य, सालगेव्य, सायुज्य और सारूप्य नामक मुक्ति प्रदान करनेवाली है।

अब प्रसङ्गवश शालग्राम-शिलाकी पूजाके सम्बन्धमें कुछ निवेदन करूँगा। चार भुजाधारी भगवान् विष्णुके दाहिनी एवं ऊर्ध्वभुजाके क्रमसे अस्त्रविशेष ग्रहण करनेपर केशव आदि नाम होते हैं अर्थात् दाहिनी ओरका ऊपरका हाथ, दाहिनी ओरका नीचेका हाथ, बायीं ओरका ऊपरका हाथ और बायीं ओरका नीचेका हाथ—इस क्रमसे चारों हाथोंमें शङ्ख, चक्र आदि आयुधोंको क्रम या व्यतिक्रमपूर्वक धारण करनेपर भगवान्की भिन्न-भिन्न संज्ञाएँ होती हैं। उन्हीं संज्ञाओंका निर्देश करते हुए यहाँ भगवान्का पूजन बतलाया जाता है। उपर्युक्त क्रमसे चारों हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण करनेवाले विष्णुका नाम ‘केशव’ है। पद्म, गदा, चक्र और शङ्खके क्रमसे शास्त्र धारण करनेपर उन्हें ‘नारायण’ कहते हैं। क्रमशः चक्र, शङ्ख, पद्म और गदा ग्रहण करनेसे वे ‘माधव’ कहलाते हैं। गदा, पद्म, शङ्ख और चक्र—इस क्रमसे आयुध धारण करनेवाले भगवान्का नाम ‘गोविन्द’ है। पद्म, शङ्ख, चक्र और गदाधारी विष्णुरूप भगवान्को प्रणाम है। शङ्ख, पद्म, गदा और चक्र धारण करनेवाले मधुसूदन-विग्रहको नमस्कार है। गदा, चक्र, शङ्ख और पद्मसे युक्त

त्रिविक्रमको तथा चक्र, गदा, पद्म और शङ्खधारी वामनमूर्तिको प्रणाम है। चक्र, पद्म, शङ्ख और गदा धारण करनेवाले श्रीधररूपको नमस्कार है। चक्र, गदा, शङ्ख तथा पद्मधारी हषीकेश ! आपको प्रणाम है। पद्म, शङ्ख, गदा और चक्र ग्रहण करनेवाले पद्मनाभविग्रहको नमस्कार है। शङ्ख, गदा, चक्र और पद्मधारी दामोदर ! आपको मेरा प्रणाम है। शङ्ख, कमल, चक्र तथा गदा धारण करनेवाले संकर्षणको नमस्कार है। चक्र, शङ्ख गदा तथा पद्मसे युक्त भगवान् वासुदेव ! आपको प्रणाम है। शङ्ख, चक्र, गदा और कमल आदिके द्वारा प्रद्युम्नमूर्ति धारण करनेवाले भगवान्को नमस्कार है। गदा, शङ्ख, कमल तथा चक्रधारी अनिरुद्धको प्रणाम है। पद्म, शङ्ख, गदा और चक्रसे चिह्नित पुरुषोत्तमरूपको नमस्कार है। गदा, शङ्ख, चक्र और पद्म ग्रहण करनेवाले अधोक्षजको प्रणाम है। पद्म, गदा, शङ्ख और चक्र धारण करनेवाले नृसिंह भगवान्को नमस्कार है। पद्म, चक्र, शङ्ख और गदा लेनेवाले अच्युतस्वरूपको प्रणाम है। गदा, पद्म, चक्र और शङ्खधारी श्रीकृष्णविग्रहको नमस्कार है।

जिस शालग्राम-शिलामें द्वार-स्थानपर परस्पर स्टे हुए दो चक्र हों, जो शुक्रवर्णकी रेखासे अङ्कित और शोभासम्पन्न दिखायी देती हों, उसे भगवान् श्रीगदाधरका स्वरूप समझना चाहिये। सङ्कर्षणमूर्तिमें दो सटे हुए चक्र होते हैं, लाल रेखा होती है और उसका पूर्वभाग कुछ मोटा होता है। प्रद्युम्नके स्वरूपमें कुछ-कुछ पीलापन होता है और उसमें चक्रका चिह्न सूक्ष्म रहता है। अनिरुद्धकी मूर्ति गोल होती है और उसके भीतरी भागमें गहरा एवं चौड़ा छेद होता है; इसके सिवा, वह द्वारभागमें नीलवर्ण और तीन रेखाओंसे युक्त भी होती है। भगवान् नारायण श्यामवर्णके होते हैं, उनके मध्यभागमें गदाके आकारकी रेखा होती है और उनका नाभि-कमल बहुत ऊँचा होता है। भगवान् नृसिंहकी मूर्तिमें चक्रका स्थूल चिह्न रहता है, उनका वर्ण कपिल होता है तथा वे तीन या पाँच विन्दुओंसे युक्त होते हैं। ब्रह्मचारीके लिये उन्हींका पूजन विहित है। वे भक्तोंकी रक्षा करनेवाले हैं। जिस शालग्राम-शिलामें दो चक्रके

चिह्न विषमभावसे स्थित हों, तीन लिङ्ग हों तथा तीन रेखाएँ दिखायी देती हों; वह वाराह भगवान्‌का स्वरूप है, उसका वर्ण नील तथा आकार स्थूल होता है। भगवान् वाराह भी सबकी रक्षा करनेवाले हैं। कच्छपकी मूर्ति इयामवर्णकी होती है। उसका आकार पानीकी भूंवरके समान गोल होता है। उसमें यत्र-तत्र विन्दुओंके चिह्न देखे जाते हैं तथा उसका पृष्ठ-भाग श्वेत रंगका होता है। श्रीधरकी मूर्तिमें पाँच रेखाएँ होती हैं, बनमालीके स्वरूपमें गदाका चिह्न होता है। गोल आकृति, मध्यभागमें चक्रका चिह्न तथा नीलवर्ण, यह वामन-मूर्तिकी पहचान है। जिसमें नाना प्रकारकी अनेकों मूर्तियों तथा सर्प-शरीरके चिह्न होते हैं, वह भगवान् अनन्तकी प्रतिमा है। दामोदरकी मूर्ति स्थूलकाय एवं नीलवर्णकी होती है। उसके मध्यभागमें चक्रका चिह्न होता है। भगवान् दामोदर नील चिह्नसे युक्त होकर सङ्करणके द्वारा जगत्की रक्षा करते हैं। जिसका वर्ण लाल है, तथा जो लम्बी-लम्बी रेखा, छिद्र, एक चक्र और कमल आदिसे युक्त एवं स्थूल है, उस शालग्रामको ब्रह्माकी मूर्ति समझनी चाहिये। जिसमें बृहत् छिद्र, स्थूल चक्रका चिह्न और कृष्ण वर्ण हो, वह श्रीकृष्णका स्वरूप है। वह विन्दुयुक्त और विन्दुशून्य दोनों ही प्रकारका देखा जाता है। हयश्रीव मूर्ति अङ्कुशके समान आकारवाली और पाँच रेखाओंसे युक्त होती है। भगवान् वैकुण्ठ कौस्तुभमणि धारण किये रहते हैं। उनकी मूर्ति बड़ी निर्मल दिखायी देती है। वह एक चक्रसे चिह्नित और श्याम वर्णकी होती है। मत्स्य भगवान्‌की मूर्ति बृहत् कमलके आकारकी होती है। उसका रंग श्वेत होता है तथा उसमें हारकी रेखा देखी जाती है। जिस शालग्रामका वर्ण श्याम हो, जिसके दक्षिण भागमें एक रेखा दिखायी देती हो तथा जो तीन चक्रोंके चिह्नसे युक्त हो, वह भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका स्वरूप है, वे भगवान् सबकी रक्षा करनेवाले हैं। द्वारकापुरीमें स्थित शालग्रामस्वरूप भगवान् गदाधरको नमस्कार है, उनका दर्शन बड़ा ही उत्तम है। वे भगवान् गदाधर एक चक्रसे चिह्नित देखे जाते हैं। लक्ष्मीनारायण दो चक्रोंसे, त्रिविक्रम तीनसे,

चतुर्व्यूह चारसे, वासुदेव पाँचसे, प्रद्युम्न छःसे, संकर्षण सातसे, पुरुषोत्तम आठसे, नवव्यूह नवसे, दशावतार दससे, अनिरुद्ध ग्यारहसे और द्वादशात्मा बारह चक्रोंसे युक्त होकर जगत्की रक्षा करते हैं। इससे अधिक चक्र-चिह्न धारण करनेवाले भगवान्‌का नाम अनन्त है। दण्ड, कमण्डलु और अक्षमाला धारण करनेवाले चतुर्मुख ब्रह्मा तथा पाँच मुख और दस भुजाओंसे सुशोभित वृषध्वज महादेवजी अपने आयुधोंसहित शालग्राम-शिलामें स्थित रहते हैं। गौरी, चण्डी, सरस्वती और महालक्ष्मी आदि माताएँ, हाथमें कमल धारण करनेवाले सूर्यदेव, हाथीके समान कंधेवाले गजानन गणेश, छः मुखोंवाले स्वामी कार्तिकेय तथा और भी बहुत-से देवगण शालग्राम-प्रतिमामें मौजूद रहते हैं, अतः मन्दिरमें शालग्रामशिलाकी स्थापना अथवा पूजा करनेपर ये उपर्युक्त देवता भी स्थापित और पूजित होते हैं। जो पुरुष ऐसा करता है, उसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष आदिकी प्राप्ति होती है।

गण्डकी अर्थात् नारायणी नदीके एक प्रदेशमें शालग्रामस्थल नामका एक महत्वपूर्ण स्थान है; वहाँसे निकलनेवाले पत्थरको शालग्राम कहते हैं। शालग्राम-शिलाके स्पर्शमात्रसे करोड़ों जन्मोंके पापका नाश हो जाता है। फिर यदि उसका पूजन किया जाय, तब तो उसके फलके विषयमें कहना ही क्या है; वह भगवान्‌के समीप पहुँचानेवाला है। बहुत जन्मोंके पुण्यसे यदि कभी गोष्ठदके चिह्नसे युक्त श्रीकृष्ण-शिला प्राप्त हो जाय तो उसीके पूजनसे मनुष्यके पुनर्जन्मकी समाप्ति हो जाती है। पहले शालग्राम-शिलाकी परीक्षा करनी चाहिये; यदि वह काली और चिकनी हो तो उत्तम है। यदि उसकी कालिमा कुछ कम हो तो वह मध्यम श्रेणीकी मानी गयी है और यदि उसमें दूसरे किसी रंगका सम्मिश्रण हो तो वह मिश्रित फल प्रदान करनेवाली होती है। जैसे सदा काठके भीतर छिपी हुई आग मन्थन करनेसे प्रकट होती है, उसी प्रकार भगवान् विष्णु सर्वत्र व्याप्त होनेपर भी शालग्रामशिलामें विशेषरूपसे अभिव्यक्त होते हैं। जो प्रतिदिन द्वारकाकी शिला—गोमतीचक्रसे युक्त बारह

शालग्राममूर्तियोंका पूजन करता है, वह वैकुण्ठलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो मनुष्य शालग्राम-शिलाके भीतर गुफाका दर्शन करता है, उसके पितर तृप्त होकर कल्पके अन्ततक स्वर्गमें निवास करते हैं। जहाँ द्वारकापुरीकी शिला—अर्थात् गोमतीचक्र रहता है, वह स्थान वैकुण्ठलोक माना जाता है; वहाँ मृत्युको प्राप्त हुआ मनुष्य विष्णुधाममें जाता है। जो शालग्राम-शिलाकी कीमत लगता है, जो बेचता है, जो विक्रयका अनुमोदन करता है तथा जो उसकी परीक्षा करके मूल्यका समर्थन करता है, वे सब नरकमें पड़ते हैं। इसलिये देवि ! शालग्रामशिला और गोमतीचक्रकी खरीद-विक्री छोड़ देनी चाहिये। शालग्राम-स्थलसे प्रकट हुए भगवान् शालग्राम और द्वारकासे प्रकट हुए गोमतीचक्र—इन दोनों देवताओंका जहाँ समागम होता है, वहाँ मोक्ष मिलनेमें तनिक भी सन्देह नहीं है। द्वारकासे प्रकट हुए गोमतीचक्रसे युक्त, अनेकों चक्रोंसे चिह्नित तथा चक्रासन-शिलाके समान आकारवाले भगवान् शालग्राम साक्षात् चित्स्वरूप निरञ्जन परमात्मा ही हैं। ओङ्काररूप तथा नित्यानन्दस्वरूप शालग्रामको नमस्कार है। महाभाग शालग्राम ! मैं आपका अनुग्रह चाहता हूँ। प्रभो ! मैं ऋषणसे ग्रस्त हूँ मुझ भक्तपर अनुग्रह कीजिये।

अब मैं प्रसन्नतापूर्वक तिलककी विधिका वर्णन करता हूँ। ललाटमें केशव, कण्ठमें श्रीपुरुषोत्तम, नाभिमें नारायणदेव, हृदयमें वैकुण्ठ, बायीं पसलीमें दामोदर, दाहिनी पसलीमें त्रिविक्रम, मस्तकपर हृषीकेश, पीठमें पद्मनाभ, कानोंमें गङ्गा-यमुना तथा दोनों भुजाओंमें श्रीकृष्ण और हरिका निवास समझना चाहिये। उपर्युक्त स्थानोंमें तिलक करनेसे ये बारह देवता संतुष्ट होते हैं। तिलक' करते समय इन बारह नामोंका उच्चारण करना चाहिये। जो ऐसा करता है, वह सब पापोंसे शुद्ध होकर विष्णुलोकको जाता है। भगवान्के चरणोदकको पीना चाहिये और पुत्र, मित्र तथा स्त्री आदि समस्त परिवारके शरीरपर उसे छिड़कना चाहिये। श्रीविष्णुका चरणोदक

यदि पी लिया जाय तो वह करोड़ों जन्मोंके पापका नाश करनेवाला होता है।

भगवान्के मन्दिरमें खड़ाऊँ या सवारीपर चढ़कर जाना, भगवत्-सम्बन्धी उत्सवोंका सेवन न करना, भगवान्के सामने जाकर प्रणाम न करना, उच्छिष्ट या अपवित्र अवस्थामें भगवान्की वन्दना करना, एक हाथसे प्रणाम करना, भगवान्के सामने ही एक स्थानपर खड़े-खड़े प्रदक्षिणा करना, भगवान्के आगे पाँव फैलाना, पलंगपर बैठना, सोना, खाना, झूठ बोलना, जोर-जोरसे चिल्लाना, परस्पर बात करना, रोना, झगड़ा करना, किसीको दण्ड देना, अपने बलके घमंडमें आकर किसीपर अनुग्रह करना, स्त्रियोंके प्रति कठोर बात कहना, कम्बल ओढ़ना, दूसरेकी निन्दा, परायी सुनि, गाली बकना, अधोवायुका त्याग (अपशब्द) करना शक्ति रहते हुए गौण उपचारोंसे पूजा करना—मुख्य उपचारोंका प्रबन्ध न करना, भगवान्को भोग लगाये बिना ही भोजन करना, सामयिक फल आदिके भगवान्की सेवामें अर्पण न करना, उपयोगमें लानेसे बचे हुए भोजनको भगवान्के लिये निवेदन करना, भोजनका नाम लेकर दूसरेकी निन्दा तथा प्रशंसा करना, गुरुके समीप मौन रहना, आत्म-प्रशंसा करना तथा देवताओंको कोसना—ये विष्णुके प्रति बत्तीस अपराध बताये गये हैं। 'मधुसूदन ! मुझसे प्रतिदिन हजारों अपराध होते रहते हैं; किन्तु मैं आपका ही सेवक हूँ ऐसा समझकर मुझे उनके लिये क्षमा करें।'\* इस मन्त्रका उच्चारण करके भगवान्के सामने पृथ्वीपर दण्डकी भाँति पड़कर साष्टाङ्ग प्रणाम करना चाहिये। ऐसा करनेसे भगवान् श्रीहरि सदा हजारों अपराध क्षमा करते हैं। द्विजातियोंके लिये सबेरे और शार्म—दो ही समय भोजन करना वेदविहित है। गोल लौकी, लहसुन, ताड़का फल और भाँटा—इन्हें वैष्णव पुरुषोंको नहीं खाना चाहिये। वैष्णवके लिये बड़, पीपल, मदार, कुम्भी, तिन्दुक, कोविदार (कचनार) और कदम्बके

\* अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया । तवाहमिति मा मत्वा क्षमस्व मधुसूदन ॥ (७२ । ४४)

पत्तेमें भोजन करना निषिद्ध है। जला हुआ तथा भगवान्को अर्पण न किया हुआ अन्न, जम्बीर और बिजौरा नीबू, शाक तथा खाली नमक भी वैष्णवको नहीं खाना चाहिये। यदि दैवात् कभी खा ले तो भगवत्रामका स्मरण करना चाहिये। हेमन्त ऋतुमें उत्पन्न होनेवाला सफेद धान जो सड़ा हुआ न हो, मूँग, तिल, यव, केरव, कंगनी, नीवार (तीना), शाक, हिलमोचिका (हिलसा), कालशाक, बथुवा, मूली, दूसरे-दूसरे मूल-शाक, सेंधा और साँभर नमक, गायका दही, गायका घी, बिना माखन निकाला हुआ गायका दूध, कटहल, आम, हरें, पिप्पली, जीरा, नारङ्गी, इमली, केला, लवली (हरफा रेवरी), आँवलेका फल, गुड़के सिवा ईखके रससे तैयार होनेवाली अन्य सभी वस्तुएँ तथा बिना तेलके पकाया हुआ अन्न—इन सभी खाद्य पदार्थोंको मुनिलोग हविष्यान्न कहते हैं।

जो मनुष्य तुलसीके पत्र और पुष्प आदिसे युक्त माला धारण करता है, उसको भी विष्णु ही समझना चाहिये। आँवलेका वृक्ष लगाकर मनुष्य विष्णुके समान हो जाता है। आँवलेके चारों ओर साढ़े तीन सौ हाथकी

भूमिको कुरुक्षेत्र जानना चाहिये। तुलसीकी लकड़ीके रुद्राक्षके समान दाने बनाकर उनके द्वारा तैयार की हुई माला कण्ठमें धारण करके भगवान्का पूजन आरम्भ करना चाहिये। भगवान्को चढ़ायी हुई तुलसीकी माला मस्तकपर धारण करे तथा भगवान्को अर्पण किये हुए चन्दनके द्वारा अपने अङ्गोंपर भगवान्का नाम लिखे। यदि तुलसीके काष्ठकी बनी हुई मालाओंसे अलङ्कृत होकर मनुष्य देवताओं और पितरोंके पूजनादि कार्य करे तो वह कोटिगुना फल देनेवाला होता है। जो मनुष्य तुलसीके काष्ठकी बनी हुई माला भगवान् विष्णुको अर्पित करके पुनः प्रसादरूपसे उसको भक्तिपूर्वक धारण करता है, उसके पातक नष्ट हो जाते हैं। पाद्य आदि उपचारोंसे तुलसीकी पूजा करके इस मन्त्रका उच्चारण करे—जो दर्शन करनेपर सारे पापसमुदायका नाश कर देती है, स्पर्श करनेपर शरीरको पवित्र बनाती है, प्रणाम करनेपर रोगोंका निवारण करती है, जलसे सींचनेपर यमराजको भी भय पहुँचाती है, आरोपित करनेपर भगवान् श्रीकृष्णके समीप ले जाती है और भगवान्के चरणोंमें चढ़ानेपर मोक्षरूपी फल प्रदान करती है, उस तुलसी देवीको नमस्कार है।\*



### नाम-कीर्तनकी महिमा, भगवान्के चरण-चिह्नोंका परिचय तथा प्रत्येक मासमें भगवान्की विशेष आराधनाका वर्णन

पार्वतीजीने पूछा—कृपानिधे ! विषयरूपी ग्राहोंसे भरे हुए भयङ्कर कलियुगके आनेपर संसारके सभी मनुष्य पुत्र, स्त्री और धन आदिकी चिन्तासे व्याकुल रहेंगे, ऐसी दशामें उनके उद्धारका क्या उपाय है ? यह बतानेकी कृपा कीजिये।

महादेवजीने कहा—देवि ! कलियुगमें केवल हरिनाम ही संसारसमुद्रसे पार लगानेवाला है। जो लोग प्रतिदिन 'हरे राम हरे कृष्ण' आदि प्रभुके मङ्गलमय नामोंका उच्चारण करते हैं, उन्हें कलियुग बाधा नहीं

पहुँचाता, अतः बीच-बीचमें जो आवश्यक कर्म प्राप्त हों, उन्हें करते-करते भगवान्के नामोंका भी स्मरण करते रहना चाहिये। जो बारम्बार 'कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण' की रट लगाता रहता है तथा मेरे और तुम्हारे नामका भी व्यतिक्रमपूर्वक अर्थात् गौरीशङ्कर आदि कहकर जप किया करता है, वह भी जैसे आग रूईकी ढेरीको जला डालती है उसी प्रकार अपनी पाप-राशिको भस्म करके उससे मुक्त हो जाता है। जय अथवा श्रीशब्दपूर्वक जो तुम्हारा, मेरा या श्रीकृष्णका मङ्गलमय नाम है, उसका

\* या दृष्टा निखिलाघसंघशमनी सृष्टा वपुष्यावनी रोगाणामभिवन्दिता निरसनी सित्कान्तकञ्जासिनी ।

प्रत्यासत्तिविधायिनी भगवतः कृष्णस्य संरोपिता न्यस्ता तच्चरणे विमुक्तिफलदा तरयै तुलस्यै नमः ॥ (७९ । ६६)

जप करनेसे मनुष्य पापमुक्त हो जाता है। दिन, रात और सन्ध्या—सभी समय नाम-स्मरण करना चाहिये। दिन-रात हरि-नामका जप करनेवाला पुरुष श्रीकृष्णका प्रत्यक्ष दर्शन पाता है। अपवित्र हो या पवित्र, सब समय, निरन्तर भगवन्नामका स्मरण करनेसे वह क्षणभरमें भव-बन्धनसे छुटकारा पा जाता है।\* भगवान्‌का नाम नाना प्रकारके अपराधोंसे युक्त मनुष्यका पाप भी हर लेता है। कलियुगमें यज्ञ, ब्रत, तप और दान—कोई भी कर्म सब अङ्गोंसे पूर्ण नहीं उत्तरता; केवल गङ्गाका स्नान और हरि-नामका कीर्तन—ये ही दो साधन विघ्न-बाधाओंसे रहित हैं। कल्याणी ! हत्याजनित हजारों भयङ्कर पाप तथा दूसरे-दूसरे पातक भी भगवान्‌के गोविन्द नामका उच्चारण करनेसे नष्ट हो जाते हैं। मनुष्य अपवित्र हो या पवित्र अथवा किसी भी दशामें क्यों न स्थित हो, जो पुण्डरीकाक्ष (कमल-नयन) भगवान् विष्णुका स्मरण करता है, वह बाहर और भीतर—सब ओरसे पवित्र हो जाता है। † केवल भगवन्नामोंके स्मरणसे तथा भगवान्‌के चरणोंका चिन्तन करनेसे शुद्धि होती है। सोने, चाँदी, भिगोये हुए आटे अथवा पुष्प-मालाके द्वारा भगवान्‌के चरणोंकी आकृति बनाकर उसे चक्र आदि चिह्नोंसे अङ्कित कर ले, उसके बाद पूजन आरम्भ करे। पूजनके समय भगवचरणोंका इस प्रकार ध्यान करे—भगवान् अपने दाहिने पैरके अँगूठेकी जड़में प्रणतजनोंके संसार-बन्धनका उच्छेद करनेके लिये चक्रका चिह्न धारण करते हैं। मध्यमा अँगुलीके मध्यभागमें अच्युतने अत्यन्त सुन्दर कमलका चिह्न धारण कर रखा है; उसका उद्देश्य है—ध्यान करनेवाले भक्तोंके चित्तरूपी भ्रमरको लुभाना। कमलके नीचे वे ध्वजका चिह्न धारण करते हैं, जो मानो समस्त अनर्थोंको परास्त करके फहरानेवाली विजय-ध्वजा है। कनिष्ठिका अँगुलीकी जड़में वज्रका चिह्न है, जो भक्तोंकी पापराशिको विदीर्ण करनेवाला है। पैरके पार्श्व-भागमें

बीचकी ओर अङ्कुशका चिह्न है, जो भक्तोंके चित्तरूपी हाथीका दमन करनेवाला है। श्रीहरि अपने अङ्गुष्ठके पर्वमें धोग-सम्पत्तिके प्रतीकभूत यवका चिह्न धारण करते हैं तथा मूल-भागमें गदाकी रेखा है, जो समस्त देहधारियोंके पापरूपी पर्वतको चूर्ण कर डालनेवाली है। इतना ही नहीं, वे अजन्मा भगवान् सम्पूर्ण विद्याओंके प्रकाशित करनेके लिये भी पद्म आदि चिह्नको धारण करते हैं। दाहिने पैरमें जो-जो चिह्न हैं, उन्हीं-उन्हीं चिह्नोंको करुणानिधान प्रभु अपने बायें पैरमें भी धारण करते हैं; इसलिये गोविन्दके माहात्म्यका, जो आनन्दमय रसके कारण अत्यन्त मनोरम जान पड़ता है, सदा श्रवण और कीर्तन करना चाहिये। ऐसा करनेवाले मनुष्यकी मुक्ति होनेमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

अब मैं प्रत्येक मासका वह कृत्य बतला रहा हूँ जो भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेवाला है। जेठे महीनेमें पूर्णिमा तिथिको स्नान आदिसे पवित्र होकर यत्पूर्वक श्रीहरिका स्नानोत्सव मनाना चाहिये, इससे दिन, पक्ष, मास, ऋतु और वर्षभरके पाप नष्ट हो जाते हैं। कोटि-कोटि सहस्र जो पातक और उपपातक होते हैं, उन सबका नाश हो जाता है। स्नानके समय कलशमें जल लेकर भगवान्‌के मस्तकपर धीर-धीर गिराना चाहिये और पुरुषसूक्तके मन्त्रों तथा पावमानी ऋचाओंका क्रमशः पाठ करते रहना चाहिये। नारियल-युक्त जल, तालफलसे युक्त जल, रत्नमिश्रित जल, चन्दनमिश्रित जल तथा पुष्पयुक्त जल—इन पाँच उपचारोंसे स्नान कराकर अपने वैभव-विस्तारके अनुसार भगवान्‌की आराधना करे। तत्पश्चात् 'धं घण्टायै नमः' इस मन्त्रको पढ़कर घण्टा बजावे और इस प्रकार प्रार्थना करे—'अपनी ऊँची आवाजसे पतितोंकी पातकराशिका निवारण करनेवाली घण्टे ! घोर संसारसागरमें पड़े हुए मुझ पापीकी रक्षा करो।' जो श्रोत्रिय विद्वान् ब्राह्मण पवित्रभावसे इस प्रकार भगवान्‌की

\* अशुचिर्वा शुचिर्वीपि सर्वकालेषु सर्वदा। नामसंस्मरणादेव संसारान्मुच्यते क्षणात्॥ (८०।७, ८)

† अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा। यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥ (८०।११)

आराधना करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर विष्णु-लोकमें जाता है।

आषाढ़ शुक्ला द्वितीयाको भगवान्की सवारी निकालकर रथयात्रा-सम्बन्धी उत्सव करना चाहिये। तथा आषाढ़ शुक्ला एकादशीको भगवान्के शयनका उत्सव मनाना चाहिये फिर श्रावणके महीनेमें श्रावणीकी विधिका पालन करना उचित है। भाद्रपद कृष्ण अष्टमीको भगवान् श्रीकृष्णके जन्मका दिन है, उस दिन व्रत रखना चाहिये। तत्पश्चात् आश्विनके महीनेमें सोये हुए भगवान्के करवट बदलनेका उत्सव मनाना उचित है। उसके बाद समयानुसार श्रीहरिके शयनसे उठनेका उत्सव करे, अन्यथा वह मनुष्य विष्णुका द्रोह करनेवाला माना जाता है। आश्विनके शुक्लपक्षमें भगवती महामायाका भी पूजन करना कर्तव्य है। उस समय विष्णुरूपा भगवतीकी सोने याँ चाँदीकी प्रतिमा बना लेनी चाहिये। हिंसा और द्वेषका परित्याग करना चाहिये; क्योंकि विष्णुकी पूजा करनेवाला पुरुष धर्मात्मा होता है [और हिंसा, द्वेष आदि महान् अर्धम् हैं]। कार्तिक पुण्यमास है; उसमें इच्छानुसार पुण्य करे। भगवान् दामोदरके लिये प्रतिदिन किसी ऊँचे स्थानपर दीपदान करना उचित है। दीपक चार अङ्गुलका चौड़ा हो और उसमें सात बत्तियाँ जलायी जायँ। फिर पक्षके अन्तमें अमावास्याको सुन्दर दीपावलीका उत्सव मनाया जाय। अगहनके शुक्लपक्षमें षष्ठी तिथिको सफेद वस्त्रोंके द्वारा भगवान् जगदीशकी और विशेषतः ब्रह्माजीकी पूजा करे। पौष मासमें भगवान्का पुष्पमिश्रित जलसे अभिषेक तथा तरल चन्दन वर्जित है। मकरसंक्रान्तिके दिन तथा माघके महीनेमें अधिवासित तण्डुलका भगवान्के लिये नैवेद्य लगावे और 'उँ विष्णवे नमः' इस मन्त्रका उच्चारण करे। फिर ब्राह्मणोंको देवाधिदेव भगवान्के सामने बिठाकर भक्तिपूर्वक भोजन करावे तथा उन भगवद्भक्त द्विजोंकी भगवद्बुद्धिसे पूजा करे। एक भगवद्भक्त पुरुषके भोजन करा देनेपर करोड़ों मनुष्योंके भोजन करनेका फल होता है। यदि पूजामें किसी अङ्गकी कमी रह गयी हो तो वह ब्राह्मण-भोजन

करानेसे अवश्य पूर्ण हो जाती है। माघके शुक्लपक्षमें वसन्त-पञ्चमीको भगवान् केशवको नहलाकर आमके पल्लव तथा भाँति-भाँतिके सुगन्धित चूर्ण आदिके द्वारा विधिपूर्वक उनकी पूजा करे। तत्पश्चात् 'जय कृष्ण' कहकर भगवान्का स्मरण करते हुए उन्हें एक मनोहर उपवनमें प्रदक्षिणभावसे ले जाय और वहाँ दोलोत्सव मनावे। उक्त उपवनको प्रज्वलित दीपकोंके द्वारा प्रकाशित किया जाय। उसमें ऐसे-ऐसे वृक्ष हों, जो सभी ऋतुओंमें फूलोंसे भरे रहें। फल-फूलोंसे सुशोभित नाना प्रकारके वृक्ष, पुष्पनिर्मित चैंदोवे, जलसे भरे हुए घट, आमकी छोटी-बड़ी शाखाएँ तथा छत्र और चैंवर आदि वस्तुएँ उस वनकी शोभा बढ़ा रही हों। कलियुगमें विशेषरूपसे दोलोत्सवका विधान है। फाल्गुनकी चतुर्दशीको आठवें पहरमें अथवा पूर्णमासी या प्रतिपदाकी सन्धिमें भगवान्की भक्तिपूर्वक विधिवत् पूजा करे। उस समय श्वेत, लाल, गौर तथा पीले—इन चार प्रकारके चूर्णोंका उपयोग करे, उनमें कर्पूर आदि सुगन्धित पदार्थ मिले होने चाहिये। हल्दीका रंग मिला देनेसे उन चूर्णोंके रंग तथा रूप और भी मनोहर हो जाते हैं। इनके सिवा, अन्य प्रकारके रंग-रूपवाले चूर्णोंद्वारा भी परमेश्वरको प्रसन्न करे। एकादशीसे लेकर पञ्चमीतक इस उत्सवको पूरा करे अथवा पाँच या तीन दिनतक दोलोत्सव करना उचित है। यदि मनुष्य एक बार भी झूलेमें झूलते हुए दक्षिणाभिमुख श्रीकृष्णका दर्शन कर लें तो वे पापराशिसे मुक्त हो जाते हैं; इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

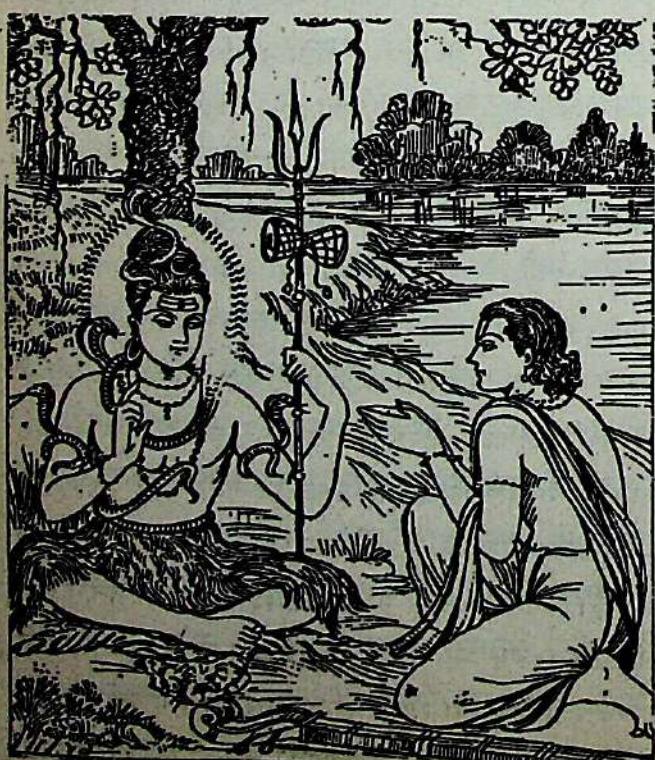
महाभागे ! जो मनुष्य वैशाख-मासमें जलसे भरे हुए सोने, चाँदी, ताँबे अथवा मिट्टीके पात्रमें श्रीशालग्रामको या भगवान्की प्रतिमाको पधराकर जलमें ही उसका पूजन करता है; उसके पुण्यकी गणना नहीं हो सकती। 'दमन' (दौना) नामक पुष्पका आरोपण करके उसे श्रीविष्णुको अर्पित करना चाहिये। वैशाख, श्रावण अथवा भाद्रपद मासमें 'दमनार्पण' करना उचित है। पूर्वी हवा चलनेपर ही दमनार्पण आदि कर्म होते हैं; उस समय विधिपूर्वक भगवान्का पूजन

करना चाहिये; अन्यथा सब कुछ निष्फल हो जाता है। वैशाखकी तृतीयाको विशेषतः जलमें अथवा मण्डल, मण्डप या बहुत बड़े वनमें यह कार्य सम्पन्न करना चाहिये। वैशाख-मासमें प्रतिदिन भगवान्‌के अङ्गको सुगच्छित चन्दन आदि लगाकर परिपूष्ट करे। प्रयत्नपूर्वक ऐसा कार्य करे, जो भगवान्‌के कृश शरीरके लिये पुष्टि-कारक जान पड़े। चन्दन, अगर, हीवर, कालागरु, कुङ्कुम, रोचना, जटामाँसी और मुरा—ये विष्णुके उपयोगमें आनेवाले आठ गन्ध माने गये हैं। उन सुगच्छित पदार्थोंका भगवान् विष्णुके अङ्गोंपर लेप करे। तुलसीके काष्ठको चन्दनकी भाँति धिसकर उसमें कर्पूर और अगरु मिला दे अथवा केसर ही मिलावे तो वह भगवान्‌के लिये 'हरिचन्दन' हो जाता है। जो मनुष्य यात्राके समय भक्ति-पूर्वक श्रीकृष्णका दर्शन करते हैं, उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती। जो लोग सुगच्छित जलसे भगवान्‌को नहलाते हैं; उनके लिये भी यही फल है। अथवा वैशाख-मासमें भगवान्‌को फूलोंके भीतर रखना चाहिये। वृन्दावनमें जाकर तरह-तरहके फल जुटावे और भगवान्‌को भोग लगाकर किसी सुयोग्य भगवद्भक्तको सब खिला दे।

नारियलका फल अर्पण करे अथवा उसे फोड़कर उसकी गरी निकाल कर दे। बेरका फल निवेदन करे। कटहलका कोया निकालकर भोग लगावे तथा दहीयुक्त अन्नको धीसे तर करके भगवान्‌के आगे रखे। कहाँतक कहा जाय? जो-जो वस्तु अपनेको विशेष प्रिय हो, वह सब भगवान्‌को अर्पण करे। नैवेद्य और वस्त्र आदि भगवान्‌को अर्पण करे। पुनः उसे स्वयं उपयोगमें न लावे। विष्णुके उद्देश्यसे दी हुई वस्तु विशेषतः उनके भक्तोंको ही देनी चाहिये। महेश्वर! इस प्रकार संक्षेपसे ही मैंने तुम्हरे सामने ये कुछ बातें बतायी हैं। जिन शास्त्रोंमें श्रीकृष्णके रूप और गुणोंका वर्णन है, उन्हें समझनेकी शक्ति हो जाय तो और कोई शास्त्र पढ़नेकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है। भगवान्‌के प्रेम, भाव, रस, भक्ति, विलास, नाम तथा हारोंमें यदि मन लग गया तो कामिनियोंसे क्या लेना है? अतः ब्रज-बालकोंके स्वामी श्रीकृष्णको, उनके क्रीडानिकेतन वृन्दावनको, ब्रजभूमिको तथा यमुना-जलको मन लगाकर भजो। यदि इस शरीरमें त्रिभुवनके स्वामी भगवान् गोविन्दके चरणारविन्दोंकी धूलि लिपटी हो तो इसमें अगरु और चन्दन आदि लगाना व्यर्थ है।



## मन्त्रचिन्तामणिका उपदेश तथा उसके ध्यान आदिका वर्णन



सूतजी कहते हैं—महर्षियो! एक समयकी बात है, देवाधिदेव जगद्गुरु भगवान् सदाशिव यमुनाजीके तटपर बैठे हुए थे। उस समय नारदजीने उनके चरणोंमें प्रणाम करके कहा—‘देवदेव महादेव! आप सर्वश, जगदीश्वर, भगवदधर्मका तत्त्व जाननेवाले तथा श्रीकृष्ण-मन्त्रका ज्ञान रखनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। देवेश्वर! यदि मैं सुननेका अधिकारी होऊँ तो कृपा करके मुझे वह मन्त्र बताइये, जो एक बारके उच्चारण मात्रसे मनुष्योंको उत्तम फल प्रदान करता है।

शिवजी बोले—महाभाग! तुमने यह बहुत उत्तम प्रश्न किया है। क्यों न हो, तुम सम्पूर्ण जगत्के हितेषी जो ठहरे! मैं तुम्हें मन्त्र-चिन्तामणिका उपदेश दे रहा हूँ। यद्यपि वह बहुत ही गोपनीय है तो भी मैं तुमसे उसका वर्णन करूँगा। कृष्णके दो मन्त्र अत्यन्त उत्तम

हैं, उन दोनोंको तुम्हें बताता हूँ: मन्त्र-चिन्तामणि, युगल, द्वय और पञ्चपदी—ये इन दोनों मन्त्रोंके पर्यायवाची नाम हैं। इनमें पहले मन्त्रका प्रथम पद है—‘गोपीजन’, द्वितीय पद है—‘बल्लभ’, तृतीय पद है—‘चरणान्’, चतुर्थ पद है—‘शरणम्’ तथा पञ्चम पद है ‘प्रपद्ये’। इस प्रकार यह (‘गोपीजनबल्लभचरणान् शरणं प्रपद्ये’) मन्त्र पाँच पदोंका है। इसका नाम मन्त्र-चिन्तामणि है। इस महामन्त्रमें सोलह अक्षर हैं। दूसरे मन्त्रका स्वरूप इस प्रकार है—‘नमो गोपीजन’ इतना कहकर पुनः ‘बल्लभाभ्याम्’ का उच्चारण करना चाहिये। तात्पर्य यह कि ‘नमो गोपीजनबल्लभाभ्याम्’ के रूपमें यह दो पदोंका मन्त्र है, जो दस अक्षरोंका बताया गया है। जो मनुष्य श्रद्धा या अश्रद्धासे एक बार भी इस पञ्चपदीका जप कर लेता है, उसे निश्चय ही श्रीकृष्णके प्यारे भक्तोंका सान्निध्य प्राप्त होता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। इस मन्त्रको सिद्ध करनेके लिये न तो पुरश्चरणकी अपेक्षा पड़ती है और न न्यास-विधानका क्रम ही अपेक्षित है। देश-कालका भी कोई नियम नहीं है। अरि और मित्र आदिके शोधनकी भी आवश्यकता नहीं है। मुनीश्वर ! ब्राह्मणसे लेकर चाण्डालतक सभी मनुष्य इस मन्त्रके अधिकारी हैं। ख्रियाँ, शूद्र आदि, जड़, मूक, अन्ध, पङ्कु, हूण, किरात, पुलिन्द, पुल्कस, आभीर, यवन, कङ्क एवं खश आदि पापयोनिके दम्भी, अहङ्कारी, पापी, चुगुलखोर, गोधाती, ब्रह्महत्यारे, महापातकी, उपपातकी, ज्ञान-वैराग्यहीन, श्रवण आदि साधनोंसे रहित तथा अन्य जितने भी निकृष्ट श्रेणीके लोग हैं, उन सबका इस मन्त्रमें अधिकार है। मुनिश्रेष्ठ ! यदि सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्णमें उनकी भक्ति है तो वे सब-के-सब अधिकारी हैं, अन्यथा नहीं; इसलिये भगवान्‌में भक्ति न रखनेवाले कृतज्ञ, मानी, श्रद्धाहीन और नास्तिकको इस मन्त्रका उपदेश नहीं देना चाहिये। जो सुनना न चाहता हो, अथवा जिसके हृदयमें गुरुके प्रति सेवाका भाव न हो उसे भी यह मन्त्र नहीं बताना चाहिये। जो श्रीकृष्णका अनन्य भक्त हो, जिसमें दम्प और लोभका अभाव हो तथा जो काम और क्रोधसे

सर्वथा मुक्त हो, उसे यत्पूर्वक इस मन्त्रका उपदेश देना चाहिये। इस मन्त्रका ऋषि मैं ही हूँ। बल्लवी-बल्लभ श्रीकृष्ण इसके देवता हैं तथा प्रिया-सहित भगवान् गोविन्दके दास्यभावकी प्राप्तिके लिये इसका विनियोग किया जाता है। यह मन्त्र एक बारके ही उच्चारणसे कृतकृत्यता प्रदान करनेवाला है।

द्विजश्रेष्ठ ! अब मैं इस मन्त्रका ध्यान बतलाता हूँ। वृन्दावनके भीतर कल्पवृक्षके मूलभागमें रत्नमय सिंहासनके ऊपर भगवान् श्रीकृष्ण अपनी प्रिया श्रीराधिकाजीके साथ विराजमान हैं। श्रीराधिकाजी उनके बामभागमें बैठी हुई हैं। भगवान्‌का श्रीविग्रह मेघके समान श्याम है। उसके ऊपर पीताम्बर शोभा पा रहा है। उनके दो भुजाएँ हैं। गलेमें वनमाला पड़ी हुई है। मस्तकपर मोरपंखका मुकुट शोभा दे रहा है। मुख-मण्डल करोड़ों चन्द्रमाओंकी भाँति कान्तिमान् है। वे अपने चञ्चल नेत्रोंको इधर-उधर घुमा रहे हैं। उनके कानोंमें कनेर-पुष्करके आभूषण सुशोभित हैं। ललाटमें दोनों ओर चन्दन तथा बीचमें कुङ्कुम-विन्दुसे तिलक लगाया गया है, जो मण्डलाकार जान पड़ता है। दोनों कुण्डलोंकी प्रभासे वे प्रातःकालीन सूर्यके समान तेजस्वी दिखायी दे रहे हैं। उनके कपोल दर्पणकी भाँति स्वच्छ हैं, जो पसीनेकी छोटी-छोटी बूँदोंके कारण बड़े शोभायमान प्रतीत होते हैं। उनके नेत्र प्रियाके मुखपर लगे हुए हैं। उन्होंने लीलवश अपनी भौंहें ऊँची कर ली है। ऊँची नासिकाके अग्रभागमें मोतीकी बुलाक चमक रही है। पके हुए कुँदरूके समान लाल ओठ दाँतोंका प्रकाश पड़नेसे अधिक सुन्दर दिखायी देते हैं। केयूर, अङ्गद, अच्छे-अच्छे रत तथा मुँदरियोंसे भुजाओं और हाथोंकी शोभा बहुत बढ़ गयी है। वे बायें हाथमें मुरली तथा दाहिनेमें कमल लिये हुए हैं। करधनीकी प्रभासे शरीरका मध्यभाग जगमगा रहा है। नूपुरोंसे चरण सुशोभित हो रहे हैं। भगवान् क्रीड़ा-रसके आवेशसे चञ्चल प्रतीत होते हैं। उनके नेत्र भी चपल हो रहे हैं। वे अपनी प्रियाको बारंबार हँसाते हुए स्वयं भी उनके साथ हँस रहे हैं। इस प्रकार श्रीराधाके साथ श्रीकृष्णका चिन्तन करना चाहिये।

तदनन्तर श्रीराधाकी सखियोंका ध्यान करे। उनकी अवस्था और गुण श्रीराधाजीके ही समान हैं। वे चॅवर और पंखी आदि लेकर अपनी स्वामिनीकी सेवामें लगी हुई हैं।

नारदजी ! श्रीकृष्णप्रिया राधा अपनी चैतन्य आदि अन्तरङ्ग विभूतियोंसे इस प्रपञ्चका गोपन—संरक्षण करती हैं; इसलिये उन्हें 'गोपी' कहते हैं। वे श्रीकृष्णकी आराधनामें तन्मय होनेके कारण 'राधिका' कहलाती हैं। श्रीकृष्णमयी होनेसे ही वे परादेवता हैं। पूर्णतः लक्ष्मी-स्वरूपा हैं। श्रीकृष्णके आहादका मूर्तिमान् स्वरूप होनेके कारण मनीषीजन उन्हें 'हादिनी शक्ति' कहते हैं। श्रीराधा साक्षात् महालक्ष्मी हैं और भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् नारायण हैं। मुनिश्रेष्ठ ! इनमें थोड़ा-सा भी भेद नहीं है। श्रीराधा दुर्गा हैं तो श्रीकृष्ण रुद्र। वे सावित्री हैं तो ये साक्षात् ब्रह्म हैं। अधिक क्या कहा जाय, उन दोनोंके बिना किसी भी वस्तुकी सत्ता नहीं है। जड-चेतनमय सारा संसार श्रीराधा-कृष्णका ही स्वरूप है। इस प्रकार सबको उन्हीं दोनोंकी विभूति समझो। मैं नाम ले-लेकर गिनाने लगूं तो सौ करोड़ वर्षोंमें भी उस विभूतिका वर्णन नहीं कर सकता।\* तीनों लोकोंमें पृथ्वी सबसे श्रेष्ठ मानी गयी है। उसमें भी जम्बूद्वीप सब द्वीपोंसे श्रेष्ठ है। जम्बूद्वीपमें भी भारतवर्ष और भारतवर्षमें

भी मथुरापुरी श्रेष्ठ है। मथुरामें भी वृन्दावन, वृन्दावनमें भी गोपियोंका समुदाय, उस समुदायमें भी श्रीराधाकी सखियोंका वर्ग तथा उसमें भी स्वयं श्रीराधिका सर्वश्रेष्ठ है। श्रीकृष्णके अत्यधिक निकट होनेके कारण श्रीराधाका महत्व सबकी अपेक्षा अधिक है। पृथ्वी आदिकी उत्तरोत्तर श्रेष्ठताका इसके सिवा दूसरा कोई कारण नहीं है। वही ये श्रीराधिका हैं, जो 'गोपी' कही गयी हैं; इनकी सखियाँ ही 'गोपीजन' कहलाती हैं। इन सखियोंके समुदायके दो ही प्रियतम हैं, दो ही उनके प्राणोंके स्वामी हैं—श्रीराधा और श्रीकृष्ण। उन दोनोंके चरण ही इस जगत्में शरण देनेवाले हैं। मैं अत्यन्त दुःखी जीव हूँ, अतः उन्हींका आश्रय लेता हूँ—उन्हींकी शरणमें पड़ा हूँ। शरणमें जानेवाला मैं जो कुछ भी हूँ तथा मेरी कहलानेवाली जो कोई भी वस्तु है, वह सब श्रीराधा और श्रीकृष्णको ही समर्पित है—सब कुछ उन्हींके लिये है, उन्हींकी भोग्य वस्तु है। मैं और मेरा कुछ भी नहीं है। विप्रवर ! इस प्रकार मैंने थोड़े 'गोपीजनवल्लभचरणान् शरणं प्रपद्ये' इस मन्त्रके अर्थका वर्णन किया है। युगलार्थ, न्यास, प्रपति, शरणागति तथा आत्मसमर्पण—ये पाँच पर्याय बतलाये गये हैं। साधकको रात-दिन आलस्य छोड़कर यहाँ बताये हुए विषयका चिन्तन करना चाहिये।



\*देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेवता। सर्वलक्ष्मीस्वरूपा सा कृष्णाहादस्वरूपिणी ॥  
ततः सा ग्रोच्यते विप्र हादिनीति मनीषिभिः। तत्कलशोटिकोट्यंशा दुर्गाद्यास्त्रिगुणात्मिकाः ॥  
सा तु साक्षात्महालक्ष्मीः कृष्णो नारायणः प्रभुः। नैतयोर्विद्यते भेदः स्वल्पोऽपि मुनिसत्तम ॥  
इयं दुर्गा हरी रुद्रः कृष्णः राक्र इयं शची। सावित्रीयं हरिंह्या धूमोणसौ यमो हरिः ॥  
बहुना कि मुनिश्रेष्ठ विना ताभ्यां न किञ्चन। चिदचिल्लक्षणं सर्वं राधाकृष्णमयं जगत् ॥  
इत्यं सर्वं तयोरेव विभूति विद्धि नारद। न शक्यते मया वरुं वर्षकोटिशतैरपि ॥

## दीक्षाकी विधि तथा श्रीकृष्णके द्वारा रुद्रको युगल-मन्त्रकी प्राप्ति

**शिवजी कहते हैं—नारद !** अब मैं दीक्षाकी यथार्थ विधिका वर्णन करता हूँ, ध्यान देकर सुनो। इस विधिका अनुष्ठान न करके केवल श्रवण मात्रसे भी मनुष्य भव-बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं। विद्वान् पुरुष इस बातको समझ ले कि साधारण कीटसे लेकर ब्रह्माजीतक यह सम्पूर्ण जगत् नश्वर है; इसमें आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक—इन तीन प्रकारके दुःखोंका ही अनुभव होता है। यहाँके जितने सुख हैं, वे सभी अनित्य हैं; अतः उन्हें भी दुःखोंकी ही श्रेणीमें रखे। फिर विरक्त होकर उनसे अलग हो जाय और संसार-बन्धनसे छूटनेके लिये उपायोंका विचार करें; साथ ही सर्वोत्तम सुखकी प्राप्तिके साधनोंको भी सोचे तथा पूर्ण शान्त बना रहे। नाना प्रकारके कर्मोंका ठीक-ठीक सम्पादन बहुत कठिन है, ऐसा समझकर परम बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह अत्यन्त चिन्तित होकर श्रीगुरुदेवकी शरणमें जाय। जो शान्त हों, जिनमें मात्सर्यका नितान्त अभाव हो, जो श्रीकृष्णके अनन्य भक्त हों, जिनके मनमें श्रीकृष्ण-प्राप्तिके सिवा दूसरी कोई कामना न हो, जो भगवत्कृपाके सिवा दूसरे किसी साधनका भरोसा न करते हों, जिनमें क्रोध और लोभ लेशमात्र भी न हों, जो श्रीकृष्णसके तत्त्वज्ञ और श्रीकृष्णमन्त्रकी जानकारी रखनेवालोंमें श्रेष्ठ हों, जिन्होंने श्रीकृष्णमन्त्रका ही आश्रय लिया हो, जो सदा मन्त्रके प्रति श्रद्धा-भक्ति रखते हों, सर्वदा पवित्र रहते हों, प्रतिदिन सद्धर्मका उपदेश देते और लोगोंको सदाचारमें प्रवृत्त करते हों, ऐसे कृपालु एवं विरक्त महात्मा ही गुरु कहलाते हैं। शिष्य भी ऐसा होना चाहिये, जिसमें प्रायः उपर्युक्त गुण मौजूद हों। इसके सिवा उसे गुरुचरणोंकी

सेवाके लिये इच्छुक, गुरुका नितान्त भक्त तथा मुमुक्षु होना चाहिये। जिसमें ऐसी योग्यता हो, वही शिष्य कहलाता है। प्रेमपूर्ण हृदयसे भगवान् श्रीकृष्णकी साक्षात् सेवाका जो अवसर मिलता है, उसीको वेद-वेदाङ्गका ज्ञान रखनेवाले विद्वानोंने मोक्ष कहा है।\*

शिष्यको चाहिये कि वह गुरुके चरणोंकी शरणमें जाकर उनसे अपना वृत्तान्त निवेदन करे तथा गुरुको उचित है कि वे अत्यन्त प्रसन्न होकर बारम्बार समझाते हुए शिष्यके सन्देहोंका निराकरण करें, तत्पश्चात् उसे मन्त्रका उपदेश दें। चन्दन या मिठ्ठी लेकर शिष्यकी बार्धी और दाहिनी भुजाओंके मूल-भागमें क्रमशः शङ्ख और चक्रका चिह्न अঙ्कित करें। फिर ललाट आदिमें विधिपूर्वक ऊर्ध्वपुण्ड्र लगायें। तदनन्तर पहले बताये हुए दोनों मन्त्रोंका शिष्यके दाहिने कानमें उपदेश करें तथा क्रमशः उन मन्त्रोंका अर्थ भी उसे अच्छी तरह समझा दें। फिर यत्नपूर्वक उसका कोई नूतन नाम रखें, जिसके अन्तमें 'दास' शब्द जुड़ा हो। इसके बाद विद्वान् शिष्य प्रेमपूर्वक वैष्णवोंको भोजन कराये तथा अत्यन्त भक्तिके साथ वस्त्र और आभूषण आदिके द्वारा श्रीगुरुका पूजन करे। इतना ही नहीं, अपने शरीरको भी गुरुकी सेवामें समर्पित कर दे।

**नारद !** अब मैं तुम्हें शरणागत पुरुषोंके धर्म बताना चाहता हूँ, जिनका आश्रय लेकर कलियुगके मनुष्य भगवान्‌के धाममें पहुँच जायेंगे। ऊपर बताये अनुसार गुरुसे मन्त्रका उपदेश पाकर गुरु-भक्त शिष्य प्रतिदिन गुरुकी सेवामें संलग्न हो अपने ऊपर उनकी पूर्ण कृपा समझे। तदनन्तर सत्पुरुषोंके, उनमें भी विशेषतः शरणागतोंके धर्म सीखे और वैष्णवोंको अपना इष्टदेव

\* शान्तो विमत्सरः कृष्णो भक्तोऽनन्यप्रयोजनः। अनन्यसाधनः श्रीमान् क्रोधलोभविवर्जितः ॥

श्रीकृष्णमन्त्रविदां वरः। कृष्णमन्त्राश्रयो नित्यं मन्त्र भक्तः सदा शुचिः ॥

सद्धर्मशासको नित्यं सदाचारनियोजकः। सम्भावयी कृपापूर्णो विरागी गुरुरुच्यते ॥

एवमादिगुणः प्रायः शुश्रूषगुरुपादयोः। गुरौ नितान्तभक्तश्च मुमुक्षुः शिष्य उच्यते ॥

यत्साक्षात्स्वनं तस्य प्रेम्या भगवतो भवेत्। स मोक्षः प्रोच्यते प्राज्ञवेदवेदाङ्गवेदिभिः ॥ (८२। ६—१०)

समझकर सदा उन्हें संतुष्ट रखे । शरणागत शिष्यको कभी इहलोक और परलोककी चिन्ता नहीं करनी चाहिये; क्योंकि इहलोकके जितने भी सुख भोग हैं, वे पूर्वजन्ममें किये हुए कर्मोंके अनुसार प्राप्त होते हैं । [अतः जितना प्रारब्धमें होगा, उतना अपने-आप मिल जायगा] और जो परलोकका सुख है, उसे तो भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं ही पूर्ण करेंगे । अतः मनुष्यको इहलोक और परलोकके सुखोंके लिये किये जानेवाले प्रयत्नका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये । सब प्रकारके उपायोंका परित्याग करके अपनेको श्रीकृष्णका सेवक समझकर निरन्तर उन्हींकी आराधनामें संलग्न रहना चाहिये । जैसे पतिव्रता स्त्री चिरकालसे परदेश गये हुए अपने पतिके लिये सदा दीन बनी रहती है, प्रियतममें अनुराग रखती हुई केवल उसीसे मिलनेकी आकाङ्क्षा रखती है, निरन्तर उसीके गुणोंका चिन्तन, गायन और श्रवण करती है, उसी प्रकार शरणागत भक्तको भी सदा श्रीकृष्णके गुण तथा लीला आदिका स्मरण, कीर्तन और श्रवण करते रहना चाहिये । परन्तु यह सब किसी दूसरे फलका साधन बनाकर कदापि नहीं करना चाहिये । जैसे पतिव्रता कामिनी चिरकालके बाद परदेशसे लौटे हुए पतिको एकान्तमें पाकर उसे छांतीसे लगाती तथा नेत्रोंसे उसकी रूप-सुधाका पान करती है, साथ ही वह अधिक प्रसन्नताके साथ उसकी सेवामें लग जाती है, उसी प्रकार अर्चाविग्रह (स्वयं प्रकट हुई मूर्ति) के रूपमें अवतीर्ण हुए भगवान्के साथ रहकर भक्तको निरन्तर उनकी परिचर्यामें लगे रहना चाहिये । वह सदा अनन्य भावसे भगवान्‌की शरणमें रहे । भगवान्‌की आराधनाके सिवा दूसरे किसी साधनका न तो आश्रय ले और न दूसरे साधनकी इच्छा करे । भगवान्‌के सिवा अन्य किसी वस्तुसे प्रयोजन न रखे । कभी किसीकी निन्दा न करे । न तो दूसरेका जूठा खाय और न दूसरेका प्रसाद ही ग्रहण करे । भगवान् और वैष्णवोंकी निन्दा कभी न सुने । यदि कहीं निन्दा होती हो

तो कान बंद करके वहाँसे अन्यत्र चला जाय ।

विप्रवर नारद ! मेरा तो ऐसा विचार है कि शरणागत भक्तको मृत्युपर्यन्त चातकी वृत्तिका आश्रय लेकर सुगल मन्त्रके अर्थका विचार करते हुए रहना चाहिये । जैसे चातक सरोवर, समुद्र और नदी आदिको छोड़कर केवल मेघसे पानीकी याचना करता है अथवा प्यासा ही मर जाता है, उसी प्रकार प्रयत्नपूर्वक भगवत्प्राप्तिके साधनोंपर विचार करना चाहिये । अपने इष्टदेव श्रीराधा और श्रीकृष्णसे इस बातकी याचना करनी चाहिये कि वे उसे आश्रय प्रदान करें । सदा अपने इष्टदेवके, उनके भक्तोंके और विशेषतः गुरुके अनुकूल रहना चाहिये । प्रतिकूलताका सर्वथा परित्याग कर देना चाहिये । मैं एक बार शरणमें जाकर अनुभवपूर्वक कहता हूँ—श्रीराधा और श्रीकृष्ण दोनोंके गुण परम कल्याणमय हैं; मेरी बातपर विचार करके शरणागत पुरुष उनपर विश्वास करे कि ये दोनों इष्टदेव निश्चय ही मेरा उद्धार करेंगे । फिर विनीत भावसे प्रार्थना करते हुए कहे—‘नाथ ! आप ही दोनों पुत्र, मित्र और गृह आदिकी ममतासे पूर्ण इस संसारसागरसे मेरी रक्षा करनेवाले हैं । आप ही शरणागतोंका भय दूर करते हैं । मैं जैसा भी हूँ, इस लोक और परलोकमें मेरा जो कुछ भी है, वह सब आज मैंने आप दोनोंके चरणोंमें समर्पित कर दिया । मैं अपराधोंका घर हूँ । मैंने सब साधन छोड़ रखे हैं; अब मुझे कोई सहारा देनेवाला नहीं है, इसलिये नाथ ! अब आप ही दोनों मेरे आश्रय हैं । राधिकाकान्त ! मैं मन, वाणी और कर्मसे आपका हूँ । कृष्णप्रिया राधे ! मैं आपका ही हूँ, आप ही दोनों मेरी गति हैं । मैं आपकी शरणमें पड़ा हूँ । आप दोनों करुणाके भंडार—दयाके सागर हैं; मुझपर कृपा करें । मैं दुष्ट हूँ, अपराधी हूँ; तो भी कृपा करके मुझे अपना दास्यभाव प्रदान करें ।’ मुनिश्रेष्ठ ! जो भक्त शीघ्र ही दास्यभावकी प्राप्ति चाहता हो, उसे भगवान्‌के चरण-कमलोंका चिन्तन करते हुए प्रतिदिन उपर्युक्त प्रार्थना करनी चाहिये ।\*

\* संसारसागरान्नाथौ

पुत्रमित्रगृहाकुलात् । गोपारै  
योऽहं ममास्ति यत्किञ्चिदिह लोके परत्र च । तत्सर्व

मे युवामेव प्रपन्नभयभञ्जनौ ॥

भवतोरद्य चरणेषु समर्पितम् ॥

यहाँतक मैंने शरणागतोंके बाह्य धर्मोंका संक्षेपसे वर्णन किया है। अब उनके अत्यन्त उत्कृष्ट आन्तरिक धर्मका परिचय दिया जाता है। अन्तरङ्ग भक्तको यत्पूर्वक कृष्णप्रिया श्रीराधाके सखीभावका आश्रय लेकर निरन्तर उन दोनोंकी सेवा करनी चाहिये तथा आलःस्यको अपने पास फटकने नहीं देना चाहिये। मन्त्र और उसके अङ्गोंका पहले वर्णन किया जा चुका है। उसके अधिकारी, अधिकारियोंके धर्म तथा उन्हें मिलनेवाले फलका भी प्रतिपादन किया गया है। नारद ! तुम भी इस साधनाका अनुष्ठान करो; तुम्हें श्रीराधा और श्रीकृष्णके दास्य भावकी प्राप्ति अवश्य होगी—इसमें कोई संदेह नहीं है। जो एक बार भी शरणमें जा 'मैं आपका हूँ' ऐसा कहकर याचना करता है, उसे भगवान् अवश्य ही अपना दासत्व प्रदान करते हैं। मेरे मनमें इसके लिये अन्यथा विचार करनेकी गुंजाइश नहीं है।\* मुनिवर ! यह मैंने तुमसे शरणागत भक्तके आन्तरिक धर्मका वर्णन किया है। यह गुह्यसे भी बढ़कर अत्यन्त गुह्यतम विषय है, इसलिये इसे प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये—सर्वत्र प्रकाशित नहीं करना चाहिये।

इस प्रसङ्गमें मैं तुम्हें अत्यन्त अद्भुत रहस्यकी बात बतलाता हूँ, जिसे मैंने साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णके मुखसे सुना था। पूर्वकालकी बात है, मैं कैलाश पर्वतके शिखरपर एक सघन वनमें रहता था और यहाँ भगवान् श्रीनारायणका ध्यान करते हुए उनके श्रेष्ठ मन्त्रका जप करता था। इससे संतुष्ट होकर भगवान् मेरे सामने प्रकट हुए और बोले—'वर माँगो।' उनके यों कहनेपर मैंने आँखें खोलकर देखा, भगवान् अपनी प्रिया श्रीलक्ष्मीजीके साथ गरुड़पर विराजमान थे। मैंने बारम्बार

प्रणाम करके लक्ष्मीपतिसे कहा—'कृपासिन्धो ! आपका



जो रूप परम आनन्ददायक, सम्पूर्ण आनन्दोंका आश्रय, नित्य, मनोहर मूर्तिधारी, सबसे श्रेष्ठ निर्गुण, निष्क्रिय और शान्त है, जिसे विद्वान् पुरुष ब्रह्म कहते हैं, उसको मैं अपने नेत्रोंसे देखना चाहता हूँ।' यह सुनकर भगवान् कमलापतिने मुझ शरणागत भक्तसे कहा—'महादेव ! तुम्हारे मनमें मेरे जिस रूपको देखनेकी इच्छा है, उसका अभी दर्शन करोगे। यमुनाके पश्चिम तटपर मेरा लीला-धाम वृन्दावन है वहाँ चले जाओ।' यों कहकर वे जगदीश्वर अपनी प्रियाके साथ अन्तर्धान हो गये। तब मैं भी यमुनाके सुन्दर तटपर चला आया। वहाँ मुझे सम्पूर्ण देवेश्वरोंके भी ईश्वर श्रीकृष्णका दर्शन हुआ, जो किशोरावस्थासे युक्त, कमनीय गोपवेष धारण किये,

अहमस्यपराधानामालयस्यत्तसाधनः

तवास्मि राधिकानाथ कर्मणा मनसा गिरा। कृष्णाकान्ते तवैवास्मि युवामेव गतिर्मम ॥

शरणं वां प्रपन्नोऽस्मि करुणानिकराकरौ प्रसादं कुरुतं दास्यं मयि दुष्टपराधिनि ॥

इत्येवं जपता नित्यं स्थातव्यं पदपङ्कजम्। अचिरादेव तद्वायमिच्छता मुनिसत्तम ॥ (८२। ४२—४७)

अपनी प्रियाके कंधेपर बायाँ हाथ रखकर खड़े थे। उनकी वह झाँकी बड़ी मनोहर जान पड़ती थी। चारों ओरसे गोपियोंका संमुदाय था और बीचमें भगवान् खड़े



होकर श्रीराधिकाजीको हँसाते हुए स्वयं ही हँस रहे थे। उनका श्रीविग्रह सजल मेघके समान इयामवर्ण तथा कल्याणमय गुणोंका धाम था। श्रीकृष्ण मुझे देखकर हँसे। उनकी वाणीमें अमृत भरा था। वे मुझसे बोले—‘रुद्र ! तुम्हारा मनोरथ जानकर आज मैंने तुम्हें दर्शन दिया। इस समय मेरे जिस अलौकिक रूपको तुम देख रहे हो, यह निर्मल प्रेमका पुज्ज है। इसके रूपमें सत्, चित् और आनन्द ही मूर्तिमान् हुए हैं। उपनिषदोंके समूह मेरे इसी स्वरूपको निराकार, निर्गुण, व्यापक, निष्क्रिय और परात्पर बतलाते हैं। मेरे दिव्य गुणोंका अन्त नहीं है तथा उन गुणोंको कोई सिद्ध नहीं कर सकता; इसीलिये वेदान्त शास्त्र मुझ ईश्वरको निर्गुण बतलाता है। महेश्वर ! मेरा यह रूप चर्मचक्षुओंसे नहीं देखा जा सकता; अतः सम्पूर्ण वेद मुझे अरूप—निराकार कहते हैं। मैं अपने चैतन्य-

अंशसे सर्वत्र व्यापक हूँ। इससे विद्वान् लोग मुझे ‘ब्रह्म’के नामसे पुकारते हैं। मैं इस प्रपञ्चका कर्ता नहीं हूँ। इसलिये शास्त्र मुझे निष्क्रिय बताते हैं। शिव ! मेरे अंश ही मायामय गुणोंके द्वारा सृष्टि आदि कार्य करते हैं। मैं स्वयं कुछ भी नहीं करता। महादेव ! मैं तो इन गोपियोंके प्रेममें विह्वल होकर न तो दूसरी कोई क्रिया जानता हूँ और न मुझे अपने-आपका ही भान रहता है। ये मेरी प्रिया श्रीराधिका हैं; इन्हें परा देवता समझो। मैं इनके प्रेमके वशीभूत होकर सदा इन्हींके साथ विचरण करता हूँ। इनके पीछे और अगल-बंगलमें जो लाखों सखियाँ हैं, ये सब-की-सब नित्य हैं। जैसे मेरा विग्रह नित्य है, वैसे ही इनका भी है। मेरे सखा, पिता, गोप, गौएँ तथा वृन्दावन—ये सब नित्य हैं। इन सबका स्वरूप चिदानन्दसमय ही है। मेरे इस वृन्दावनका नाम आनन्दकन्द समझो। इसमें प्रवेश करने मात्रसे मनुष्यको पुनः संसारमें जन्म नहीं लेना पड़ता। मैं वृन्दावन छोड़कर कहीं नहीं जाता। अपनी इस प्रियाके साथ सदा यहीं निवास करता हूँ। रुद्र ! तुम्हारे मनमें जिस-जिस बातको जाननेकी इच्छा थी, वह सब मैंने बता दिया। बोलो, इस समय मुझसे और क्या सुनना चाहते हो ?’

मुनिश्रेष्ठ नारद ! तब मैंने भगवान्से कहा—‘प्रभो ! आपके इस स्वरूपकी प्राप्ति कैसे हो सकती है ? इसका उपाय मुझे बताइये।’ भगवान् ने कहा—‘रुद्र ! तुमने बहुत अच्छी बात पूछी है; किन्तु यह विषय अत्यन्त रहस्यका है, इसलिये इसे यलपूर्वक गुप्त रखना चाहिये। देवेश्वर ! जो दूसरे उपायोंका भरोसा छोड़कर एक बार हम दोनोंकी शरणमें आ जाता है और गोपीभावसे मेरी उपासना करता है, वही मुझे पा सकता है। जो एक बार हम दोनोंकी शरणमें आ जाता है अथवा अकेली मेरी इस प्रियाकी ही अनन्यभावसे उपासना करता है, वह मुझे अवश्य प्राप्त होता है। जो एक बार भी शरणमें आकर ‘मै आपका हूँ’ ऐसा कह देता है, वह साधनके बिना भी मुझे प्राप्त कर लेता है—इसमें संशय नहीं है।’\* इसलिये

\* सकृदेव प्रपत्नो यस्तवास्मीति वदेदपि । साधनेन विनाष्टेव मामाप्रोति न संशयः ॥ (८२ । ८५)

सर्वथा प्रयत्न करके मेरी प्रियाकी शरण प्रहण करनी चाहिये। रुद्र ! मेरी प्रियाका आश्रय लेकर तुम भी मुझे अपने वशमें कर सकते हो। यह बड़े रहस्यकी बात है, जिसे मैंने तुम्हें बता दिया है। तुम्हें यत्पूर्वक इसे छिपाये रखना चाहिये। अब तुम भी मेरी प्रियतमा श्रीराधाकी शरण लो और मेरे युगल-मन्त्रका जप करते हुए सदा मेरे इस धाममें निवास करो।'

यह कहकर दयानिधान श्रीकृष्ण मेरे दाहिने कानमें पूर्वोक्त युगल-मन्त्रका उपदेश देकर मेरे देखते-देखते वहाँ अपने गणोंसहित अन्तर्धान हो गये। तबसे मैं भी निरन्तर यहाँ रहता हूँ। नारद ! इस प्रकार मैंने तुम्हारे पूछे हुए विषयका साङ्घोषण वर्णन कर दिया।

**सूतजी** कहते हैं—शौनकजी ! पूर्वकालमें भगवान् शङ्करने साक्षात् श्रीकृष्णके मुखसे इस रहस्यका ज्ञान प्राप्त किया। उन्होंने नारदजीसे कहा और नारदजीने मुझे इसका उपदेश दिया था। [वही आज मैंने यहाँ आपको सुनाया है।] आपको भी उचित है कि इस परम

अद्भुत रहस्यको सदा गोपनीय रखें—इसे हर एकके सामने प्रकट न करें।

शौनकने कहा—गुरुदेव ! आपकी कृपासे आज मैं कृतकृत्य हो गया; क्योंकि आपने मेरे सामने यह रहस्योंका भी रहस्य प्रकाशित किया है।

सूतजी कहते हैं—ब्रह्मन् ! आप भी अहर्निश्च युगल-मन्त्रका जप करते हुए इन धर्मोंका पालन कीजिये। थोड़े ही दिनोंमें आपको भगवान्‌के दास्यभावकी प्राप्ति हो जायगी। मैं भी यमुनाके तटपर भगवान् गोपीनाथके नित्यधाम वृन्दावनमें जा रहा हूँ। महादेवजीके मुखसे निकला हुआ यह उत्तम चरित्र परम पवित्र है, इसमें महान् अनुभव भरा हुआ है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इसका श्रवण करते हैं, वे अवश्य ही भगवान्‌के परमपदको प्राप्त होते हैं। यह स्वर्ग तथा मोक्षकी प्राप्तिका भी कारण और समस्त पापोंका नाशक है। जो लोग सदा भगवान् विष्णुकी सेवामें तत्पर रहकर इसका भक्तिपूर्वक पाठ करते हैं, उन्हें विष्णुलोकसे कभी किसी तरह भी पुनः इस संसारमें नहीं आना पड़ता।

## अम्बरीष-नारद-संवाद तथा नारदजीके द्वारा निर्गुण एवं सगुण ध्यानका वर्णन

ऋषियोंने कहा—महाभाग ! हमलोगोंने आपके मुखसे भगवान् श्रीकृष्णका अत्यन्त अद्भुत चरित्र सुना है और इससे हमें पूरा संतोष हुआ है। अहो ! भगवान् श्रीकृष्णका माहात्म्य भक्तोंको सद्गति प्रदान करनेवाला है, उससे किसको तृप्ति हो सकती है। अतः हम पुनः श्रीकृष्णका चरित्र सुनना चाहते हैं।

सूतजी बोले—द्विजवरो ! आपने बहुत उत्तम प्रश्न किया, यह जगत्को तारनेवाला है। आपलोग स्वयं तो कृतार्थ ही हैं; क्योंकि श्रीकृष्णके भक्तोंका मनोरथ सदा पूर्ण रहता है। श्रीकृष्णका पावन चरित्र साधु पुरुषोंको अत्यन्त हर्ष प्रदान करनेवाला है। अब मैं इस विषयमें एक अत्यन्त अद्भुत उपाख्यान सुनाता हूँ। एक समयकी बात है, भगवान्‌के प्रिय भक्त देवर्षि नारदजी सब लोकोंमें घूमते हुए मथुरामें गये और वहाँ राजा अम्बरीषसे मिले, जिनका चित्त श्रीकृष्णकी आराधनामें



लगा हुआ था। मुनिश्रेष्ठ नारदके पथारनेपर साधु राजा अम्बरीषने उनका सत्कार किया और प्रसन्नचित्त होकर श्रद्धाके साथ आपेलोगोंकी ही भाँति प्रश्न किया—‘मुने ! वेदोंके वक्ता विद्वान् पुरुष जिन्हें परम ब्रह्म कहते हैं, वे स्वयं भगवान् कमलनयन नारायण ही हैं। जो सबसे परे हैं, जिनकी कोई मूर्ति न होनेपर भी जो मूर्तिमान् स्वरूप धारण करते हैं, जो सबके ईश्वर, व्यक्त और अव्यक्तस्वरूप हैं, सनातन हैं, समस्त भूत जिनके स्वरूप हैं, जिनका चित्तद्वारा चित्तन नहीं किया जा सकता, ऐसे भगवान् श्रीहरिका ध्यान किस प्रकार हो सकता है ? जिनमें यह सारा विश्व ओतप्रोत है, जो अव्यक्त, एक, पर (उत्कृष्ट) और परमात्माके नामसे प्रसिद्ध हैं, जिनसे इस जगत्का जन्म, पालन और संहार होता है, जिन्होंने ब्रह्माजीको उत्पन्न करके उन्हें अपने ही भीतर स्थित वेदोंका ज्ञान दिया, जो समस्त पुरुषार्थोंको देनेवाले हैं, योगीजनोंको भी जिनके तत्त्वका बड़ी कठिनाईसे बोध होता है, उनकी आराधना कैसे की जा सकती है ? कृपया यह बात बताइये। जिसने श्रीगोविन्दकी आराधना नहीं की, वह निर्भय पदको नहीं प्राप्त कर सकता। इतना ही नहीं, उसे तप, यज्ञ और दानका भी उत्तम फल नहीं मिलता। जिसने श्रीगोविन्दके चरणारविन्दोंका रसास्वादन नहीं किया, उसे मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति कैसे हो सकती है ? भगवान्की आराधना समस्त पापोंको दूर करनेवाली है, उसे छोड़कर मैं मनुष्योंके लिये दूसरा कोई प्रायश्चित्त नहीं देखता।\* जिनके भ्रूभङ्ग मात्रसे समस्त सिद्धियोंकी प्राप्ति सुनी जाती है, उन हेशहारी केशवकी आराधना कैसे होती है ? ख्रियाँ भी किस प्रकारसे उनकी उपासना कर सकती हैं ? ये सब बातें संसारकी भलाईके लिये आप मुझे बताइये। भगवान् भक्तिके प्रेमी हैं। सब लोग उनकी आराधना

किस प्रकार कर सकते हैं ? नारदजी ! आप वैष्णव हैं, भगवान्के प्रिय भक्त हैं, परमार्थतत्त्वके ज्ञाता तथा ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं; इसलिये मैं आपसे ही यह बात पूछता हूँ। भगवान् श्रीकृष्णके विषयमें किया हुआ प्रश्न वक्ता, श्रोता और प्रश्नकर्ता—इन तीनों पुरुषोंको पवित्र करता है; ठीक उसी तरह, जैसे उनके चरणोंका जल श्रीगङ्गाजीके रूपमें प्रवाहित होकर तीनों लोकोंको पावन बनाता है। देहधारियोंका यह देह क्षणभङ्गुर है, इसमें मनुष्य-शरीरका मिलना बड़ा दुर्लभ है, उसमें भी भगवान्के प्रेमी भक्तोंका दर्शन तो मैं और भी दुर्लभ समझता हूँ। इस संसारमें यदि क्षणभरके लिये भी सत्सङ्ग मिल जाय तो वह मनुष्योंके लिये निधिका काम देता है; क्योंकि उससे चारों पुरुषार्थ प्राप्त हो जाते हैं। भगवन् ! आपकी यात्रा सम्पूर्ण प्राणियोंका मङ्गल करनेके लिये होती है। जैसे माता-पिताका प्रत्येक विधान बालकोंके हितके लिये ही होता है, उसी प्रकार भगवान्के पथपर चलनेवाले संत-महात्माओंकी हर एक क्रिया जगत्के जीवोंका कल्याण करनेके लिये ही होती है। देवताओंका चरित्र प्राणियोंके लिये कभी दुःखका कारण होता है और कभी सुखका; किन्तु आप-जैसे भगवत्परायण साधुपुरुषोंका प्रत्येक कार्य जीवोंके सुखका ही साधक होता है। जो देवताओंकी जैसी सेवा करते हैं, देवता भी उन्हें उसी प्रकार सुख पहुँचानेकी चेष्टा करते हैं। जैसे छाया सदा शरीरके साथ ही रहती है, उसी प्रकार देवता भी कर्मके साथ रहते हैं—जैसा कर्म होता है, वैसी ही सहायता उनसे प्राप्त होती है, किन्तु साधु पुरुष स्वभावसे ही दीनोंपर दया करनेवाले होते हैं।† इसलिये भगवन् ! मुझे वैष्णवधर्मोंका उपदेश कीजिये, जिससे वेदोंके स्वाध्यायका फल प्राप्त होता है।

\* अनाराधितगोविन्दो न विन्दति यतोऽभयम् । न तपोयज्जदानानां लभते फलमुत्तमम् ॥  
अनास्वादितगोविन्दपादाम्बुजरसो नरः । मनोरथकथानीतं कथमाकलयेत्फलम् ॥  
हरेराधनं हित्वा दुरितौघनिवारणम् । नान्यत्पश्यामि जन्मनां प्रायश्चित्तं परं मुने ॥ (८४। १५—१७)  
† श्रोतारमथ वक्तारं प्रष्टारं पुरुषं हरे । प्रश्नः पुनाति कृष्णस्य तद्घृष्णसलिलं यथा ॥  
दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभङ्गः । तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रियदर्शनम् ॥

नारदजीने कहा—राजन् ! तुमने बहुत उत्तम प्रश्न किया है। तुम भगवान् श्रीविष्णुके भक्त हो और एकमात्र लक्ष्मीपतिका सेवन ही परमधर्म है—इस बातको जानते हो। जिन विष्णुकी आराधना करनेपर समस्त विश्वकी आराधना हो जाती है तथा जिन सर्वदेवमय श्रीहरिके संतुष्ट होनेपर सारा जगत् संतुष्ट हो जाता है, जिनके स्मरण मात्रसे महापातकोंकी सेना तत्काल थर्हा उठती है, वे भगवान् श्रीनारायण ही सेवनके योग्य हैं। राजन् ! सब ओर मृत्युसे घिरा हुआ कौन ऐसा मनुष्य होगा, जो अपनी इन्द्रियोंके सकुशल रहते हुए श्रीमुकुन्दके चरणारविन्दोंका सेवन न करे। भगवान् तो ऋषियों और देवताओंके भी आराध्यदेव है।\* भगवान्के नाम और लीलाओंका श्रवण, उनका निरन्तर पाठ, श्रीहरिके स्वरूपका ध्यान, उनका आदर तथा उनकी भक्तिका अनुमोदन—ये सब मनुष्यको तत्काल पवित्र कर देते हैं। वीर ! भगवान् उत्तम धर्मस्वरूप है, वे विश्व-द्रोहियोंको भी पावन बना देते हैं। कारण-कार्य आदिके भी जो कारण हैं, भगवान् उनके भी कारण हैं; किन्तु उनका कोई कारण नहीं है। वे योगी हैं। जगत्के जीव उन्होंके स्वरूप हैं। सम्पूर्ण जगत् ही उनका रूप है। श्रीहरि अणु, बृहत्, कृशा, स्थूल, निर्गुण, गुणवान्, महान्, अजन्मा तथा जन्म-मृत्युसे परे हैं; उनका सदा ही ध्यान करना चाहिये। सत्पुरुषोंके सङ्गसे कीर्तन करने योग्य भगवान् श्रीकृष्णकी निर्मल कथाएँ सुननेको मिलती हैं, जो आत्मा, मन तथा कानोंको अत्यन्त सरस एवं मधुर जान पड़ती हैं। भगवान् भावसे—हृदयके प्रगाढ़ प्रेमसे प्राप्त होते हैं, इस बातको तुम स्वयं भी

जानते हो; तथापि तुम्हारे गौरवका खयाल करके संसारके हितके लिये मैं भी कुछ निवेदन करूँगा। जिसे परब्रह्म कहते हैं, जो पुरुषसे परे और सर्वोत्कृष्ट है तथा जिसकी मायासे ही इस सम्पूर्ण जगत्की सत्ता प्रतीत होती है, वह तत्व भगवान् अच्युत ही है। वे भक्तिपूर्वक पूजित होनेपर सभी मनोवाच्छित वस्तुएँ प्रदान करते हैं। राजन् ! जो मनुष्य मन, वाणी और क्रियासे भगवान्की आराधनामें लगे हैं, उनके व्रत-नियम बतलाया हूँ, इससे तुम्हें प्रसन्नता होगी। अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना) तथा निष्कपटभावसे रहना—ये भगवान्की प्रसन्नताके लिये मानसिक व्रत कहे गये हैं। नरेश्वर ! दिनमें एक बार भोजन करना, रात्रिमें उपवास करना और बिना माँगी जो अपने-आप प्राप्त हो जाय उसी अन्नका उपयोग करना—यह पुरुषोंके लिये कार्यिक व्रत बताया गया है। वेदोंका स्वाध्याय, श्रीविष्णुके नाम एवं लीलाओंका कीर्तन तथा सत्यभाषण करना एवं चुगलीन करना—यह वाणीसे सम्पन्न होनेवाला व्रत कहा गया है। चक्रधारी भगवान् विष्णुके नामोंका सदा और सर्वत्र कीर्तन करना चाहिये। वे नित्य शुद्धि करनेवाले हैं; अतः उनके कीर्तनमें कभी अपवित्रता आती ही नहीं। वर्ण और आश्रम-सम्बन्धी आचारोंका विधिवत् पालन करनेवाले पुरुषके द्वारा परम पुरुष श्रीविष्णुकी सम्यक् आराधना होती है। यह मार्ग भगवान्को संतुष्ट करनेवाला है। स्त्रियाँ मन, वाणी और शरीरके संयमरूप व्रतों तथा हितकारी आचरणोंके द्वारा अपने पतिरूपी दयानिधान वासुदेवकी उपासना करती हैं। शूद्रोंके लिये द्विजाति तथा स्त्रियोंके लिये पति ही श्रीकृष्णचन्द्रके

संसारेऽस्मिन् क्षणाद्दोषपि सत्सङ्गः शेषधिनृणाम् । यस्मादवाप्ते सर्वं पुरुषार्थचतुष्यम् ॥  
भगवन् भवतो यात्रा स्वस्तये सर्वदेहिनाम् । बालानां च यथा पित्रोरुत्तमश्लोकवर्त्सनाम् ॥  
भूतानां देवचरितं दुःखाय च सुखाय च । सुखायैव हि साधूनां त्वादृशामच्युतात्मनाम् ॥  
भेजन्ति ये यथा देवान् देवा अपि तथैव तान् । छायेव कर्मसचिवाः साधवो दीनवत्सलः ॥ (८४ । २२—२७)

\* साधु पृष्ठे महीपाल विष्णुभक्तिमता त्वया । जानता परमं धर्ममेकं माधवसेवनम् ॥  
यस्मिन्नाराधिते विष्णौ विश्वमाराधितं भवेत् । तुष्टं च सकलं तुष्टे सर्वदेवमये हरै ॥  
यस्य स्मरणमात्रेण महापातकसंहतिः । तत्क्षणात् त्रासमायाति स सेव्ये हरिरै वहि ॥  
को नु राजत्रिन्द्रियवान् मुकुन्दचरणाम्बुजम् । न भजेत् सर्वतोमृत्युरुपारयमृषिदैवतैः ॥ (८४ । २९—३२)

स्वरूप है; अतः उनको शास्त्रोक्त मार्गसे इन्हींका पूजन करना चाहिये। \* ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन तीन वर्णोंके लोग ही वेदोक्त मार्गसे भगवान्की आराधना करें। स्त्री और शूद्र आदि केवल नाम-जप या नाम-कीर्तनके द्वारा ही भगवदाराधनके अधिकारी हैं। भगवान् लक्ष्मीपति केवल पूजन, यजन तथा ब्रतोंसे ही नहीं संतुष्ट होते। वे भक्ति चाहते हैं; क्योंकि उन्हें 'भक्तिप्रिय' कहा गया है। पतिव्रता स्त्रियोंका तो पति ही देवता है। उन्हें पतिमें ही श्रीविष्णुके समान भक्ति रखनी चाहिये तथा मन, वाणी, शरीर और क्रियाओंद्वारा पतिकी ही पूजा करनी चाहिये। अपने पतिका प्रिय करनेमें लगी हुई स्त्रियोंके लिये पति-सेवा ही विष्णुकी उत्तम आराधना है। यह सनातन श्रुतिका आदेश है। विद्वान् पुरुष अग्निमें हविष्यके द्वारा, जलमें पुष्पोंके द्वारा, हृदयमें ध्यानके द्वारा तथा सूर्यमण्डलमें जपके द्वारा प्रतिदिन श्रीहरिकी पूजा करते हैं।†

अहिंसा पहला, इन्द्रिय-संयम दूसरा, जीवोंपर दया करना तीसरा, क्षमा चौथा, शम पाँचवाँ, दम छठा, ध्यान सातवाँ और सत्य आठवाँ पुष्प है। इन पुष्पोंके द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण संतुष्ट होते हैं। नृपत्रेष्ठ ! अन्य पुष्प तो पूजाके बाह्य अङ्ग हैं, भगवान् उपर्युक्त पुष्पोंसे ही प्रसन्न होते हैं; क्योंकि वे भक्तिके प्रेमी हैं। जल वरुण देवताका [प्रिय] पुष्प है, धी, दूध और दही—चन्द्रमाके पुष्प हैं, अन्न आदि प्रजापतिके, धूप-दीप अग्निका और फल-पुष्पादि वनस्पतिका पुष्प है। कुश-मूलादि पृथ्वीका, गन्ध और चन्दन वायुका तथा श्रद्धा विष्णुका पुष्प है। बाजा विष्णुपद (विष्णु-प्रासिका साधन) माना गया है। इन आठ पुष्पोंसे पूजित होनेपर भगवान् विष्णु तत्काल प्रसन्न होते हैं। सूर्य, अग्नि, ब्राह्मण, गौ, वैष्णव, हृदयाकाश, वायु, जल, पृथ्वी, आत्मा और सम्पूर्ण

प्राणी—ये भगवान्की पूजाके स्थान हैं। सूर्यमें त्रयीविद्या (ऋग्, यजु, साम)के द्वारा और अग्निमें हविष्यकी आहुतिके द्वारा भगवान्की पूजा करनी चाहिये। श्रेष्ठ ब्राह्मणमें आवभगतके द्वारा, गौओंमें घास और जल आदिके द्वारा, वैष्णवमें बन्धुजनोचित आदरके द्वारा तथा हृदयाकाशमें ध्याननिष्ठाके द्वारा श्रीहरिकी आराधना करनी उचित है। वायुमें मुख्य प्राण-बुद्धिके द्वारा, जलमें जलसहित पुष्पादि द्रव्योंके द्वारा, पृथ्वी अर्थात् वेदी या मृन्मयी मूर्तिमें मन्त्रपाठपूर्वक हार्दिक श्रद्धाके साथ समस्त भोग-समर्पणके द्वारा, आत्मामें अभेद-बुद्धिसे क्षेत्रज्ञके चिन्तनद्वारा तथा सम्पूर्ण भूतोंमें भगवान्को व्यापक मानकर उनके प्रति समतापूर्ण भावके द्वारा श्रीहरिका पूजन करना चाहिये। इन सभी स्थानोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मसे सुशोभित भगवान्के चतुर्भुज एवं शान्त रूपका ध्यान करते हुए एकाग्रचित्त होकर आराधन करना उचित है। ब्राह्मणोंके पूजनसे भगवान्की भी पूजा हो जाती है। तथा ब्राह्मणोंके फटकारे जानेपर भगवान् भी तिरस्कृत होते हैं। वेद और धर्मशास्त्र जिनके आधारपर टिके हुए हैं, वे ब्राह्मण भगवान् विष्णुके ही स्वरूप हैं; उनका नामोच्चारण करनेसे मनुष्य पवित्र हो जाते हैं। राजन् ! संसारमें धर्मसे ही सब प्रकारके शुभ फलोंकी प्राप्ति होती है और धर्मका ज्ञान वेद तथा धर्मशास्त्रसे होता है। उन दोनोंके भी आधार इस पृथ्वीपर ब्राह्मण ही हैं; अतः उनकी पूजा करनेसे जगदीश्वर ही पूजित होते हैं। देवाधिदेव विष्णु यज्ञ और दानोंसे, उग्र तपस्यासे, योगके अभ्याससे तथा सम्पूर्ण पूजनसे भी उतने प्रसन्न नहीं होते, जितना ब्राह्मणोंको संतुष्ट करनेसे होते हैं। वेदोंके जाननेवाले ब्रह्माजी भी ब्राह्मणोंके भक्त हैं। ब्राह्मण देवता है, इस बातके वे ही प्रवर्तक हैं। वे ब्राह्मणोंको देवता मानते हैं; अतः

\* पतिरूपो हिताचारैर्मनोवाक्यायसंयमैः। व्रतैराराध्यते स्त्रीभिर्वासुदेवो दयानिधिः ॥

स्वागमोर्तेन मार्गेण स्त्रीशूद्रैरपि पूजनम्। कर्तव्यं कृष्णचन्द्रस्य द्विजातिवरस्त्वपिणः ॥ (८४।४७-४८)

† स्त्रीणां पतिव्रतानां तु पतिरेख हि दैवतम्। स तु पूज्यो विष्णुभक्त्या मनोवाक्यायकर्मणिः ॥

स्त्रीणामथाधिकतया विष्णोराराधनादिकम्। पतिप्रियरस्तानां च श्रुतिरेषा सनातनी ॥

हविषाग्रौ जले पुष्पैष्णनिन् हृदये हरिम्। यजन्ति सूर्यो नित्यं जपेन रविमण्डले ॥ (८४।५१-५२, ५५)

ब्राह्मणोंके संतुष्ट होनेपर ही उन्हें भी संतोष होता है।

मातृकुल और पितृकुल—दोनों कुलोंके पूर्वज चिरकालसे नरकमें ढूबे हों तो भी जब उनका वंशधर पुत्र श्रीहरिकी पूजा आरम्भ करता है, उसी समय वे खर्मों चले जाते हैं। जिनका चित्त विश्वरूप वासुदेवमें आसक्त नहीं हुआ, उनके जीवनसे तथा पशुओंकी भाँति आहार-विहार आदि चेष्टाओंसे क्या लाभ !\* राजन् ! अब मैं विष्णुका ध्यान बतलाता हूँ, जो अबतक किसीने देखा न होगा, वह नित्य, निर्मल एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला ध्यान तुम सुनो। जैसे वायुहीन स्थानमें रखा हुआ दीपक स्थिरभावसे अग्रिमय स्वरूप धारण करके प्रज्वलित होता रहता है और घरके समूचे अन्धकारका नाश करता है, उसी प्रकार ध्यानस्थ आत्मा सब प्रकारके दोषोंसे रहित, निरामय, निष्काम, निश्चल तथा वैर और मैत्रीसे शून्य हो जाता है। श्रीकृष्णका ध्यान करनेवाला पुरुष शोक, दुःख, भय, द्वेष, लोभ, मोह तथा भ्रम आदिसे और इन्द्रियोंके विषयोंसे भी मुक्त हो जाता है। जैसे दीपक जलते रहनेसे तेलको सोख लेता है, उसी प्रकार ध्यान करनेसे कर्मका भी क्षय हो जाता है।

मानद ! भगवान् शङ्कर आदिने ध्यान दो प्रकारका बतलाया है—निर्गुण और सगुण। उनमेंसे प्रथम अर्थात् निर्गुण ध्यानका वर्णन सुनो। जो लोग योग-शास्त्रोक्त यम-नियमादि साधनोंके द्वारा परमात्म-साक्षात्कारका प्रयत्न कर रहे हैं, वे ही सदा ध्यानपरायण होकर केवल ज्ञानदृष्टिसे परमात्माका दर्शन करते हैं। परमात्मा हाथ और पैरसे रहित है, तो भी वह सब कुछ प्रहण करता और सर्वत्र जाता है। मुखके बिना ही भोजन करता और नाकके बिना ही सूँघता है। उसके कान नहीं हैं, तथापि वह सब कुछ सुनता है। वह सबका साक्षी और इस जगत्का स्वामी है। रूपहीन होकर भी रूपसे सम्बद्ध हो पाँचों इन्द्रियोंके वशीभूत हुआ-सा प्रतीत होता है। वह समस्त लोकोंका प्राण है, सम्पूर्ण चराचर

जगत्के प्राणी उसकी पूजा करते हैं। बिना जीभके ही वह सब कुछ वेद-शास्त्रोंके अनुकूल बोलता है। उसके त्वचा नहीं है, तथापि वह शीत-उष्ण आदि सब प्रकारके स्पर्शका अनुभव करता है। सत्ता और आनन्द उसके स्वरूप हैं। वह जितेन्द्रिय, एकरूप, आश्रयविहीन, निर्गुण, ममतारहित, व्यापक, सगुण, निर्मल, ओजस्वी, सबको वशमें करनेवाला, सब कुछ देनेवाला और सर्वज्ञोंमें श्रेष्ठ है। वह सर्वत्र व्यापक एवं सर्वमय है। इस प्रकार जो अनन्य-बुद्धिसे उस सर्वमय ब्रह्मका ध्यान करता है, वह निराकार एवं अमृततुल्य परम पदको प्राप्त होता है।

महामते ! अब मैं द्वितीय अर्थात् सगुण ध्यानका वर्णन करता हूँ इसे सुनो। इस ध्यानका विषय भगवान्का मूर्ति किंवा साकार रूप है। वह निरामय—रोग-व्याधिसे रहित है, उसका दूसरा कोई आलम्ब—आधार नहीं है [वह स्वयं ही सबका आधार है]। राजन् ! जिनकी वासनासे यह सारा ब्रह्माण्ड वासित है—जिनके संकल्पमें इस जगत्का वास है, वे भगवान् श्रीहरि इस विश्वको वासित करनेके कारण ही वासुदेव कहलाते हैं। उनका श्रीविग्रह वर्षात्रिष्टुके सजल मेघके समान रूप है, उनकी प्रभा सूर्यके तेजको भी लज्जित करती है। उनके दाहिने भागके एक हाथमें बहुमूल्य मणियोंसे चित्रित शङ्क शोभा पा रहा है और दूसरेमें बड़े-बड़े असुरोंका संहार करनेवाली कौमोदकी गदा विराजमान है। उन जगदीश्वरके बायें हाथोंमें पद्म और चक्र सुशोभित हो रहे हैं। इस प्रकार उनके चार भुजाएँ हैं। वे सम्पूर्ण देवताओंके स्वामी हैं। 'शङ्क' नामक धनुष धासण करनेके कारण उन्हें शङ्की भी कहते हैं। वे लक्ष्मीके स्वामी हैं। [उनकी झाँकी बड़ी सुन्दर है—] शङ्कके समान मनोहर ग्रीवा, सुन्दर गोलाकार मुखमण्डल तथा पद्म-पत्रके समान बड़ी-बड़ी आँखें [—सभी आकर्षक हैं]। कुन्द-जैसे चमकते हुए दाँतोंसे भगवान्

\* नरकेऽपि चिरं मग्नः पूर्वजा ये कुलद्वये। तदैव यान्ति ते खर्म यदाचर्ति सुतो हरिम्॥

कि तेषां जीवितेनेह पशुवचेष्टितेन किम्। येषां न प्रवणं चित्तं वासुदेवे जगन्मये॥ (८४। ७२-७३)

हषीकेशकी बड़ी शोभा हो रही है। राजन् ! श्रीहरि निद्राके ऊपर शासन करनेवाले हैं, उनका नीचेका ओठ मूँगेकी तरह लाल है। नाभिसे कमल प्रकट होनेके कारण उन्हें पद्मनाभ कहते हैं। वे अत्यन्त तेजस्वी किरीटके कारण बड़ी शोभा पा रहे हैं। श्रीवत्सके चिह्नने उनकी छविको और बड़ा दिया है। श्रीकेशवका वक्षःस्थल कौस्तुभमणिसे अलङ्कृत है। वे जनार्दन सूर्यके समान तेजस्वी कुण्डलोद्धारा अत्यन्त देदीप्यमान हो रहे हैं। केयूर, हार, कङ्ग, कटिसूत्र, करधनी तथा अङ्गूठियोंसे उनके श्रीअङ्ग विभूषित हैं, जिससे उनकी शोभा बहुत बढ़

गयी है। भगवान् तपाये हुए सुवर्णके रंगका पीताम्बर पहने हुए हैं और गरुड़की पीठपर विराजमान हैं। वे भक्तोंकी पापराशिको दूर करनेवाले हैं। इस प्रकार श्रीहरिके सगुण स्वरूपका ध्यान करना चाहिये।

राजन् ! इस प्रकार मैंने तुम्हें दो तरहका ध्यान बतलाया है। इसका अभ्यास करके मनुष्य मन, वाणी तथा शरीरद्वारा होनेवाले सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। वह जिस-जिस फलको प्राप्त करना चाहता है, वह सब उसे निश्चितरूपसे मिल जाता है, देवता भी उसका आदर करते हैं तथा अन्तमें वह विष्णुलोकको प्राप्त होता है।



## भगवद्भक्तिके लक्षण तथा वैशाख-स्नानकी महिमा

**अम्बरीष बोले—मुनिश्रेष्ठ !** आपने बड़ी अच्छी बात बतायी, इसके लिये आपको धन्यवाद है ! आप सम्पूर्ण लोकोंपर अनुग्रह करनेवाले हैं। आपने भगवान् विष्णुके सगुण एवं निर्गुण ध्यानका वर्णन किया; अब आप भक्तिका लक्षण बतलाइये। साधुओंपर कृपा करनेवाले महर्षे ! मुझे यह समझाइये कि किस मनुष्यको कब, कहाँ, कैसी और किस प्रकार भक्ति करनी चाहिये।

सूतजी कहते हैं—राजाओंमें श्रेष्ठ महाराज अम्बरीषके ये वचन सुनकर देवर्षि नारदजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे उनसे बोले—राजन् ! सुनो—भगवान्‌की भक्ति समस्त पापोंका नाश करनेवाली है, मैं तुमसे उस भक्तिका भलीभाँति वर्णन करता हूँ। भक्ति अनेकों प्रकारकी बतायी गयी है—मानसी, वाचिकी, कायिकी, लौकिकी, वैदिकी तथा आध्यात्मिकी। ध्यान, धारणा, बुद्धि तथा वेदार्थके चिन्तनद्वारा जो विष्णुको प्रसन्न करनेवाली भक्ति की जाती है, उसे 'मानसी' भक्ति कहते हैं। दिन-रात अविश्रान्त भावसे वेदमन्त्रोंके उच्चारण, जप तथा आरण्यक आदिके पाठद्वारा जो भगवान्‌की प्रसन्नताका सम्पादन किया जाता है, उसका

नाम 'वाचिकी' भक्ति है। व्रत, उपवास और नियमोंके पालन तथा पाँचों इन्द्रियोंके संयमद्वारा की जानेवाली आराधना [शरीरसे साध्य होनेके कारण] 'कायिकी' भक्ति कही गयी है; यह सब प्रकारकी सिद्धियोंका सम्पादन करनेवाली है। पाद्य, अर्घ्य आदि उपचार, नृत्य, वाद्य, गीत, जागरण तथा पूजन आदिके द्वारा जो भगवान्‌की सेवा की जाती है, उसे लौकिकी भक्ति कहते हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके जप, संहिताओंके अध्ययन आदि तथा हविष्यकी आहुति—यज्ञ-यागादिके द्वारा की जानेवाली उपासनाका नाम 'वैदिकी' भक्ति है। विज्ञ पुरुषोंने अमावस्या, पूर्णिमा तथा विषुवः<sup>१</sup> (तुला और मेषकी संक्रान्ति) आदिके दिन जो याग करनेका आदेश दिया है, वह वैदिकी भक्तिका साधक है।

अब मैं योगजन्य आध्यात्मिकी भक्तिका भी वर्णन करता हूँ सुनो। योगज भक्तिका साधक सदा अपनी इन्द्रियोंको संयममें रखकर प्राणायामपूर्वक ध्यान किया करता है। विषयोंसे अलग रहता है। वह ध्यानमें देखता है—भगवान्‌का मुख अनन्त तेजसे उद्दीप हो रहा है, उनकी कटिके ऊपरी भागतक लटका हुआ यज्ञोपवीत शोभा पा रहा है। उनका शुक्ल वर्ण है, चार भुजाएँ हैं।

१—जब दिन और रात बराबर हों, उस दिन विषुव-योग होता है।

उनके हाथोंमें वरद एवं अभयकी मुद्राएँ हैं। वे पीत वस्त्र धारण किये हुए हैं तथा उनके नेत्र अत्यन्त सुन्दर हैं। वे प्रसन्नतासे परिपूर्ण दिखायी देते हैं। राजन्! इस प्रकार योगयुक्त पुरुष अपने हृदयमें परमेश्वरका ध्यान करता है।

जैसे प्रज्वलित अग्नि काष्ठको भस्म कर डालती है, उसी प्रकार भगवान्की भक्ति मनुष्यके पापोंको तत्काल दग्ध कर देती है। भगवान् श्रीविष्णुकी भक्ति साक्षात् सुधाका रस है, सम्पूर्ण रसोंका एकमात्र सार है। इस पृथ्वीपर मनुष्य जबतक उस भक्तिका श्रवण नहीं करता—उसका आश्रय नहीं लेता, तभीतक उसे सैकड़ों बार जन्म, मृत्यु और जराके आघातसे होनेवाले नाना प्रकारके दैहिक दुःख प्राप्त होते हैं। यदि महान् प्रभावशाली भगवान् अनन्तका कीर्तन और स्मरण किया जाय तो वे समस्त पापोंका नाश कर देते हैं, ठीक उसी तरह, जैसे वायु मेघका तथा सूर्योदेव अन्धकारका विनाश कर डालते हैं। राजन्! देवपूजा, यज्ञ, तीर्थ-स्नान, ब्रतानुष्ठान, तपस्या और नाना प्रकारके कर्मोंसे भी अन्तःकरणकी वैसी शुद्धि नहीं होती, जैसी भगवान् अनन्तका ध्यान करनेसे होती है।\* नरनाथ! जिनमें पवित्र यशवाले तथा अपने भक्तोंको भक्ति प्रदान करनेवाले विशुद्धस्वरूप भगवान् श्रीविष्णुका कीर्तन होता है, वे ही कथाएँ शुद्ध हैं तथा वे ही यथार्थ, वे ही लाभ पहुँचानेवाली और वे ही हरिभक्तोंके कहने-सुनने योग्य होती हैं। भूमण्डलके राज्यका भार सम्हालनेवाले धीरचित्त महाराज अम्बरीष! तुम धन्य हो; क्योंकि तुम्हारा हृदय पुरुषोत्तमके ध्यानमें एकतान हो रहा है तथा सौभाग्यलक्ष्मीसे सुशोभित होनेवाली तुम्हारी नैष्ठिक बुद्धि श्रीकृष्णचन्द्रकी पुण्यमयी लीलाओंके श्रवणमें प्रवृत्त हो रही है। भूपते! भक्तोंको वरदान देनेवाले अविनाशी भगवान् श्रीविष्णुकी भक्तिपूर्वक आराधना किये बिना अहङ्कारवश अपनेको ही बड़ा माननेवाले पुरुषका कल्याण कैसे होगा। भगवान् मायाके जन्मदाता है, उनपर मायाका प्रभाव नहीं पड़ता। साधु पुरुष उन्हें

भक्तिके द्वारा ही प्राप्त करते हैं, इस बातको तुम भी जानते हो। राजन्! धर्मका कोई भी तत्त्व ऐसा नहीं है, जो तुम्हें जात न हो। फिर भी जिनके चरण ही तीर्थ हैं, उन भगवान्की चर्चाका प्रसङ्ग उठाकर जो तुम उनकी सरस कथाको मुझसे विस्तारके साथ पूछ रहे हो—उसमें यही कारण है कि तुम वैष्णवोंका गौरव बढ़ाना चाहते हो—मुझ—जैसे लोगोंको आदर दे रहे हो। साधु-संत जो एक-दूसरेसे मिलनेपर अधिक श्रद्धाके साथ भगवान् अनन्तके कल्याणप्रयुक्त गुणोंका कीर्तन और श्रवण करते हैं, इससे बढ़कर परम संतोषकी बात तथा समुचित पुण्य मुझे और किसी कार्यमें नहीं दिखायी देता। ब्राह्मण, गौ, सत्य, श्रद्धा, यज्ञ, तपस्या, श्रुति, स्मृति, दया, दीक्षा और संतोष—ये सब श्रीहरिके स्वरूप हैं। सूर्य, चन्द्रमा, वायु, पृथ्वी, जल, आकाश, दिशाएँ, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा सम्पूर्ण प्राणी उस परमेश्वरके ही स्वरूप हैं। इस चराचर जगत्को उत्पन्न करनेकी शक्ति रखनेवाले वे विश्वरूप भगवान् स्वयं ही ब्राह्मणके शरीरमें प्रवेश करके सदा उन्हें खिलाया जानेवाला अन्न भोजन करते हैं; इसलिये जिनकी चरण-रेणु तीर्थके समान है, भगवान् अनन्त ही जिनके आधार हैं, जो सम्पूर्ण प्राणियोंके आत्मा तथा पुण्यमयी लक्ष्मीके सर्वस्व हैं, उन ब्राह्मणोंका आदरपूर्वक पूजन करो। जो विद्वान् ब्राह्मणको विष्णुबुद्धिसे देखता है, वही सच्चा वैष्णव है तथा वही अपने धर्ममें भलीभांति स्थित माना जाता है। तुमने भक्तिके लक्षण सुननेके लिये प्रार्थना की थी, सो सब मैंने तुम्हें सुना दिया। अब गङ्गा-स्नान करनेके लिये जा रहा हूँ।

‘यह वैशाखका महीना उपस्थित है, जो भगवान् लक्ष्मीपतिको अत्यन्त प्रिय है। इसकी भी आज शुक्ल सप्तमी है; इसमें गङ्गाका स्नान अत्यन्त दुर्लभ है। पूर्वकालमें राजा जहूने वैशाख शुक्ल सप्तमीको क्रोधमें आकर गङ्गाजीको पी लिया था और फिर अपने दाहिने कानके छिद्रसे उन्हें बाहर निकाला था; अतः जहूकी

\* न भूप देवार्चनयज्ञतीर्थस्नानब्रताचारक्रियातपोभिः । तथा विशुद्धिं लभतेऽन्तरात्मा यथा हृदिस्थे भगवत्यनन्ते ॥ (८५। २८)

कथा होनेके कारण गङ्गाको 'जाह्नवी' कहते हैं। इस तिथिको स्नान करके जो आकाशकी मेखलाभूत गङ्गा-देवीका उत्तम विधानके साथ पूजन करता है, वह मनुष्य धन्य एवं पुण्यात्मा है। जो वैशाख शुक्ला सप्तमीको विधिपूर्वक गङ्गामें देवताओं और पितरोंका तर्पण करता है, उसे गङ्गादेवी कृपा-दृष्टिसे देखती हैं तथा वह स्नानके पश्चात् सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। वैशाखके समान कोई मास नहीं है तथा गङ्गाके सदृश दूसरी कोई नदी नहीं है। इन दोनोंका संयोग दुर्लभ है। भगवान्की भक्तिसे ही ऐसा सुयोग प्राप्त होता है। गङ्गाजीका प्रादुर्भाव भगवान् श्रीविष्णुके चरणोंसे हुआ है। वे ब्रह्मलोकसे आकर भगवान् शङ्करके जटा-जूटमें निवास करती हैं। गङ्गा समस्त दुःखोंका नाश करनेवाली हैं। वे अपने तीन स्रोतोंसे निरन्तर प्रवाहित होकर तीनों लोकोंको पवित्र करती रहती हैं। उन्हें स्वर्गपर चढ़नेके लिये सीढ़ी माना गया है। वे सदा आनन्द देनेवाली, नाना प्रकारके पापोंको हरनेवाली, संकटसे तारनेवाली, भक्तजनोंके अन्तःकरणमें दिव्य प्रकाश फैलानेकी लीलासे सुशोभित होनेवाली, सगरके पुत्रोंको मोक्ष प्रदान करनेवाली, धर्म-मार्गमें लगानेवाली तथा तीन मार्गोंसे प्रवाहित होनेवाली हैं। गङ्गादेवी तीनों लोकोंका शृङ्गार है। वे अपने दर्शन, स्पर्श, स्नान, कीर्तन, ध्यान और सेवनसे हजारों पवित्र तथा अपवित्र पुरुषोंको पावन बनाती रहती हैं। जो लोग दूर रहकर भी तीनों समय 'गङ्गा, गङ्गा, गङ्गा' इस प्रकार उच्चारण करते हैं, उनके तीन जन्मोंका पाप गङ्गाजी नष्ट कर देती हैं। जो मनुष्य हजार योजन दूरसे भी गङ्गाका स्मरण करता है, वह पापी होनेपर भी उत्तम गतिको प्राप्त होता है।

'राजन् ! वैशाख शुक्ला सप्तमीको गङ्गाजीका दर्शन विशेष दुर्लभ है। भगवान् श्रीविष्णु और ब्राह्मणोंकी कृपासे ही उस दिन उनकी प्राप्ति होती है। माधव (वैशाख) के समान महीना और माधव (विष्णु) के समान कोई देवता नहीं है; क्योंकि पापके समुद्रमें झूबते

हुए मनुष्यके लिये माधव ही जहाजका काम देते हैं। माधव मासमें जो भक्तिपूर्वक दान, जप, हवन और स्नान आदि शुभकर्म किये जाते हैं, उनका पुण्य अक्षय तथा सौ करोड़गुना अधिक होता है। जिस प्रकार देवताओंमें विश्वात्मा भगवान् नारायणदेव श्रेष्ठ हैं, जैसे जप करने योग्य मन्त्रोंमें गायत्री सबसे उत्कृष्ट है, उसी प्रकार नदियोंमें गङ्गाजीका स्थान सबसे ऊँचा है। जैसे सम्पूर्ण स्त्रियोंमें पार्वती, तपनेवालोंमें सूर्य, लाभोंमें आरोग्यलाभ, मनुष्योंमें ब्राह्मण, पुण्योंमें परोपकार, विद्याओंमें वेद, मन्त्रोंमें प्रणव, ध्यानोंमें आत्मचिन्तन, तपस्याओंमें सत्य और स्वर्धम-पालन, शुद्धियोंमें आत्मशुद्धि, दानोंमें अभयदान तथा गुणोंमें लोभका त्याग ही सबसे प्रधान माना गया है, उसी प्रकार सब मासोंमें वैशाख मास अत्यन्त श्रेष्ठ है। पापोंका अन्त वैशाख मासमें प्रातःस्नान करनेसे होता है। अन्धकारका अन्त सूर्यके उदयसे तथा पुण्योंका अन्त दूसरोंकी बुराई और चुगली करनेसे होता है। राजन् ! कार्तिक मासमें जब सूर्य तुलराशिपर स्थित हों, उस समय जो स्नान-दान आदि पुण्यकार्य किया जाता है, उसका पुण्य परार्धगुना<sup>१</sup> अधिक होता है। माघ मासमें जब मकरराशिपर सूर्य हों तो कार्तिककी अपेक्षा भी हजारगुना उत्तम फल होता है और वैशाख मासमें मेषकी संक्रान्ति होनेपर माघसे भी सौगुना अधिक पुण्य होता है। वे ही मनुष्य पुण्यात्मा और धन्य हैं, जो वैशाख मासमें प्रातःकाल स्नान करके विधि-विधानसे भगवान् लक्ष्मीपतिकी पूजा करते हैं। वैशाख मासमें सबेरोंका स्नान, यज्ञ, दान, उपवास, हविष्य-भक्षण तथा ब्रह्मचर्यका पालन—ये महान् पातकोंका नाश करनेवाले हैं। राजन् ! कलियुगमें वैशाखकी महिमा गुप्त नहीं रहने पायगी; क्योंकि उस समय वैशाखस्नानका माहात्म्य अश्वमेध-यज्ञके अनुष्टानसे भी बढ़कर है। कलियुगमें परमपावन अश्वमेध-यज्ञका अनुष्टान नहीं हो सकता। उस समय वैशाख मासका स्नान ही अश्वमेध-यज्ञके समान विहित है। कलियुगके अधिकांश मनुष्य पापी

१. संख्याक्रमे परकाष्ठाका नाम 'परार्ध' है। आधुनिक गणनाके अनुसार यह संख्या 'शङ्क' या 'महाशङ्क' कहलाती है।

होंगे। उनकी बुद्धि पापमें ही आसक्त होगी; अतः वे पापोंके कारण नरकमें पड़ेंगे। अतएव कलियुगके लिये अश्वमेधके पुण्यको, जो स्वर्ग और मोक्षरूप फल प्रदान अश्वमेधका प्रचार कम कर दिया गया [और उसके करनेवाला है, नहीं जान सकेंगे। उस समयके लोग अपने स्थानपर वैशाख मासके स्नानका विधान किया गया]।



### वैशाख-माहात्म्य

**सूतजी कहते हैं—**महात्मा नारदके ये वचन सुनकर राजर्षि अम्बरीषने विस्मित होकर कहा—‘महामुने ! आप मार्गशीर्ष (अगहन) आदि पवित्र महीनोंको छोड़कर वैशाख मासकी ही इतनी प्रशंसा क्यों करते हैं ? उसीको सब मासोंमें श्रेष्ठ क्यों बतलाते हैं ? यदि माधव मास सबसे श्रेष्ठ और भगवान् लक्ष्मीपतिको अधिक प्रिय है तो उस समय स्नान करनेकी क्या विधि है ? वैशाख मासमें किस वस्तुका दान, कौन-सी तपस्या तथा किस देवताका पूजन करना चाहिये ? कृपानिधे ! उस समय किये जानेवाले पुण्यकर्मका आप मुझे उपदेश कीजिये। सद्गुरुके मुखसे उपदेशकी प्राप्ति दुर्लभ होती है। उत्तम देश और कालका मिलना भी बड़ा कठिन होता है। राज्य-प्राप्ति आदि दूसरे कोई भी भाव हमारे हृदयको इतनी शीतलता नहीं प्रदान करते, जितनी कि आपका यह समागम।

**नारदजीने कहा—**राजन् ! सुनो, मैं संसारके हितके लिये तुमसे माधव मासकी विधिका वर्णन करता हूँ। जैसा कि पूर्वकालमें ब्रह्माजीने बतलाया था। पहले तो जीवका भारतवर्षमें जन्म होना ही दुर्लभ है, उससे भी अधिक दुर्लभ है—वहाँ मनुष्यकी योनिमें जन्म। मनुष्य होनेपर भी अपने-अपने धर्मके पालनमें प्रवृत्ति होनी तो और भी कठिन है। उससे भी अत्यन्त दुर्लभ है—भगवान् वासुदेवमें भक्ति और उसके होनेपर भी माधव मासमें स्नान आदिका सुयोग मिलना तो और भी कठिन है। माधव मास माधव (लक्ष्मीपति) को बहुत प्रिय है। माधव (वैशाख) मासको पाकर जो विधिपूर्वक स्नान, दान तथा जप आदिका अनुष्ठान करते हैं, वे ही मनुष्य धन्य एवं कृतकृत्य हैं। उनके दर्शन मात्रसे पापियोंके भी पाप दूर हो जाते हैं और वे भगवद्भावसे भावित होकर

धर्माचरणके अभिलाषी बन जाते हैं। वैशाख मासके जो एकादशीसे लेकर पूर्णिमातक अन्तिम पाँच दिन हैं, वे समूचे महीनेके समान महत्व रखते हैं। राजेन्द्र ! जिन लोगोंने वैशाख मासमें भाँति-भाँतिके उपचारोद्घारा मधु दैत्यके मारनेवाले भगवान् लक्ष्मीपतिका पूजन कर लिया, उन्होंने अपने जन्मका फल पा लिया। भला, कौन-सी ऐसी अत्यन्त दुर्लभ वस्तु है जो वैशाखके स्नान तथा विधिपूर्वक भगवान्‌के पूजनसे नहीं प्राप्त होती। जिन्होंने दान, होम, जप, तीर्थमें प्राणत्याग तथा सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाले भगवान् श्रीनारायणका ध्यान नहीं किया, उन मनुष्योंका जन्म इस संसारमें व्यर्थ ही समझना चाहिये। जो धनके रहते हुए भी कंजूसी करता है, दान आदि किये बिना ही मर जाता है, उसका धन व्यर्थ है।

**राजन् !** उत्तम कुलमें जन्म, अच्छी मृत्यु, श्रेष्ठ भोग, सुख, सदा दान करनेमें अधिक प्रसन्नता, उदारता तथा उत्तम धैर्य—ये सब कुछ भगवान् श्रीविष्णुकी कृपासे ही प्राप्त होते हैं। महात्मा नारायणके अनुग्रहसे ही मनोवाञ्छित सिद्धियाँ मिलती हैं। जो कार्तिकमें, माघमें तथा माधवको प्रिय लगनेवाले वैशाख मासमें स्नान करके मधुहन्ता लक्ष्मीपति दामोदरकी विशेष विधिके साथ भक्तिपूर्वक पूजा करता है और अपनी शक्तिके अनुसार दान देता है, वह मनुष्य इस लोकका सुख भोगकर अन्तमें श्रीहरिके पदको प्राप्त होता है। भूप ! जैसे सूर्योदय होनेपर अन्धकार नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार वैशाख मासमें प्रातःस्नान करनेसे अनेक जन्मोंकी उपार्जित पापराशि नष्ट हो जाती है। यह बात ब्रह्माजीने मुझे बतायी थी। भगवान् श्रीविष्णुने माधव मासकी महिमाका विशेष प्रचार किया है। अतः इस महीनेके

आनेपर मनुष्योंको पवित्र करनेवाले पुण्यजलसे परिपूर्ण गङ्गातीर्थ, नर्मदातीर्थ, यमुनातीर्थ अथवा सरस्वतीतीर्थमें सूर्योदयके पहले स्नान करके भगवान् मुकुन्दकी पूजा करनी चाहिये। इससे तपस्याका फल भोगनेके पश्चात् अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होती है। भगवान् श्रीनारायण अनामय—रोग-व्याधिसे रहित हैं, उन गोविन्ददेवकी आराधना करके तुम भगवान्का पद प्राप्त कर लोगे। राजन् ! देवाधिदेव लक्ष्मीपति पापोंका नाश करनेवाले हैं, उन्हें नमस्कार करके चैत्रकी पूर्णिमाको इस व्रतका आरम्भ करना चाहिये। व्रत लेनेवाला पुरुष यमनियमोंका पालन करे, शक्तिके अनुसार कुछ दान दे, हविष्यान्न भोजन करे, भूमिपर सोये, ब्रह्मचर्यव्रतमें दृढ़तापूर्वक स्थित रहे तथा हृदयमें भगवान् श्रीनारायणका ध्यान करते हुए कृच्छ्र आदि तपस्याओंके द्वारा शरीरको सुखाये। इस प्रकार नियमसे रहकर जब वैशाखकी पूर्णिमा आये, उस दिन मधु तथा तिल आदिका दान करे, श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक भोजन कराये, उन्हें दक्षिणासहित धेनु-दान दे तथा वैशाखस्नानके व्रतमें जो कुछ त्रुटि हुई हो उसकी पूर्णताके लिये ब्राह्मणोंसे प्रार्थना करे। भूपाल ! जिस प्रकार लक्ष्मीजी जगदीश्वर माधवकी प्रिया हैं, उसी प्रकार माधव मास भी मधुसूदनको बहुत प्रिय है। इस तरह उपर्युक्त नियमोंके पालनपूर्वक बारह वर्षोंतक वैशाखस्नान करके अन्तमें मधुसूदनकी प्रसन्नताके लिये अपनी शक्तिके अनुसार व्रतका उद्यापन करे। अम्बरीष ! पूर्वकालमें ब्रह्माजीके मुखसे मैंने जो कुछ सुना था, वह सब वैशाख मासका माहात्म्य तुम्हें बता दिया।

अम्बरीषने पूछा—मुने ! स्नानमें परिश्रम तो बहुत थोड़ा है, फिर भी उससे अत्यन्त दुर्लभ फलकी प्राप्ति होती है—मुझे इसपर विश्वास क्यों नहीं होता ? मुझे मोह क्यों हो रहा है ?

नारदजीने कहा—राजन् ! तुम्हारा संदेह ठीक है। थोड़े-से परिश्रमके द्वारा महान् फलकी प्राप्ति

असम्भव-सी बात है; तथापि इसपर विश्वास करो, क्योंकि यह ब्रह्माजीकी बतायी हुई बात है। धर्मकी गति सूक्ष्म होती है, उसे समझनेमें बड़े-बड़े पुरुषोंको भी कठिनाई होती है। श्रीहरिकी शक्ति अचिन्त्य है, उनकी कृतिमें विद्वानोंको भी मोह हो जाता है। विश्वामित्र आदि क्षत्रिय थे, किन्तु धर्मका अधिक अनुष्ठान करनेके कारण वे ब्राह्मणत्वको प्राप्त हो गये; अतः धर्मकी गति अत्यन्त सूक्ष्म है। भूपाल ! तुमने सुना होगा, अजामिल अपनी धर्मपत्नीका परित्याग करके सदा पापके मार्गपर ही चलता था। तथापि मृत्युके समय उसने केवल पुत्रके स्नेहवश ‘नारायण’ कहकर पुकारा—पुत्रका चिन्तन करके ‘नारायण’का नाम लिया; किन्तु इतनेसे ही उसको अत्यन्त दुर्लभ पदकी प्राप्ति हुई। जैसे अनिच्छापूर्वक भी यदि आगका स्पर्श किया जाय तो वह शरीरको जलाती ही है, उसी प्रकार किसी दूसरे निमित्तसे भी यदि श्रीगोविन्दका नामोच्चारण किया जाय तो वह पापराशिको भस्म कर डालता है।\* जीव विचित्र हैं, जीवोंकी भावनाएँ विचित्र हैं, कर्म विचित्र है तथा कर्मोंकी शक्तियाँ भी विचित्र हैं। शास्त्रमें जिसका महान् फल बताया गया हो, वही कर्म महान् है [फिर वह अल्प परिश्रम-साध्य हो या अधिक परिश्रम-साध्य]। छोटे-सी वस्तुसे भी बड़ी-से-बड़ी वस्तुका नाश होता देखा जाता है। जरा-सी चिनगारीसे बोझ-के-बोझ तिनके स्वाहा हो जाते हैं। जो श्रीकृष्णके भक्त हैं, उनके अनजानमें किये हुए हजारों हत्याओंसे युक्त भयङ्कर पातक तथा चोरी आदि पाप भी नष्ट हो जाते हैं। वीर ! जिसके हृदयमें भगवान् श्रीविष्णुकी भक्ति है वह विद्वान् पुरुष यदि थोड़ा-सा भी पुण्य-कार्य करता है तो वह अक्षय फल देनेवाला होता है। अतः माधव मासमें माधवकी भक्तिपूर्वक आराधना करके मनुष्य अपनी मनोवाञ्छित कामनाओंको प्राप्त कर लेता है—इस विषयमें संदेह नहीं करना चाहिये। शास्त्रोक्त विधिसे किया जानेवाला छोटे-से-छोटा कर्म क्यों न हो, उसके

\* अनिच्छापि दहति सृष्टे हुतवहो यथा। तथा दहति गोविन्दनाम व्याजादपीरितम्॥ (८७।८)

द्वारा बड़े-से-बड़े पापका भी क्षय हो जाता है तथा उत्तम कर्मकी वृद्धि होने लगती है। राजन् ! भाव तथा भक्ति देनोंकी अधिकतासे फलमें अधिकता होती है। धर्मकी गति सूक्ष्म है, वह कई प्रकारोंसे जानी जाती है। महाराज ! जो भावसे हीन है—जिसके हृदयमें उत्तम भाव एवं भगवान्की भक्ति नहीं है, वह अच्छे देश और कालमें जा-जाकर जीवनभर पवित्र गङ्गा-जलसे नहाता और दान देता रहे तो भी कभी शुद्ध नहीं हो सकता—ऐसा मेरा विचार है। अतः अपने हृदय-कमलमें शुद्ध-भावकी स्थापना करके वैशाख मासमें प्रातःस्नान करनेवाला जो विशुद्धचित्त पुरुष भक्तिपूर्वक भगवान् लक्ष्मीपतिकी पूजा करता है, उसके पुण्यका वर्णन करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। अतः भूपाल ! तुम वैशाख मासके फलके विषयमें विश्वास करो। छोटा-सा

शुभ कर्म भी सैकड़ों पापकर्मोंका नाश करनेवाला होता है। जैसे हरिनामके भयसे राशि-राशि पाप नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार सूर्यके मेषराशिपर स्थित होनेके समय प्रातःस्नान करनेसे तथा तीर्थमें भगवान्की स्तुति करनेसे भी समस्त पापोंका नाश हो जाता है।\* जिस प्रकार गरुड़के तेजसे साँप भाग जाते हैं, उसी तरह प्रातःकाल वैशाख-स्नान करनेसे पाप पलायन कर जाते हैं—यह निश्चित बात है। जो मनुष्य मेषराशिके सूर्यमें गङ्गा या नर्मदाके जलमें नहाकर एक, दो या तीनों समय भक्ति-भावके साथ पापप्रशमन नामक स्तोत्रका पाठ करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर परम पदको प्राप्त होता है। अम्बरीष ! इस प्रकार मैंने थोड़ेमें यह वैशाख-स्नानका सारा माहात्म्य सुना दिया, अब और क्या सुनना चाहते हो ?'



## वैशाख-स्नानसे पाँच प्रेतोंका उद्धार तथा 'पाप-प्रशमन' नामक स्तोत्रका वर्णन

अम्बरीषने कहा—मुने ! जिसके चिन्तन मात्रसे पापराशिका लय हो जाता है, उस पाप-प्रशमन नामक स्तोत्रको मैं भी सुनना चाहता हूँ। आज मैं धन्य हूँ, अनुगृहीत हूँ; आपने मुझे उस शुभ विधिका श्रवण कराया, जिसके सुनने मात्रसे पापोंका क्षय हो जाता है। वैशाख मासमें जो भगवान् केशवके कल्याणमय नामोंका कीर्तन किया जाता है, उसीको मैं संसारमें सबसे बड़ा पुण्य, पवित्र, मनोरम तथा एकमात्र सुकृतसे ही सुलभ होनेवाला शुभ कर्म मानता हूँ। अहो ! जो लोग माधव मासमें भगवान् मधुसूदनके नामोंका स्मरण करते हैं, वे धन्य हैं। अतः यदि आप उचित समझें तो मुझे पुनः माधव मासकी ही पवित्र कथा सुनाये।

सूतजी कहते हैं—राजाओंमें श्रेष्ठ हरिभक्त अम्बरीषका वचन सुनकर नारद मुनिको बड़ी प्रसन्नता हुई। यद्यपि वे वैशाख-स्नानके लिये जानेको उल्कण्ठित थे, तथापि सत्सङ्घमें आनन्द आनेके कारण रुक गये

और राजासे बोले।

नारदजीने कहा—महीपाल ! मुझे ऐसा जान पड़ता है कि यदि दो व्यक्तियोंमें परस्पर भगवत्कथा-सम्बन्धी सरस वार्तालाप छिड़ जाय तो वह अत्यन्त विशुद्ध—अन्तःकरणको शुद्ध करनेवाला होता है। आज तुम्हरे साथ जो माधव मासके माहात्म्यकी चर्चा चल रही है, यह वैशाख-स्नानकी अपेक्षा भी अधिक पुण्य प्रदान करनेवाली है; क्योंकि माधव मासके देवता भगवान् श्रीविष्णु है [अतः उसका कीर्तन भगवान्का ही कीर्तन है]। जिसका जीवन धर्मके लिये और धर्म भगवान्की प्रसन्नताके लिये है तथा जो रातों-दिन पुण्योपार्जनमें ही लगा रहता है, उसीको इस पृथ्वीपर मैं वैष्णव मानता हूँ। राजन् ! अब मैं वैशाख-स्नानसे होनेवाले पुण्य-फलका संक्षेपसे वर्णन करता हूँ; विस्तारके साथ सारा वर्णन तो मेरे पिता—ब्रह्माजी भी नहीं कर सकते। वैशाखमें डुबकी लगाने मात्रसे समस्त

\* यथा हरेन्मिभयेन भूप नश्यन्ति सर्वे दुरितस्य वृद्धाः। नूनं रवौ मेषवगते विभाते स्नानेन तीर्थे च हरिस्तवेन ॥ (८७। ३४)

पाप छूट जाते हैं। पूर्वकालकी बात है, कोई मुनीश्वर तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे सर्वत्र धूम रहे थे। उनका नाम था मुनिशर्मा। वे बड़े धर्मात्मा, सत्यवादी, पवित्र तथा शम, दम एवं शान्तिधर्मसे युक्त थे। वे प्रतिदिन पितरोंके तर्पण और श्राद्ध करते थे। उन्हें वेदों और स्मृतियोंके विधानोंका सम्यक् ज्ञान था। वे मधुर वाणी बोलते और भगवान्का पूजन करते रहते थे। वैष्णवोंके संसर्गमें ही उनका समय व्यतीत होता था। वे तीनों कालोंके ज्ञाता, मुनि, दयालु, अत्यन्त तेजस्वी, तत्त्वज्ञानी और ब्राह्मण-भक्त थे। वैशाखका महीना था, मुनिशर्मा स्नानके लिये नर्मदाके किनारे जा रहे थे। उसी समय उन्होंने अपने सामने पाँच पुरुषोंको देखा, जो भारी दुर्गतिमें फँसे हुए थे। वे अभी-अभी एक-दूसरेसे मिले थे। उनके शरीरका रंग काला था। वे एक बरगदकी छायामें बैठे थे और पापोंके कारण उद्धिग्र होकर चारों ओर दृष्टिपात कर रहे थे। उन्हें देखकर द्विजवर मुनिशर्मा बड़े विस्मयमें पड़े और सोचने लगे—इस भयानक वनमें ये मनुष्य कहाँसे आये? इनकी चेष्टा बड़ी दयनीय है, किन्तु इनका आकार बड़ा भयङ्कर दिखायी देता है। ये पापभागी चोर तो नहीं हैं? विप्रवर मुनिशर्माकी बुद्धि बड़ी स्थिर थी, वे ज्यों ही इस प्रकार विचार करने लगे, उसी समय उपर्युक्त पाँचों पुरुष उनके पास आये और हाथ जोड़कर मुनिशर्मसि बोले।

उन पुरुषोंने कहा—विप्रवर! हमें आप कल्याणमय पुरुषोत्तम जान पड़ते हैं। हम दुःखी जीव हैं। अपना दुःख विचारकर आपको बताना चाहते हैं। द्विजराज! आप कृपा करके हमारी कष्ट-कथा सुनें। दैववश जिनके पाप प्रकट हो गये हैं, उन दीन-दुःखी प्राणियोंके आधार आप-जैसे संत-महात्मा ही हैं। साधु पुरुष अपनी दृष्टिमात्रसे पीड़ितोंकी पीड़ाएँ हर लेते हैं। [अब उनमेंसे एकने सबका परिचय देना आरम्भ किया—] मैं पञ्चाल देशका क्षत्रिय हूँ, मेरा नाम नरवाहन है। मैंने मार्गमें मोहवश बाणद्वारा एक ब्राह्मणकी हत्या कर डाली। मुझसे ब्रह्म-हत्याका पाप हो गया है। इसलिये शिखा, सूत्र और तिलकसे रहित

होकर इस पृथ्वीपर धूमता हूँ और सबसे कहता फिरता हूँ कि 'मैं ब्रह्महत्यारा हूँ।' मुझ महापापी ब्रह्मघातीको आप कृपाकी भिक्षा दें। इस दशामें पड़े-पड़े मुझे एक वर्ष बीत गया। मैं पापसे जल रहा हूँ। मेरा चित्त शोकसे व्याकुल है। तथा ये जो सामने दिखायी देते हैं, इनका नाम चन्द्रशर्मा है। ये जातिके ब्राह्मण हैं। इन्होंने मोहसे मलिन होकर गुरुका वध किया है। ये मगधदेशके निवासी हैं। इनके स्वजनोंने इनका परित्याग कर दिया है। ये भी धूमते-धामते दैवात् यहाँ आ पहुँचे हैं। इनके भी न शिखा है न सूत्र। ब्राह्मणका कोई भी चिह्न इनके शरीरमें नहीं रह गया है। इनके सिवा जो ये तीसरे व्यक्ति हैं, इनका नाम देवशर्मा है। स्वामिन्! ये भी बड़े कष्टमें हैं। ये भी जातिके ब्राह्मण हैं, किन्तु मोहवश वेश्याकी आसक्तिमें फँसकर शराबी हो गये थे। इन्होंने भी पूछनेपर अपना सारा हाल सच-सच कह सुनाया है। अपने प्रथम पापाचारको याद करके इनके हृदयमें बड़ा संताप होता है। ये सदा मनस्तापसे पीड़ित रहते हैं। इनको इनकी स्त्रीने, बन्धु-बान्धवोंने तथा गाँवके सब लोगोंने वहाँसे निकाल दिया है। ये अपने उसी पापके साथ भ्रमण करते हुए यहाँ आये हैं। ये चौथे महाशय जातिके वैश्य हैं। इनका नाम विधुर है। ये गुरुपत्रीके साथ समागम करनेवाले हैं। इनकी माता मिथिलामें जाकर वेश्या हो गयी थी। इन्होंने मोहवश तीन महीनोंतक उसीका उपभोग किया है। परन्तु जब असली बातका पता लगा है तो बहुत दुःखी होकर पृथ्वीपर विचरते हुए ये भी यहाँ आ पहुँचे हैं। हममेंसे ये जो पाँचवें दिखायी दे रहे हैं, ये भी वैश्य ही हैं। इनका नाम नन्द है। ये पापियोंका संसर्ग करनेवाले महापापी हैं। इन्होंने प्रतिदिन धनके लालचमें पड़कर बहुत चोरी की है। पातकोंसे आक्रान्त हो जानेपर इन्हें स्वजनोंने त्याग दिया है। तब ये स्वयं भी खिन्न होकर दैवात् यहाँ आ पहुँचे हैं। इस प्रकार हम पाँचों महापापी एक स्थानपर जुट गये हैं। हम सब-के-सब दुःखोंसे घिरे हुए हैं। अनेकों तीर्थोंमें धूम आये, मगर हमारा घोर पातक नहीं मिटता। आपको तेजसे उद्दीप देखकर हमलोगोंका मन

प्रसन्न हो गया है। आप-जैसे साधु पुरुषके पुण्यमय दर्शनसे हमारे पातकोंके अन्त होनेकी सूचना मिल रही है। स्वामिन्! कोई ऐसा उपाय बताइये, जिससे हमलोगोंके पापोंका नाश हो जाय। प्रभो! आप वेदार्थके ज्ञाता और परम दयालु जान पड़ते हैं; आपसे हमें अपने उद्धारकी बड़ी आशा है।

मुनिशर्मनि कहा—तुमलोगोंने अज्ञानवश पाप किया, किन्तु इसके लिये तुम्हारे हृदयमें अनुताप है तथा तुम सब-के-सब सत्य बोल रहे हो; इस कारण तुम्हारे ऊपर अनुग्रह करना मेरा कर्तव्य है। मैं अपनी भुजा ऊपर उठाकर कहता हूँ, मेरी सत्य बातें सुनो। पूर्वकालमें जब मुनियोंका समुदाय एकत्रित हुआ था, उस समय मैंने महर्षि अङ्गिराके मुखसे जो कुछ सुना था, वही वेद-शास्त्रोंमें भी देखा; वह सबके लिये विश्वास करने योग्य है। मेरी आराधनासे संतुष्ट हुए स्वयं भगवान् विष्णुने भी पहले ऐसी ही बात बतायी थी। वह इस प्रकार है। भोजनसे बढ़कर दूसरा कोई तृप्तिका साधन नहीं है। पितासे बढ़कर कोई गुरु नहीं है। ब्राह्मणोंसे उत्तम दूसरा कोई पात्र नहीं है तथा भगवान् विष्णुसे श्रेष्ठ दूसरा कोई देवता नहीं है। गङ्गाकी समानता करनेवाला कोई तीर्थ, गोदानकी तुलना करनेवाला कोई दान, गायत्रीके समान जप, एकादशीके तुल्य व्रत, भार्याके सदृश मित्र, दयाके समान धर्म तथा स्वतन्त्रताके समान सुख नहीं है। गार्हस्थ्यसे बढ़कर आश्रम और सत्यसे बढ़कर सदाचार नहीं है। इसी प्रकार संतोषके समान सुख तथा वैशाख मासके समान महान् पापोंका अपहरण करनेवाला दूसरा कोई मास नहीं है। वैशाख मास भगवान् मधुसूदनको बहुत ही प्रिय है। गङ्गा आदि तीर्थोंमें तो वैशाख-स्नानका सुयोग अत्यन्त दुर्लभ है। उस समय गङ्गा, यमुना तथा नर्मदाकी प्राप्ति कठिन होती है। जो शुद्ध हृदयवाला मनुष्य भगवान्के भजनमें तत्पर हो पूरे वैशाखभर प्रातःकाल गङ्गास्नान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर परम गतिको प्राप्त होता है।

इसलिये पुण्यके सारभूत इस वैशाख मासमें तुम सभी पातकी मेरे साथ नर्मदा-तटपर चलो और उसमें गोते

लगाओ। नर्मदाके जलका मुनिलोग भी सेवन करते हैं, वह समस्त पापोंके भयका नाश करनेवाला है। मुनिके यों कहनेपर वे सब पापी उनके साथ अद्भुत पुण्य प्रदान करनेवाली नर्मदाकी प्रशंसा करते हुए उसके तटपर गये। किनारे पहुँचकर ब्राह्मणश्रेष्ठ मुनिशर्माका चित्त प्रसन्न हो गया। उन्होंने वेदोक्त विधिके अनुसार नर्मदाके जलमें प्रातःस्नान किया। उपर्युक्त पाँचों पापियोंने भी ब्राह्मणके कहनेसे ज्यों ही नर्मदामें डुबकी लगायी, त्यों ही उनके शरीरका रंग बदल गया; वे तत्काल सुवर्णके समान कान्तिमान् हो गये। फिर मुनिशर्मनि सब लोगोंके सामने उन्हें पापप्रशमन नामक स्तोत्र सुनाया।

भूपाल ! अब तुम पापप्रशमन नामक स्तोत्र सुनो। इसका भक्तिपूर्वक श्रवण करके भी मनुष्य पापराशिसे मुक्त हो जाता है। इसके चिन्तन मात्रसे बहुतेरे पापी शुद्ध हो चुके हैं। इसके सिवा, और भी बहुत-से मनुष्य इस स्तोत्रका सहारा लेकर अज्ञानजनित पापसे मुक्त हो गये हैं। जब मनुष्योंका चित्त परायी रौप्य, पराये धन तथा जीव-हिंसा आदिकी ओर जाय तो इस प्रायश्चित्तरूपा स्तुतिकी शरण लेनी चाहिये। यह स्तुति इस प्रकार है—

विष्णवे विष्णवे नित्यं विष्णवे विष्णवे विष्णवे नमः ।  
नमामि विष्णुं चित्तस्थमहङ्कारगतं हरिम् ॥  
चित्तस्थमीशमव्यक्तमनन्तमपराजितम् ।  
विष्णुमीड्यमशेषाणामनादिनिधनं हरिम् ॥

सम्पूर्ण विश्वमें व्यापक भगवान् श्रीविष्णुको सर्वदा नमस्कार है। विष्णुको बारम्बार प्रणाम है। मैं अपने चित्तमें विराजमान विष्णुको नमस्कार करता हूँ। अपने अहङ्कारमें व्याप्त श्रीहरिको मस्तक झुकाता हूँ। श्रीविष्णु चित्तमें विराजमान ईश्वर (मन और इन्द्रियोंके शासक), अव्यक्त, अनन्त, अपराजित, सबके द्वारा स्तवन करनेयोग्य तथा आदि-अन्तसे रहित हैं; ऐसे श्रीहरिको मैं नित्य-निरन्तर प्रणाम करता हूँ।

विष्णुश्चित्तगतो यन्मे विष्णुर्बुद्धिगतश्च यत् ।  
योऽहङ्कारगतो विष्णुर्यो विष्णुर्मयि संस्थितः ॥  
करोति कर्तृभूतोऽसौ स्थावरस्य चरस्य च ।  
तत्पापं नाशमायाति तस्मिन् विष्णौ विचिन्तिते ॥

जो विष्णु मेरे चित्तमें विराजमान हैं, जो विष्णु मेरी बुद्धिमें स्थित हैं, जो विष्णु मेरे अहङ्कारमें व्याप्त हैं तथा जो विष्णु सदा मेरे स्वरूपमें स्थित हैं, वे ही कर्ता होकर सब कुछ करते हैं। उन विष्णुभगवान्का चिन्तन करनेपर चराचर प्राणियोंका सारा पाप नष्ट हो जाता है।

ध्यातो हरति यः पापं स्वप्ने दृष्टश्च पापिनाम् ।  
तमुपेन्द्रमहं विष्णुं नमामि प्रणतश्रियम् ॥

जो ध्यान करने और स्वप्नमें दीख जानेपर भी पापियोंके पाप हर लेते हैं तथा चरणोंमें पड़े हुए शरणागत भक्त जिन्हें अत्यन्त प्रिय हैं, उन वामनरूपधारी भगवान् श्रीविष्णुको नमस्कार करता हूँ।

जगत्यस्मिन्निरालम्बे हृजमक्षरमव्ययम् ।  
हस्तावलम्बनं स्तोत्रं विष्णुं वन्दे सनातनम् ॥

जो अजन्मा, अक्षर और अविनाशी हैं तथा इस अंवलम्बशून्य संसारमें हाथका सहारा देनेवाले हैं, स्तोत्रोद्घारा जिनकी स्तुति की जाती है, उन सनातन श्रीविष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ।

सर्वेश्वरेश्वर विभो परमात्मन्नधोक्षज ।  
हृषीकेश हृषीकेश हृषीकेश नमोऽस्तु ते ॥

हे सर्वेश्वर ! हे ईश्वर ! हे व्यापक परमात्मन् ! हे अधोक्षज ! हे इन्द्रियोंका शासन करनेवाले अन्तर्यामी हृषीकेश ! आपको बारम्बार नमस्कार है।

नृसिंहानन्त गोविन्द भूतभावन केशव ।  
दुरुक्तं दुष्कृतं ध्यातं शमयाशु जनार्दन ॥  
हे नृसिंह ! हे अनन्त ! हे गोविन्द ! हे भूतभावन ! हे केशव ! हे जनार्दन ! मेरे दुर्वचन, दुष्कर्म और दुश्मित्तनको शीघ्र नष्ट कीजिये।

यन्मया चिन्तिं दुष्टं स्वचित्तवशवर्तिना ।  
आकर्णय महाबाहो तच्छमं नय केशव ॥  
महाबाहो ! मेरी प्रार्थना सुनिये—अपने चित्तके वशमें होकर मैंने जो कुछ बुरा चिन्तन किया हो, उसको शान्त कर दीजिये।

ब्रह्मण्यदेव गोविन्द परमार्थपरायण ।  
जगत्प्राय जगद्भातः पापं शमय मेऽच्युत ॥  
ब्राह्मणोंका हित साधन करनेवाले देवता गोविन्द !

परमार्थमें तत्पर रहनेवाले जगत्राथ ! जगत्को धारण करनेवाले अच्युत ! मेरे पापोंका नाश कीजिये।

यद्यापराह्वे सायाह्वे मध्याह्वे च तथा निशि ।  
कायेन मनसा वाचा कृतं पापमजानता ॥  
जानता च हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष माधव ।  
नामत्रयोद्धारणतः सर्वं यातु मम क्षयम् ॥

मैंने पूर्वाह्व, सायाह्व, मध्याह्व तथा रात्रिके समय शरीर, मन और वाणीके द्वारा, जानकर या अनजारमें जो कुछ पाप किया हो, वह सब ‘हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष और माधव’—इन तीन नामोंके उच्चारणसे नष्ट हो जाय।

शारीरं मे हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष मानसम् ।  
पापं प्रशममायातु वाकृतं मम माधव ॥

हृषीकेश ! आपके नामोद्धारणसे मेरा शारीरिक पाप नष्ट हो जाय, पुण्डरीकाक्ष ! आपके स्मरणसे मेरा मानस पाप शान्त हो जाय तथा माधव ! आपके नाम-कीर्तनसे मेरे वाचिक पापका नाश हो जाय।

यद् भुज्ञानः पिबंस्तिष्ठन् स्वपञ्चाग्रद् यदा स्थितः ।  
अकार्षं पापमर्थार्थं कायेन मनसा गिरा ॥

महदल्पं च यत्पापं दुर्योन्निनरकावहम् ।  
तत्सर्वं विलयं यातु वासुदेवस्य कीर्तनात् ॥

मैंने खाते, पीते, खड़े होते, सोते, जागते तथा ठहरते समय मन, वाणी और शरीरसे, स्वार्थ या धनके लिये जो कुत्सित योनियों और नरकोंकी प्राप्ति करनेवाला महान् या थोड़ा पाप किया है, वह सब भगवान् वासुदेवका नामोद्धारण करनेसे नष्ट हो जाय।

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं च यत् ।  
अस्मिन् सङ्कीर्तिं विष्णौ यत् पापं तत् प्रणश्यतु ॥

जिसे परब्रह्म, परम धाम और परम पवित्र कहते हैं, वह तत्त्व भगवान् विष्णु ही है; इन श्रीविष्णुभगवान्का कीर्तन करनेसे मेरे जो भी पाप हों, वे नष्ट हो जायें।

यत्प्राप्य न निवर्तन्ते गन्धस्पर्शविवर्जितम् ।  
सूरयस्तत्पदं विष्णोस्तत्पर्वं मे भवत्वलम् ॥

जो गन्ध और स्पर्शसे रहित है, ज्ञानी पुरुष जिसे पाकर पुनः इस संसारमें नहीं लौटते, वह श्रीविष्णुका ही परम पद है। वह सब मुझे पूर्णरूपसे प्राप्त हो जाय।

पापप्रशमनं स्तोत्रं यः पठेच्छुण्यान्नरः ।  
 शारीरैर्मानसैर्वाचा कृतैः पापैः प्रमुच्यते ॥  
 मुक्तः पापग्रहादिभ्यो याति विष्णोः परं पदम् ।  
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्तोत्रं सर्वाधनाशनम् ॥  
 ग्रायश्चित्तमधौघानां पठितव्यं नरोत्तमैः । \*

यह 'पापप्रशमन' नामक स्तोत्र है। जो मनुष्य इसे पढ़ता और सुनता है, वह शरीर, मन और बाणीद्वारा किये हुए पापोंसे मुक्त हो जाता है। इतना ही नहीं, वह पापग्रह आदिके भयसे भी मुक्त होकर विष्णुके परम पदको प्राप्त होता है। यह स्तोत्र सब पापोंका नाशक तथा

पापराशिका प्रायश्चित्त है; इसलिये श्रेष्ठ मनुष्योंको पूर्ण प्रयत्न करके इस स्तोत्रका पाठ करना चाहिये।

राजन्! इस स्तोत्रके श्रवणमात्रसे पूर्वजन्म तथा इस जन्मके किये हुए पाप भी तत्काल नष्ट हो जाते हैं। यह स्तोत्र पापरूपी वृक्षके लिये कुठार और पापमय ईंधनके लिये दावानल है। पापराशिरूपी अन्धकार-समूहका नाश करनेके लिये यह स्तोत्र सूर्यके समान है। मैंने सम्पूर्ण जगत्पर अनुग्रह करनेके लिये इसे तुम्हारे सामने प्रकाशित किया है। इसके पुण्यमय माहात्म्यका वर्णन करनेमें स्वयं श्रीहरि भी समर्थ नहीं हैं।



## वैशाख मासमें स्नान, तर्पण और श्रीमाधव-पूजनकी विधि एवं महिमा

अम्बरीषने पूछा—मुने ! वैशाख मासके व्रतका क्या विधान है ? इसमें किस तपस्याका अनुष्ठान करना पड़ता है ? क्या दान होता है ? कैसे स्नान किया जाता है और किस प्रकार भगवान् केशवकी पूजा की जाती है ? ब्रह्मणे ! आप श्रीहरिके प्रिय भक्त तथा सर्वज्ञ हैं; अतः कृपा करके मुझे ये सब बातें बताइये ।

नारदजीने कहा—साधुश्रेष्ठ ! सुनो—वैशाख मासमें जब सूर्य मेषराशिपर चले जायें तो किसी बड़ी नदीमें, नदीरूप तीर्थमें, नदमें, सरोवरमें, झारेनमें, देवकुण्डमें, स्वतः प्राप्त हुए किसी भी जलाशयमें, बावड़ीमें अथवा कुएँ आदिपर जाकर नियमपूर्वक भगवान् श्रीविष्णुका स्मरण करते हुए स्नान करना चाहिये। स्नानके पहले निम्राङ्कित इलोकका उच्चारण करना चाहिये—

यथा ते माधवो मासो बल्लभो मधुसूदन ।

प्रातःस्नानेन मे तस्मिन् फलदः पापहा भव ॥

(८९।११)

'मधुसूदन ! माधव (वैशाख) मास आपको विशेष प्रिय है, इसलिये इसमें प्रातःस्नान करनेसे आप शास्त्रोक्त फलके देनेवाले हों और मेरे पापोंका नाश कर दें।'

इस प्रकार कहकर मौनभावसे उस तीर्थके किनारे अपने दोनों पैर धो ले; फिर भगवान् नारायणका स्मरण करते हुए विधिपूर्वक स्नान करे। स्नानकी विधि इस प्रकार है—विद्वान् पुरुषको मूल-मन्त्र पढ़कर तीर्थकी कल्पना कर लेनी चाहिये। 'ॐ नमो नारायणाय' यह मन्त्र ही मूल-मन्त्र कहा गया है। पहले हाथमें कुशा लेकर विधिपूर्वक आचमन करे तथा मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए बाहर-भीतरसे पवित्र रहे। फिर चार हाथका चौकोर मण्डल बनाकर उसमें निम्राङ्कित मन्त्रोद्घारा भगवती श्रीगङ्गजीका आवाहन करे।

विष्णुपादप्रसूतासि वैष्णवी विष्णुदेवता ॥  
 त्राहि नस्त्वेनसस्तस्मादाजन्ममरणान्तिकात् ।  
 तिस्मःकोट्योऽर्थकोटी च तीर्थानां वायुरब्रह्मीत् ॥  
 दिवि भुव्यन्तरिक्षे च तानि ते सन्ति जाह्वित् ।  
 नन्दिनीति च ते नाम देवेषु नलिनीति च ॥  
 दक्षा पृथ्वी वियद्धा विश्वकार्या शिवामृता ।  
 विद्याधरी महादेवी तथा लोकप्रसादिनी ॥  
 क्षेमङ्करी जाह्वी च शान्ता शान्तिप्रदायिनी ।

(८९।१५—१९)

'गङ्गे ! तुम भगवान् श्रीविष्णुके चरणोंसे प्रकट हुई

हो । श्रीविष्णु ही तुम्हारे देवता हैं; इसीलिये तुम्हें वैष्णवी कहते हैं । देवि ! तुम जन्मसे लेकर मृत्युतक समस्त पापोंसे मेरी रक्षा करो । स्वर्ग, पृथ्वी और अन्तरिक्षमें कुल साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं—ऐसा वायु देवताका कथन है । माता जाह्नवी ! वे सभी तीर्थ तुम्हारे अंदर मौजूद हैं । देवलोकमें तुम्हारा नाम नन्दिनी और नलिनी है । इनके सिवा दक्षा, पृथ्वी, वियद्घना, विश्वकाया, शिवा, अमृता, विद्याधरी, महादेवी, लोकप्रसादिनी क्षेमद्वारी, जाह्नवी, शान्ता और शान्तिप्रदायिनी आदि तुम्हारे अनेकों नाम हैं ।'

स्नानके समय इन पवित्र नामोंका कीर्तन करना चाहिये; इससे त्रिपथगामिनी भगवती गङ्गा उपस्थित हो जाती हैं । सात बार उपर्युक्त नामोंका जप करके संपुटके आकारमें दोनों हाथोंको जोड़कर उनमें जल ले और चार, छः या सात बार मस्तकपर डाले । इस प्रकार स्नान करके पूर्ववत् मृत्तिकाको भी विधिवत् अभिमन्त्रित करे और उसे शरीरमें लगाकर नहा ले । मृत्तिकाको अभिमन्त्रित करनेका मन्त्र इस प्रकार है—

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे ।  
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम् ॥  
उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ।  
नमस्ते सर्वलोकानां प्रभवारणि सुव्रते ॥

(८९। २२-२३)

वसुन्धरे ! तुम्हारे ऊपर अश्व और रथ चला करते हैं । भगवान् श्रीविष्णुने भी वामन-अवतार धारण करके तुम्हें एक पैरसे नापा था । मृत्तिके ! मैंने जो बुरे कर्म किये हों, मैं उस सब पापोंको तुम हर लो । देवि ! सैकड़ों भुजाओंवाले भगवान् श्रीविष्णुने वराहका रूप धारण करके तुम्हें जलसे बाहर निकाला था । तुम सम्पूर्ण लोकोंकी उत्पत्तिके लिये अरणीके समान हो—अर्थात् जैसे अरणी-काष्ठसे आग प्रकट होती है, उसी प्रकार तुमसे सम्पूर्ण लोक उत्पन्न होते हैं । सुव्रते ! तुम्हें मेरा नमस्कार है ।'

इस प्रकार स्नान करनेके पश्चात् विधिपूर्वक आचमन करके जलसे बाहर निकले और दो शुद्ध श्वेत

वस्त्र—धोती-चादर धारण करे । तदनन्तर त्रिलोकीको तृप्त करनेके लिये तर्पण करे । सबसे पहले श्रीब्रह्माका तर्पण करे; फिर श्रीविष्णु, श्रीरुद्र और प्रजापतिका तत्पश्चात् 'देवता, यक्ष, नाग, गन्धर्व, अप्सरा, असुरगण, क्रूर सर्प, गरुड, वृक्ष, जीव-जन्म, पक्षी, विद्याधर, मेघ, आकाशचारी जीव, निराधार जीव, पापी जीव तथा धर्मपरायण जीवोंको तृप्त करनेके लिये मैं उन्हें जल अर्पण करता हूँ ।' यह कहकर उन सबको जलाञ्जलि दे । देवताओंका तर्पण करते समय यज्ञोपवीतको बाये कंधेपर डाले रहे । तत्पश्चात् उसे गालेमें मालाकी भाँति कर ले और दिव्य मनुष्यों, ऋषि-पुत्रों तथा ऋषियोंका भक्तिपूर्वक तर्पण करे । सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार—ये दिव्य मनुष्य हैं । कपिल, आसुरि, बोद्ध तथा पञ्चशिख—ये प्रधान ऋषिपुत्र हैं । 'ये सभी मैं दिये हुए जलसे तृप्त हों' ऐसा कहकर इन्हें जल दे । इसी प्रकार मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, नारद तथा अन्यान्य देवर्षियों एवं ब्रह्मर्षियोंका अक्षतसहित जलके द्वारा तर्पण करे ।

इस प्रकार ऋषि-तर्पण करनेके पश्चात् यज्ञोपवीतको दायें कंधेपर करके बायें घुटनेको पृथ्वीपर टेककर बैठे । फिर अग्निश्चात्, सौम्य, हविषान्, उष्पप, कव्यवाद अनल, बर्हिषद्, पिता-पितामह आदि तथा मातामह आदि सब लोगोंका विधिवत् तर्पण करके निम्राङ्कित मन्त्रका उच्चारण करे—

येऽबान्धवा बान्धवा ये येऽन्यजन्मनि बान्धवाः ।  
ते तृप्तिमखिला यान्तु येऽप्यस्मत्तोयकाङ्क्षिणः ॥

(८९। ३५)

'जो लोग मेरे बान्धव न हों, जो मेरे बान्धव हों तथा जो दूसरे किसी जन्ममें मेरे बान्धव रहे हों, वे सब मैं दिये हुए जलसे तृप्त हों । उनके सिवा और भी जो कोई प्राणी मुझसे जलकी अभिलाषा रखते हों, वे भी तृप्ति लाभ करें ।'

यों कहकर उनकी तृप्तिके उद्देश्यसे जल गिराना चाहिये । तत्पश्चात् विधिपूर्वक आचमन करके अपने आगे कमलकी आकृति बनावे और सूर्यदेवके नामोंका

उच्चारण करते हुए अक्षत, फूल, लाल चन्दन और जलके द्वारा उन्हें यत्पूर्वक अर्थ्य दे। अर्थदानका मन्त्र इस प्रकार है—

नमस्ते विश्वरूपाय नमस्ते ब्रह्मरूपिणे ॥  
सहस्ररथये नित्यं नमस्ते सर्वतेजसे ।  
नमस्ते रुद्रवपुषे नमस्ते भक्तवत्सल ॥  
पद्मनाभं नमस्तेऽस्तु कुण्डलाङ्गदभूषित ।  
नमस्ते सर्वलोकानां सुप्रानामुपबोधन ॥  
सुकृतं दुष्कृतं चैव सर्वं पश्यसि सर्वदा ।  
सत्यदेव नमस्तेऽस्तु प्रसीद मम भास्कर ॥  
दिवाकर नमस्तेऽस्तु प्रभाकर नमोऽस्तु ते ।

(८९। ३७—४१)

‘भगवान् सूर्य ! आप विश्वरूप और ब्रह्मरूप हैं। इन दोनों रूपोंमें आपको नमस्कार है। आप सहस्रों किरणोंसे सुशोभित और सबके तेजरूप हैं, आपको सदा नमस्कार है। भक्तवत्सल ! रुद्ररूपधारी आप परमेश्वरको बारम्बार नमस्कार है। कुण्डल और अङ्गद आदि आधूषणोंसे विभूषित पद्मनाभ ! आपको नमस्कार है। भगवन् ! आप सोये हुए सम्पूर्ण लोकोंको जगानेवाले हैं; आपको मेरा प्रणाम है। आप सदा सबके पाप-पुण्यको देखा करते हैं। सत्यदेव ! आपको नमस्कार है। भास्कर ! मुझपर प्रसन्न होइये। दिवाकर ! आपको नमस्कार है। प्रभाकर ! आपको नमस्कार है।’

इस प्रकार सूर्यदेवको नमस्कार करके सात बार उनकी प्रदक्षिणा करे। फिर द्विज, गौ और सुवर्णका स्पर्श करके अपने घरमें जाय। वहाँ आश्रमवासी अतिथियोंका सत्कार तथा भगवान्‌की प्रतिमाका पूजन करे। राजन् ! घरमें पहले भक्तिपूर्वक जितेन्द्रियभावसे भगवान् गोविन्दकी विधिवत् पूजा करनी चाहिये। विशेषतः वैशाखके महीनेमें जो श्रीमधुसूदनका पूजन करता है, उसके द्वारा पूरे एक वर्षतक श्रीमाधवकी पूजा सम्पन्न हो जाती है। वैशाख मास आनेपर जब सूर्यदेव मेषराशिपर स्थित हों तो श्रीकेशवकी प्रसन्नताके लिये उनके ब्रतोंका सञ्चय करना चाहिये। अपने अभीष्टकी सिद्धिके लिये अन्न, जल, शक्कर, धेनु तथा तिलकी धेनु

आदिका दान करना चाहिये; इस कार्यमें धनकी कंजूसी उचित नहीं है। जो समूचे वैशाखभर प्रतिदिन सबेरे स्नान करता, जितेन्द्रियभावसे रहता, भगवान्‌के नाम जपता और हविष्य भोजन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

जो वैशाख मासमें आलस्य त्याग कर एकभुक्त (चौबीस घंटेमें एक बार भोजन), नक्तब्रत (केवल रातमें एक बार भोजन) अथवा अयाचितब्रत (बिना माँगी मिले हुए अन्नका एक समय भोजन) करता है, वह अपनी सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको प्राप्त कर लेता है। वैशाख मासमें प्रतिदिन दो बार गाँवसे बाहर नदीके जलमें स्नान करना, हविष्य खाकर रहना, ब्रह्मचर्यका पालन करना, पृथ्वीपर सोना, नियमपूर्वक रहना, ब्रत, दान, जप, होम और भगवान् मधुसूदनकी पूजा करना—ये नियम हजारों जन्मोंके भयंकर पापको भी हर लेते हैं। जैसे भगवान् माधव ध्यान करनेपर सारे पाप नष्ट कर देते हैं, उसी प्रकार नियमपूर्वक किया हुआ माधव मासका स्नान भी समस्त पापोंको दूर कर देता है। प्रतिदिन तीर्थ-स्नान, तिलोद्वारा पितरोंका तर्पण, धर्मघट आदिका दान और श्रीमधुसूदनका पूजन—ये भगवान्‌को संतोष प्रदान करनेवाले हैं; वैशाख मासमें इनका पालन अवश्य करना चाहिये। वैशाखमें तिल, जल, सुवर्ण, अन्न, शक्कर, वस्त्र, गौ, जूता, छाता, कमल या शङ्ख तथा घड़े—इन वस्तुओंका ब्राह्मणोंको दान करे। तीनों सम्याओंके समय एकाग्रचित्त हो विमलस्वरूपा साक्षात् भगवती लक्ष्मीके साथ परमेश्वर श्रीविष्णुका भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिये। सामयिक फूलों और फलोंसे भक्तिपूर्वक श्रीहरिका पूजन करनेके पश्चात् यथाशक्ति ब्राह्मणोंकी भी पूजा करनी चाहिये। पाखपिंडियोंसे वार्तालाप नहीं करना चाहिये। जो फूलोद्वारा विधिवत् अर्चन करके श्रीमधुसूदनकी आराधना करता है; वह सब पापोंसे मुक्त हो परम पदको प्राप्त होता है।

श्रीनारदजी कहते हैं—राजेन्द्र ! सुनो, मैं संक्षेपसे माधवके पूजनकी विधि बतला रहा हूँ। महाराज ! जिनका कहीं अन्त नहीं है, जो अनन्त और

अपार है, उन भगवान् अनन्तकी पूजा-विधिका अन्त नहीं है। श्रीविष्णुका पूजन तीन प्रकारका होता है—वैदिक, तान्त्रिक तथा मिश्र। तीनोंके ही बताये हुए विधानसे श्रीहरिका पूजन करना चाहिये। वैदिक और मिश्र पूजनकी विधि ब्राह्मण आदि तीन वर्णोंके ही लिये बतायी गयी है, किन्तु तान्त्रिक पूजन विष्णुभक्त शूद्रके लिये भी विहित है। साधक पुरुषको उचित है कि शास्त्रोक्त विधिका ज्ञान प्राप्त करके एकाग्रचित्त हो ब्रह्मचर्य-पालन करते हुए श्रीविष्णुका विधिवत् पूजन करे। भगवान्‌की प्रतिमा आठ प्रकारकी मानी गयी है—शिलामयी, धातुमयी, लोहेकी बनी हुई, लीपने योग्य मिट्टीकी बनी हुई, चित्रमयी, बालूकी बनायी हुई, मनोमयी तथा मणिमयी। इन प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा (स्थापना) दो प्रकारकी होती है—एक चल प्रतिष्ठा और दूसरी अचल प्रतिष्ठा।

राजन्! भक्त पुरुषको चाहिये कि वह जो कुछ भी सामग्री प्राप्त हो, उसीसे भक्तिभावके साथ पूजन करे। प्रतिमा-पूजनमें ज्ञान और अलंकार ही अभीष्ट हैं अर्थात् भगवद्विग्रहको ज्ञान कराकर पुष्ट आदिसे शूद्धार कर देना ही प्रधान सेवा है। श्रीकृष्णमें भक्ति रखनेवाला मनुष्य यदि केवल जल भी भगवान्‌को अर्पण करे तो वह उनकी दृष्टिमें श्रेष्ठ है; फिर गन्ध, धूप, पुष्ट, दीप और अन्न आदिका नैवेद्य अर्पण करनेपर तो कहना ही क्या है। पवित्रतापूर्वक पूजनकी सारी सामग्री एकत्रित करके पूर्वाग्र कुशोंका आसन बिछाकर उसपर बैठे; पूजन करनेवालेका मुख उत्तर दिशाकी ओर या प्रतिमाके सामने हो। फिर पाद्य, अर्घ्य, ज्ञान तथा अर्हण आदि उपचारोंकी व्यवस्था करे। उसके बाद कर्णिका और केसरसे सुशोभित अष्टदल कमल बनावे और उसके ऊपर श्रीहरिके लिये आसन रखे। तदनन्तर चन्दन, उशीर (खस) कपूर, केसर तथा अरणजासे सुवासित जलके द्वारा मन्त्रपाठपूर्वक श्रीहरिको ज्ञान कराये। वैभव हो तो प्रतिदिन इस तरहकी व्यवस्था करनी चाहिये। 'खण्डघर्ष' नामक अनुवाक, महापुरुष-विद्या, 'सहस्रशीर्षा' आदि पुरुषसूक्त तथा सामवेदोक्त नीराजना

आदि मन्त्रोद्घारा श्रीहरिको ज्ञान कराये। तत्पश्चात् विष्णुभक्त पुरुष वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभूषण, हार, गम्भ तथा अनुलेपनके द्वारा प्रेमपूर्वक भगवान्‌का यथायोग्य शूद्धार करे। पुजारीको उचित है कि वह श्रद्धापूर्वक पाद्य, आचमनीय, गन्ध, पुष्ट, अक्षत तथा धूप आदि उपहार अर्पण करे। उसके बाद गुड़, खीर, घी, पूड़ी मालपूआ, लड्डू, दूध और दही आदि नाना प्रकारके नैवेद्य निवेदन करे। पर्वके अवसरोंपर अङ्गराग लगाना, दर्पण दिखाना, दन्तधावन कराना, अभिषेक करना, अन्न आदिके बने हुए पदार्थ भोग लगाना, कीर्तन करते हुए नृत्य करना और गीत गाना आदि सेवाएँ भी करनी चाहिये। सम्भव हो तो प्रतिदिन ऐसी ही व्यवस्था रखनी चाहिये।

पूजनके पश्चात् इस प्रकार ध्यान करे—भगवान् श्रीविष्णुका श्रीविग्रह इयामवर्ण एवं तपाये हुए जाम्बूनद नामक सुवर्णके समान तेजस्वी है; भगवान्‌के शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मसे सुशोभित चार भुजाएँ हैं; उनकी आकृति शान्त है, उनका वस्त्र कमलके केसरके समान पीले रंगका है; वे मस्तकपर किरीट, दोनों हाथोंमें कड़े, गलेमें यज्ञोपवीत तथा अङ्गुलियोंमें अङ्गूठी धारण किये हुए हैं; उनके वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न है, कौस्तुभमणि उनकी शोभा बढ़ाता है तथा वे वनमाला धारण किये हुए हैं।

इस प्रकार ध्यान करते हुए पूजन समाप्त करके घीमें डुबोयी हुई समिधाओं तथा हविष्यद्वारा अग्निमें हवन करे। 'आज्यभाग' तथा 'आधार' नामक आहुतियाँ देनेके पश्चात् घृतपूर्ण हविष्यका होम करे। तदनन्तर पुनः भगवान्‌का पूजन करके उन्हें प्रणाम करे और पार्षदोंको नैवेद्य अर्पण करे। उसके बाद मुख-शुद्धिके लिये सुगच्छित द्रव्योंसे युक्त ताम्बूल निवेदन करना चाहिये। फिर छोटे-बड़े पौराणिक तथा अर्वाचीन स्तोत्रोद्घार भगवान्‌की स्तुति करके 'भगवन्! प्रसीद' (भगवन्! प्रसन्न होइये) यों कहकर प्रतिदिन दण्डवत् प्रणाम करे। अपना मस्तक भगवान्‌के चरणोंमें रखकर दोनों भुजाओंको फैलाकर परस्पर मिला दे और इस प्रकार कहे—'परमेश्वर! मैं मृत्युरुपी ग्रह तथा समुद्रसे

भयभीत होकर आपकी शरणमें आया हूँ; आप मेरी रक्षा कीजिये ।'

तदनन्तर भगवान्‌को अर्पण की हुई प्रसाद-माला आदिको आदरपूर्वक सिरपर चढ़ाये तथा यदि मूर्ति विसर्जन करने योग्य हो तो उसका विसर्जन भी करे । ईश्वरीय ज्योतिको आत्म-ज्योतिमें स्थापित कर ले । प्रतिमा आदिमें जहाँ भगवान्‌का चरण हो, वहाँ श्रद्धापूर्वक पूजन करना चाहिये तथा मनमें यह विश्वास रखना चाहिये कि 'जो सम्पूर्ण भूतोंमें तथा मेरे आत्मामें भी रम रहे हैं, वे ही सर्वात्मा परमेश्वर इस मूर्तिमें विराजमान हैं ।'

इस प्रकार वैदिक तथा तात्त्विक क्रियायोगके मार्गसे जो भगवान्‌की पूजा करता है, वह सब ओरसे अभीष्ट सिद्धिको प्राप्त होता है । श्रीविष्णु-प्रतिमाकी स्थापना करके उसके लिये सुदृढ़ मन्दिर बनवाना चाहिये तथा पूजाकर्मकी सुव्यवस्थाके लिये सुन्दर फुलवाढ़ी भी लगवानी चाहिये । बड़े-बड़े पर्वोंपर तथा प्रतिदिन पूजाकार्यका भलीभाँति निर्वाह होता रहे, इसके लिये भगवान्‌के नामसे खेत, बाजार, कसबा और गाँव आदि भी लगा देने चाहिये । यों करनेसे मनुष्य भगवान्‌के सायुज्यको प्राप्त होता है । भगवद्विग्रहकी स्थापना करनेसे सार्वभौम (सम्राट्) के पदको, मन्दिर बनवानेसे तीनों लोकोंके राज्यको, पूजा आदिकी व्यवस्था करनेसे ब्रह्मलोकको तथा इन तीनों कायेंकि अनुष्ठानसे मनुष्य भगवत्सायुज्यको प्राप्त कर लेता है । केवल अथवेध यज्ञ

करनेसे किसीको भक्तियोगकी प्राप्ति नहीं होती; भक्तियोगको तो वही प्राप्त करता है, जो पूर्वोक्त रीतिसे प्रतिदिन श्रीहरिकी पूजा करता है ।

राजन् ! वही शरीर शुभ-कल्याणका साधक है, जो भगवान् श्रीकृष्णको साष्टाङ्ग प्रणाम करनेके कारण धूलि-धूसरित हो रहा है; नेत्र भी वे ही अत्यन्त सुन्दर और तपःशक्तिसे सम्पन्न हैं, जिनके द्वारा श्रीहरिका दर्शन होता है; वही बुद्धि निर्मल और चन्द्रमा तथा शङ्खके समान उज्ज्वल है, जो सदा श्रीलक्ष्मीपतिके चिन्तनमें संलग्न रहती है तथा वही जिह्वा मधुरभाषिणी है, जो बारम्बार भगवान् नारायणका स्तवन किया करती है ।\*

खी और शूद्रोंको भी मूलमन्त्रके द्वारा श्रीहरिका पूजन करना चाहिये तथा अन्यान्य वैष्णवजनोंको भी गुरुकी बतायी हुई पद्धतिसे श्रद्धापूर्वक भगवान्‌की पूजा करनी उचित है । राजन् ! यह सब प्रसङ्ग मैंने तुम्हें बता दिया । श्रीमाधवका पूजन परम पावन है । विशेषतः वैशाख मासमें तुम इस प्रकार पूजन अवश्य करना ।

सूतजी कहते हैं—महर्षिगण ! इस प्रकार पली-सहित मन्त्रवेत्ता महाराज अम्बरीषको उपदेश दे, उनसे पूजित हो, विदा लेकर देवर्षि नारदजी वैशाख मासमें गङ्गा-स्नान करनेके लिये चले गये । लोकमें जिनका पावन सुयश फैला हुआ था, उन राजा अम्बरीषने भी मुनिकी बतायी हुई वैशाख मासकी विधिका पुण्य-बुद्धिसे पलीसहित पालन किया ।



### यम-ब्राह्मण-संवाद—नरक तथा स्वर्गमें ले जानेवाले कर्मोंका वर्णन

ऋषियोंने कहा—सूतजी ! इस विषयको पुनः विस्तारके साथ कहिये । आपके उत्तम वचनामृतोंका पान करते-करते हमें तृप्ति नहीं होती है ।

सूतजी बोले—महर्षियो ! इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास कहा करते हैं, जिसमें एक ब्राह्मण और

महात्मा धर्मराजके संवादका वर्णन है ।

ब्राह्मणने पूछा—धर्मराज ! धर्म और अधर्मके निर्णयमें आप सबके लिये प्रमाणस्वरूप हैं; अतः बताइये, मनुष्य किस कर्मसे नरकमें पड़ते हैं ? तथा किस कर्मके अनुष्ठानसे वे स्वर्गमें जाते हैं ? कृपा करके

\* यत्कृष्णप्रणिपातधूलिधवलं तद्वर्षं तद्वच्छुभं नेत्रे चेत्पसोर्जिते सुरुचिरे याभ्यां हर्दिदृश्यते ।

सा बुद्धिर्विमलेन्दुशङ्खधवला या माधवव्यापिनी सा जिह्वा मृदुभाषिणी नृप मुहुर्या स्तौति नारायणम् ॥ (९० । ४७)

इन सब बातोंका वर्णन कीजिये ।

यमराज बोले—ब्रह्मन् ! जो मनुष्य मन, वाणी तथा क्रियाद्वारा धर्मसे विमुख और श्रीविष्णुभक्तिसे रहित हैं; जो ब्रह्मा, शिव तथा विष्णुको भेदबुद्धिसे देखते हैं; जिनके हृदयमें विष्णु-विद्यासे विरक्ति है; जो दूसरोंके खेत, जीविका, घर, प्रीति तथा आशाका उच्छेद करते हैं, वे नरकोंमें जाते हैं । जो मूर्ख जीविकाका कष्ट भोगनेवाले ब्राह्मणोंको भोजनकी इच्छासे दरवाजेपर आते देख उनकी परीक्षा करने लगता है—उन्हें तुरंत भोजन नहीं देता, उसे नरकका अतिथि समझना चाहिये । जो मूढ़ अनाथ, वैष्णव, दीन, रोगातुर तथा वृद्ध मनुष्यपर दया नहीं करता तथा जो पहले कोई नियम लेकर पीछे अजितेन्द्रियताके कारण उसे छोड़ देता है, वह निश्चय ही नरकका पात्र है ।

जो सब पापोंको हरनेवाले, दिव्यस्वरूप, व्यापक, विजयी, सनातन, अजन्मा, चतुर्भुज, अच्युत, विष्णुरूप, दिव्य पुरुष श्रीनारायणदेवका पूजन, ध्यान और स्मरण करते हैं, वे श्रीहरिके परम धामको प्राप्त होते हैं—यह सनातन श्रुति है । भगवान् दामोदरके गुणोंका कीर्तन ही मङ्गलमय है, वही धनका उपार्जन है तथा वही इस जीवनका फल है । अमिततेजस्वी देवाधिदेव श्रीविष्णुके कीर्तनसे सब पाप उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे दिन निकलनेपर अस्थकार । जो प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक भगवान् श्रीविष्णुकी यशोगाथाका गान करते और सदा स्वाध्यायमें लगे रहते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं । विप्रवर !

भगवान् वासुदेवके नाम-जपमें लगे हुए मनुष्य पहलेके पापी रहे हों, तो भी भयानक यमदूत उनके पास नहीं फटकने पाते । द्विजश्रेष्ठ ! हरिकीर्तनको छोड़कर दूसरा कोई ऐसा साधन मैं नहीं देखता, जो जीवोंके सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला प्रायश्चित्त हो ।\*

जो माँगनेपर प्रसन्न होते हैं, देकर प्रिय वचन बोलते हैं तथा जिन्होंने दानके फलका परित्याग कर दिया है, वे मनुष्य स्वर्गमें जाते हैं । जो दिनमें सोना छोड़ देते हैं, सब कुछ सहन करते हैं, पर्वके अवसरपर लोगोंको आश्रय देते हैं, अपनेसे द्वेष रखनेवालोंके प्रति भी कभी द्वेषवश अहितकारक वचन मुँहसे नहीं निकालते अपितु सबके गुणोंका ही बखान करते हैं, वे मनुष्य स्वर्गमें जाते हैं । जो परायी स्त्रियोंकी ओरसे उदासीन होते हैं और सत्त्वगुणमें स्थित होकर मन, वाणी अथवा क्रियाद्वारा कभी उनमें रमण नहीं करते, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं ।

जिस-किसी कुलमें उत्पन्न होकर भी जो दयालु, यशस्वी, उपकारी और सदाचारी होते हैं, वे मनुष्य स्वर्गमें जाते हैं । जो ब्रतको क्रोधसे, लक्ष्मीको डाहसे, विद्याको मान और अपमानसे, आत्माको प्रमादसे, बुद्धिको लोभसे, मनको कामसे तथा धर्मको कुसङ्गसे बचाये रखते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं । † विप्र ! जो शुक्ल और कृष्णपक्षमें भी एकादशीको विधिपूर्वक उपवास करते हैं, वे मानव स्वर्गमें जाते हैं । समस्त बालकोंका पालन करनेके लिये जैसे माता बनायी गयी है तथा रोगियोंकी रक्षाके लिये जैसे औषधकी रचना हुई है, उसी

\* येऽर्चयन्ति हरिं देवं विष्णुं जिष्णुं सनातनम् । नारायणमजं देवं विष्णुरूपं चतुर्भुजम् ॥

ध्यायन्ति पुरुषं दिव्यमच्युतं ये स्मरन्ति च । लभन्ते ते हरिस्थानं श्रुतिरेण सनातनी ॥

इदमेव हि माङ्गल्यमिदमेव धनार्जनम् । जीवितस्य फलं चैतद् यद्यामोदरकीर्तनम् ॥

कीर्तनाद् देवदेवस्य विष्णोरमिततेजसः । दुरितानि विलीयन्ते तमांसीव दिनोदये ॥

गाथां गायन्ति ये नित्यं वैष्णवीं श्रद्धयान्विताः । स्वाध्यायनिरता नित्यं ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

वासुदेवजपासक्तानपि पापकृतो जनान् । नोपसर्वन्ति तान् विप्र यमदूताः सुदारुणाः ॥

नान्यत्पश्यामि जन्मनां विहाय हरिकीर्तनम् । सर्वप्रशमनं प्रायश्चित्तं द्विजोत्तम ॥ (९२ । १०—१६)

† यस्मिन् कस्मिन् कुले जाता दयावन्तो यशस्विनः । सानुक्रोशः सदाचारास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

ब्रतं रक्षन्ति ये कोपच्छ्रव्यं रक्षन्ति मत्सरात् । विद्यां मानापमानाभ्यां ह्यात्मानं तु प्रमादतः ॥

मति रक्षन्ति ये लेभान्पनो रक्षन्ति कामतः । धर्मं रक्षन्ति दुःसङ्गाते नराः स्वर्गगामिनः ॥ (९२ । २१—२३)

प्रकार सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षाके निमित्त एकादशी तिथिका निर्माण हुआ है। एकादशीके व्रतके समान पापसे रक्षा करनेवाला दूसरा कोई साधन नहीं है। अतः एकादशीको विधिपूर्वक उपवास करनेसे मनुष्य स्वर्गलोकमें जाते हैं।

अखिल विश्वके नायक भगवान् श्रीनारायणमें जिनकी भक्ति है, वे सत्यसे हीन और रजोगुणसे युक्त होनेपर भी अनन्त पुण्यशाली हैं तथा अन्तमें वे वैकुण्ठधारमें पधारते हैं।\* जो वेतसी, यमुना, सीता (गङ्गा) तथा पुण्यसलिला गोदावरीका सेवन और सदाचारका पालन करते हैं; जिनकी स्नान और दानमें सदा प्रवृत्ति है, वे मनुष्य कभी नरकके मार्गका दर्शन नहीं करते।† जो कल्याणदायिनी नर्मदा नदीमें गोते लगाते तथा उसके दर्शनसे प्रसन्न होते हैं, वे पापरहित हो महादेवजीके लोकमें जाते और चिरकालतक वहाँ आनन्द भोगते हैं। जो मनुष्य चर्मण्वती (चम्बल) नदीमें स्नान करके शौचसंतोषादि नियमोंका पालन करते हुए उसके तटपर—विशेषतः व्यासाश्रममें तीन रात निवास करते हैं, वे स्वर्गलोकके अधिकारी माने गये हैं। जो गङ्गाजीके जलमें अथवा प्रयाग, केदारखण्ड, पुष्कर, व्यासाश्रम या प्रभासक्षेत्रमें मृत्युको प्राप्त होते हैं, वे विष्णुलोकमें जाते हैं। जिनकी द्वारका या कुरुक्षेत्रमें मृत्यु हुई है अथवा जो योगाध्याससे मृत्युको प्राप्त हुए हैं अथवा मृत्युकालमें जिनके मुखसे 'हरि' इन दो अक्षरोंका उच्चारण हुआ है, वे सभी भगवान् श्रीहरिके प्रिय हैं।

विप्र ! जो द्वारकापुरीमें तीन रात भी ठहर जाता है, वह अपनी ग्यारह इन्द्रियोद्वारा किये हुए सारे पापोंको नष्ट करके स्वर्गमें जाता है—ऐसी वहाँकी मर्यादा है। वैष्णवब्रत (एकादशी) के पालनसे होनेवाला धर्म तथा यज्ञादिके अनुष्ठानसे उत्पन्न होनेवाला धर्म—इन दोनोंको

विधाताने तराजूपर रखकर तोला था, उस समय इनमेंसे पहलेका ही पलड़ा भारी रहा। ब्रह्मन् ! जो एकादशीका सेवन करते हैं तथा जो 'अच्युत-अच्युत' कहकर भगवन्नामका कीर्तन करते हैं, उनपर मेरा शासन नहीं चलता। मैं तो स्वयं ही उनसे बहुत डरता हूँ।

जो मनुष्य प्रत्येक मासमें एक दिन—अमावास्याको श्राद्धके नियमका पालन करते हैं और ऐसा करनेके कारण जिनके पितर सदा तृप्त रहते हैं, वे धन्य हैं। वे स्वर्गगामी होते हैं। भोजन तैयार होनेपर जो आदरपूर्वक उसे दूसरोंको परोसते हैं और भोजन देते समय जिनके चेहरेके रंगमें परिवर्तन नहीं होता, वे शिष्ट पुरुष स्वर्गलोकमें जाते हैं। जो मर्त्यलोकके भीतर भगवान् श्रीनर-नारायणके आवासस्थान बदरिकाश्रममें और नन्दा (सरस्वती)के तटपर तीन रात निवास करते हैं, वे धन्यवादके पात्र और भगवान् श्रीविष्णुके प्रिय हैं। ब्रह्मन् ! जो भगवान् पुरुषोत्तमके समीप (जगन्नाथ-पुरीमें) छः मासतक निवास कर चुके हैं, वे अच्युत-स्वरूप हैं और दर्शनमात्रसे समस्त पापोंको हर लेनेवाले हैं।

जो अनेक जन्मोंमें उपार्जित पुण्यके प्रभावसे काशीपुरीमें जाकर मणिकर्णिकाके जलमें गोते लगाते और श्रीविश्वनाथजीके चरणोंमें मस्तक झुकाते हैं, वे भी इस लोकमें आनेपर मेरे वन्दनीय होते हैं। जो श्रीहरिकी पूजा करके पृथ्वीपर कुश और तिल बिठाकर चारों ओर तिल बिखेरते और लोहा तथा दूध देनेवाली गौ दान करके विधिपूर्वक मृत्युको प्राप्त होते हैं, वे मनुष्य स्वर्गमें जाते हैं। जो पुत्रोंको उत्पन्न करके उन्हें पिता-पितामहोंके पदपर बिठाकर ममता और अहंकारसे रहित होकर मरते हैं, वे भी स्वर्गलोकके अधिकारी होते हैं। जो चोरी-

\* ये भक्तिमन्त्रो मधुसूदनस्य नारायणस्याखिलनायकस्य । सत्येन हीना रजसापि युक्ता गच्छन्ति ते नाकमनन्तपुण्याः ॥

(९२ । २७)

† वेतसीं यमुनां सीतां पुण्यां गोदावरीनदीम् । सेवन्ते ये शुभाचाराः स्नानदानपरायणाः ॥  
..... । न ते पश्यन्ति पन्थानं नरकस्य कदाचन ॥

(९२ । २८-२९)

डैकेतीसे दूर रहकर सदा अपने ही धनसे संतुष्ट रहते हैं अथवा अपने भाग्यपर ही निर्भर रहकर जीविका चलाते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो स्वागत करते हुए शुद्ध पीड़ारहित मधुर तथा पापरहित वाणीका प्रयोग करते हैं, वे लोग स्वर्गमें जाते हैं। जो दान-धर्ममें प्रवृत्त तथा धर्ममार्गके अनुयायी पुरुषोंका उत्साह बढ़ाते हैं, वे चिरकालतक स्वर्गमें आनन्द भोगते हैं। जो हेमन्त ऋतु (शीतकाल) में सूखी लकड़ी, गर्मीमें शीतलं जल तथा वर्षामें आश्रय प्रदान करता है, वह स्वर्गलोगमें सम्मानित होता है। जो नित्य-नैमित्तिक आदि समस्त पुण्यकालोंमें

भक्तिपूर्वक श्राद्ध करता है, वह निश्चय ही देवलोकका भागी होता है। दरिद्रिका दान, सामर्थ्यशालीकी क्षमा, नौजवानोंकी तपस्या, ज्ञानियोंका मौन, सुख भोगनेके योग्य पुरुषोंकी सुखेच्छा-निवृत्ति तथा सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया—ये सद्गुण स्वर्गमें ले जाते हैं।\*

ध्यानयुक्त तप भवसागरसे तारनेवाला है और पापको पतनका कारण बताया गया है; यह बिलकुल सत्य है, इसमें संदेहकी गुंजाइश नहीं है। † ब्रह्मन् ! स्वर्गकी राहपर ले जानेवाले समस्त साधनोंका मैने यहाँ संक्षेपसे वर्णन किया है; अब तुम और क्या सुनना चाहते हो ?

————★————

## तुलसीदल और अश्वत्थकी महिमा तथा वैशाख-माहात्म्यके सम्बन्धमें तीन प्रेतोंके उद्घारकी कथा

ब्राह्मणने पूछा—धर्मराज ! वैशाख मासमें प्रातःकाल स्नान करके एकाग्रचित्त हुआ पुरुष भगवान् माधवका पूजन किस प्रकार करे ? आप इसकी विधिका वर्णन करें।

धर्मराजने कहा—ब्रह्मन् ! पत्तोंकी जितनी जातियाँ हैं, उन सबमें तुलसी भगवान् श्रीविष्णुको अधिक प्रिय है। पुष्कर आदि जितने तीर्थ हैं, गङ्गा आदि जितनी नदियाँ हैं तथा वासुदेव आदि जो-जो देवता हैं, वे सभी तुलसीदलमें निवास करते हैं। अतः तुलसी सर्वदा और सब समय भगवान् श्रीविष्णुको प्रिय है। कमल और मालतीका फूल छोड़कर तुलसीका पत्ता ग्रहण करे और उसके द्वारा भक्तिपूर्वक माधवकी पूजा करे। उसके पुण्यफलका पूरा-पूरा वर्णन करनेमें शेष भी समर्थ नहीं हैं। जो बिना स्नान किये ही देवकार्य या पितृकार्यके लिये तुलसीका पत्ता तोड़ता है, उसका सारा कर्म निष्फल हो जाता है तथा वह पञ्चगव्य पान करनेसे

शुद्ध होता है। जैसे हरें बहुतेरे रोगोंको तत्काल हर लेती है, उसी प्रकार तुलसी दरिद्रता और दुःखभोग आदिसे सम्बन्ध रखनेवाले अधिक-से-अधिक पापोंको भी शीघ्र ही दूर कर देती है।‡ तुलसी काले रंगके पत्तोंवाली हो या हरे रंगकी, उसके द्वारा श्रीमधुसूदनकी पूजन करनेसे प्रत्येक मनुष्य—विशेषतः भगवान्का भक्त नसे नारायण हो जाता है। जो पूरे वैशाखभर तीनों सन्ध्याओंके समय तुलसांदलसे मधुहन्ता श्रीहरिका पूजन करता है, उसका पुनः इस संसारमें जन्म नहीं होता। फूल और पत्तोंके न मिलनेपर अन्न आदिके द्वारा—धान, गेहूँ चावल अथवा जौके द्वारा भी सदा श्रीहरिका पूजन करे। तत्पश्चात् सर्वदेवमय भगवान् विष्णुकी प्रदक्षिणा करे। इसके बाद देवताओं, मनुष्यों, पितरों तथा चराचर जगत्का तर्पण करना चाहिये।

पीपलको जल देनेसे, दरिद्रता, कालकर्णी (एक तरहका रोग), दुःखप्र, दुश्खिन्ता तथा सम्पूर्ण दुःख नष्ट

\* दानं दरिद्रस्य विभोः क्षमिलं यूनां तपो ज्ञानवतां च मौनम्। इच्छानिवृत्तिश्च सुखेचितानां दया च भूतेषु दिवं नयन्ति ॥

(९२।५८)

† तपो ध्यानसमायुक्तं तारणाय भवाम्बुधेः। पापं तु पतनायोक्तं सत्यमेव न संशयः ॥ (९२।६०)

‡ दरिद्र्यदुःखभोगादिपापानि सुबहून्यपि ॥ तुलसी हरते क्षिप्रं रोगानिव हरीतकी । (९४।८-९)

हो जाते हैं। जो बुद्धिमान् पीपलके पेड़की पूजा करता है, उसने अपने पितरोंको तृप्ति कर दिया, भगवान् विष्णुकी आराधना कर ली तथा सम्पूर्ण ग्रहोंका भी पूजन कर लिया। अष्टाङ्गयोगका साधन, स्नान करके पीपलके वृक्षका सिंचन तथा श्रीगोविन्दका पूजन करनेसे मनुष्य कभी दुर्गतिको नहीं प्राप्त होता। जो सब कुछ करनेमें असमर्थ हो, वह खी या पुरुष यदि पूर्वोक्त नियमोंसे युक्त होकर वैशाखकी त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा—तीनों दिन भक्तिसे विधिपूर्वक प्रातःस्नान करे तो सब पातकोंसे मुक्त होकर अक्षय स्वर्गका उपभोग करता है। जो वैशाख मासमें प्रसन्नताके साथ भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराता है तथा तीन राततक प्रातःकाल एक बार भी स्नान करके संयम और शौचका पालन करते हुए श्वेत या काले तिलोंको मधुमें मिलाकर बारह ब्राह्मणोंको दान देता है और उन्हींके द्वारा स्वस्तिवाचन करता है तथा 'मुझपर धर्मराज प्रसन्न हो' इस उद्देश्यसे देवताओं और पितरोंका तर्पण करता है, उसके जीवनभरके किये हुए पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं। जो वैशाखकी पूर्णिमाको मणिक (मटका), जलके घड़े, पकवान तथा सुवर्णमय दक्षिणा दान करता है, उसे अश्वमेधयज्ञका फल मिलता है।

इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास कहा जाता है, जिसमें एक ब्राह्मणका महान् वनके भीतर प्रेतोंके साथ संवाद हुआ था। मध्यदेशमें एक धनशर्मा नामक ब्राह्मण रहता था; उसमें पापका लेशमात्र भी नहीं था। एक दिन वह कुश आदिके लिये वनमें गया। वहाँ उसने एक अद्भुत बात देखी। उसे तीन महाप्रेत दिखायी दिये, जो बड़े ही दुष्ट और भयंकर थे। धनशर्मा उन्हें देखकर डर गया। उन प्रेतोंके केश ऊपरको उठे हुए थे। लाल-लाल आँखें, काले-काले दाँत और सूखा हुआ उनका पेट था।

धनशर्मनि पूछा—तुमलेग कौन हो? यह

नारकी अवस्था तुम्हें कैसे प्राप्त हुई? मैं भयसे आतुर और दुःखी हूँ, दयाका पात्र हूँ; मेरी रक्षा करो। मैं भगवान् विष्णुका दास हूँ, मेरी रक्षा करनेसे भगवान् तुमलेगोंका भी कल्याण करेगे। भगवान् विष्णु ब्राह्मणोंके हितैषी हैं, मुझपर दया करनेसे वे तुम्हारे ऊपर संतुष्ट होंगे। श्रीविष्णुका अल्सीके पुष्टके समान श्याम वर्ण है; वे पीताम्बरधारी हैं, उनका नाम श्रवण करने-मात्रसे सब पापोंका क्षय हो जाता है। भगवान् आदि और अन्तसे रहित, शङ्ख, चक्र एवं गदा धारण करनेवाले, अविनाशी, कमलके समान नेत्रोंवाले तथा प्रेतोंको मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं।

यमराज कहते हैं—ब्रह्मन्! भगवान् विष्णुका नाम सुननेमात्रसे वे पिशाच संतुष्ट हो गये। उनका भाव पवित्र हो गया। वे दया और उदारताके वशीभूत हो गये। ब्राह्मणके कहे हुए वचनसे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई थी। उसके पूछनेपर वे प्रेत इस प्रकार बोले।

प्रेतोंने कहा—विष्र! तुम्हारे दर्शनमात्रसे तथा भगवान् श्रीहरिका नाम सुननेसे हम इस समय दूसरे ही भावको प्राप्त हो गये—हमारा भाव बदल गया, हम दयालु हो गये। वैष्णव पुरुषका समागम निश्चय ही पापोंको दूर भगाता, कल्याणसे संयोग करता तथा शीघ्र ही यशका विस्तार करता है।\* अब हमलेगोंका परिचय सुनो। यह पहला 'कृतज्ञ' नामका प्रेत है, इस दूसरेका नाम 'विदैवत' है तथा तीसरा मैं हूँ, मेरा नाम 'अवैशाख' है, मैं तीनोंमें अधिक पापी हूँ। इस प्रथम पापीने सदा ही कृतज्ञता की है; अतः इसके कर्मके अनुसार ही इसका 'कृतज्ञ' नाम पड़ा है। ब्रह्मन्! यह पूर्वजन्ममें 'सुदास' नामक द्रोही मनुष्य था, सदा कृतज्ञता किया करता था, उसी पापसे यह इस अवस्थाको पहुँचा है। अत्यन्त पापी, धूर्त तथा गुरु और स्वामीका अहित करनेवाले मनुष्यके लिये भी पापोंसे

\* दर्शनैव ते विष्र नामश्रवणतो ह्रेः। भावमन्यमनुप्राप्ता वयं जाता दयाल्वः ॥

अपाकरोति दुर्लिं श्रेयः संयोजयत्यपि। यशो विस्तारयत्याशु नूनं वैष्णवसङ्गमः ॥ (१४। ५४-५५)

छूटनेका उपाय है; परन्तु कृतघ्रके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं है।\*

इस दूसरे पापीने देवताओंका पूजन किये बिना ही सदा अन्न भोजन किया है, इसने गुरु और ब्राह्मणोंको कभी दान नहीं दिया है; इसीलिये इसका नाम 'विदैवत' हुआ है। यह पूर्वजन्ममें 'हरिवीर' नामसे विख्यात राजा था। दस हजार गाँवोंपर इसका अधिकार था। यह रोष, अहंकार तथा नास्तिकताके कारण गुरुजनोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेमें तत्पर रहता था। प्रतिदिन पञ्च-महायज्ञोंका अनुष्ठान किये बिना ही स्नान और ब्राह्मणोंकी निन्दा किया करता था। उसी पापकर्मके कारण यह बड़े-बड़े नरकोंका कष्ट भोगकर इस समय 'विदैवत' नामक प्रेत हुआ है।

'अवैशाख' नामक तीसरा प्रेत मैं हूँ। मैं पूर्वजन्ममें ब्राह्मण था। मध्यदेशमें मेरा जन्म हुआ था। मेरा नाम भी गौतम था और गोत्र भी। मैं 'वासपुर' गाँवमें निवास करता था। मैंने वैशाख मासमें भगवान् माधवकी प्रसन्नताके उद्देश्यसे कभी स्नान नहीं किया। दान और हवन भी नहीं किया। विशेषतः वैशाख माससे सम्बन्ध रखनेवाला कोई कर्म नहीं किया। वैशाखमें भगवान् मधुसूदनका पूजन नहीं किया तथा विद्वान् पुरुषोंको दान आदिसे संतुष्ट नहीं किया। वैशाख मासकी एक भी पूर्णिमाको, जो पूर्ण फल प्रदान करनेवाली है, मैंने स्नान, दान, शुभकर्म, पूजा तथा पुण्यके द्वारा उसके ब्रतका पालन नहीं किया। इससे मेरा सारा वैदिक कर्म निष्फल हो गया। मैं 'अवैशाख' नामक प्रेत होकर सब ओर विचरता हूँ।

हम तीनोंके प्रेतयोनिमें पड़नेका जो कारण है, वह सब मैंने तुम्हें बता दिया। अब तुम हमलोगोंका पापसे उद्धार करो; क्योंकि तुम विप्र हो। ब्रह्मन्! पुण्यात्मा साधु पुरुष तीर्थोंसे भी बढ़कर हैं। वे शरणमें आये हुए महान् पापियोंको भी नरकसे तार देते हैं। जो मनुष्य सदा

गङ्गा आदि सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करता है तथा जो केवल साधु पुरुषोंका सङ्ग करता है, उनमें साधु-सङ्ग करनेवाला पुरुष ही श्रेष्ठ है।† अतः तुम मेरा उद्धार करो अथवा मेरा एक पुत्र है, जो धनशर्मा नामसे विख्यात है; स्वामिन्! तुम उसीके पास जाकर ये सब बातें समझाओ। हमारे लिये इतना परिश्रम करो। जो दूसरोंका कार्य उपस्थित होनेपर उसके लिये उद्योग करता है, उसे उसका पूरा फल मिलता है; वह यज्ञ, दान और शुभकर्मोंसे भी अधिक फलका भागी होता है।

यमराज कहते हैं—ब्रह्मन्! उस प्रेतका वचन सुनकर धनशर्माको बड़ा दुःख हुआ। उसने यह जान लिया कि ये मेरे पिता हैं, जो नरकमें पड़े हुए हैं। तब वह सर्वथा अपनी निन्दा करते हुए बोला।

धनशर्माने कहा—स्वामिन्! मैं ही गौतमका—आपका पुत्र धनशर्मा हूँ। मैं आपके किसी काम न आया, मेरा जन्म निरर्थक है। जो पुत्र आलस्य छोड़कर अपने पिताका उद्धार नहीं करता, वह अपनेको पवित्र नहीं कर पाता। जो इस लोक और परलोकमें भी सुखका संतान—विस्तार कर सके, वही संतान या तनय माना गया है। इस लोकमें धर्मकी दृष्टिसे पुरुषके दो ही गुरु हैं—पिता और माता। इनमें भी पिता ही श्रेष्ठ है; क्योंकि सर्वत्र बीजकी ही प्रधानता देखी जाती है। पिताजी! क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? कैसे आपकी गति होगी? मैं धर्मका तत्त्व नहीं जानता, केवल आपकी आज्ञाका पालन करूँगा।

प्रेत बोला—बेटा! घर जाओ और यमुनामें विधिपूर्वक स्नान करो। आजसे पाँचवें दिन वैशाखकी पूर्णिमा आनेवाली है, जो सब प्रकारकी उत्तम गति प्रदान करनेवाली तथा देवता और पितरोंके पूजनके लिये उपयुक्त है। उस दिन पितरोंके निमित्त भक्तिपूर्वक तिलमिश्रित जल, जलका घड़ा, अन्न और फल दान करना चाहिये। उस दिन जो श्राद्ध किया जाता है, वह

\* अतिपापिनि धूर्ते च गुरुस्वाम्यहितेऽपि वा। निष्कृतिर्विद्यते विप्र कृतघ्रे नास्ति निष्कृतिः ॥ (९४ । ६०)

† गङ्गादिसर्वतीर्थेषु यो नरः स्नाति सर्वदा। यः करोति सतां सङ्गं तथोः सत्सङ्गमो वरः ॥ (९४ । ७६)

पितरोंको हजार वर्षोंतक आनन्द प्रदान करनेवाला होता है। जो वैशाखकी पूर्णिमाको विधि-पूर्वक स्नान करके दस ब्राह्मणोंको खीर भोजन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो धर्मराजकी प्रसन्नताके लिये जलसे भरे हुए सात घड़े दान करता है, वह अपनी सात पीढ़ियोंको तार देता है। बेटा ! त्रयोदशी, चतुर्दशी तथा पूर्णिमाको भक्तिपरायण होकर स्नान, जप, दान, होम और श्रीमाध्वका पूजन करो और उससे जो फल हो, वह हमलोगोंको समर्पित कर दो। ये दोनों प्रेत भी मेरे परिचित हो गये हैं; अतः इनको इसी अवस्थामें छोड़कर मैं खर्गमें नहीं जा सकता। इन दोनोंके पापका भी अन्त आ गया है।

यमराज कहते हैं—ब्रह्मन् ! 'बहुत अच्छा' कहकर वह श्रेष्ठ ब्राह्मण अपने घर गया और वहाँ जाकर उसने सब कुछ उसी तरह किया। वह प्रसन्नतापूर्वक परम भक्तिके साथ वैशाख-स्नान और दान करने लगा। वैशाखकी पूर्णिमा आनेपर उसने आनन्दपूर्वक भक्तिसे स्नान किया और बहुत-से दान करके उन सबको पृथक्-पृथक् पुण्य प्रदान किया। उस पवित्र दानके संयोगसे वे सब आनन्दमग्न हो विमानपर बैठकर तत्क्षण ही खर्गको चले गये।

ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ धनशर्मा भी श्रुति, सृति और पुराणोंका ज्ञाता था। वह चिरकालतक उत्तम भोग भोगकर अन्तमें ब्रह्मलोकको प्राप्त हुआ। अतः यह वैशाखकी पूर्णिमा परम पुण्यमयी और समस्त विश्वको पवित्र करनेवाली है। इसका माहात्म्य बहुत बड़ा है, अतएव मैंने संक्षेपसे तुम्हें इसका महत्व बतला दिया है।

जो वैशाख मासमें प्रातःकाल स्नान करके नियमोंके पालनसे विशुद्धचित हो भगवान् मधुसूदनकी पूजा करते हैं, वे ही पुरुष धन्य हैं, वे ही पुण्यात्मा हैं तथा वे ही संसारमें पुरुषार्थके भागी हैं। जो मनुष्य वैशाख मासमें सबेरे स्नान करके सम्पूर्ण यम-नियमोंसे युक्त हो भगवान् लक्ष्मीपतिकी आराधना करता है, वह निश्चय ही अपने पापोंका नाश कर डालता है। जो प्रातःकाल उठकर श्रीविष्णुकी पूजाके लिये गङ्गाजीके जलमें डुबकी लगाते हैं, उन्हों पुरुषोंने समयका सदुपयोग किया है, वे ही मनुष्योंमें धन्य तथा पापरहित हैं। वैशाख मासमें प्रातःकाल नियमयुक्त हो मनुष्य जब तीर्थमें स्नान करनेके लिये पैर बढ़ाता है, उस समय श्रीमाध्वके स्मरण और नामकीर्तनसे उसका एक-एक पग अश्वमेध-यज्ञके समान पुण्य देनेवाला होता है। श्रीहरिके प्रियतम वैशाख मासके व्रतका यदि पालन किया जाय तो यह मेरुपर्वतके समान बड़े उग्र पापोंको भी जलाकर भस्म कर डालता है। विप्रवर ! तुमपर अनुग्रह होनेके कारण मैंने यह प्रसङ्ग संक्षेपसे तुम्हें बता दिया है। जो मेरे कहे हुए इस इतिहासको भक्तिपूर्वक सुनेगा, वह भी सब पापोंसे मुक्त हो जायगा तथा उसे मेरे लोक—यमलोकमें नहीं आना पड़ेगा। वैशाख मासके व्रतका विधिपूर्वक पालन करनेसे अनेकों बारके किये हुए ब्रह्महत्यादि पाप भी नष्ट हो जाते हैं—यह निश्चित बात है। वह पुरुष अपने तीस पीढ़ी पहलेके पूर्वजों और तीस पीढ़ी बादकी संतानोंको भी तार देता है; क्योंकि अनायास ही नाना प्रकारके कर्म करनेवाले भगवान् श्रीहरिको वैशाख मास बहुत ही प्रिय है; अतएव वह सब मासोंमें श्रेष्ठ है।

## ————★————

### वैशाख-माहात्म्यके प्रसङ्गमें राजा महीरथकी कथा और यम-ब्राह्मण-संवादका उपसंहार

यमराज कहते हैं—ब्रह्मन् ! पूर्वकालकी बात है, महीरथ नामसे विख्यात एक राजा थे। उन्हें अपने पूर्वजन्मके पुण्योंके फलस्वरूप प्रचुर ऐश्वर्य और सम्पत्ति प्राप्त हुई थी। परन्तु राजा राज्यलक्ष्मीका सारा भार मन्त्रीपर रखकर स्वयं विषयभोगमें आसक्त हो रहे थे।

वे न प्रजाकी ओर दृष्टि डालते थे न धनकी ओर। धर्म और अर्थका काम भी कभी नहीं देखते थे। उनकी वाणी तथा उनका मन कामिनियोंकी क्रीड़ामें ही आसक्त था। राजाके पुरोहितका नाम कश्यप था; जब राजाको विषयोंमें रमते हुए बहुत दिन व्यतीत हो गये, तब

पुरोहितने मनमें विचार किया—‘जो गुरु मोहवश राजाको अधर्मसे नहीं रोकता, वह भी उसके पापका भागी होता है; यदि समझानेपर भी राजा अपने पुरोहितके वचनोंकी अवहेलना करता है तो पुरोहित निर्दोष हो जाता है। उस दशामें राजा ही सारे दोषोंका भागी होता है।’ यह सोचकर उन्होंने राजासे धर्मानुकूल वचन कहा।

**कश्यप बोले**—राजन् ! मैं तुम्हारा गुरु हूँ, अतः धर्म और अर्थसे युक्त मेरे वचनोंको सुनो। राजाके लिये यही सबसे बड़ा धर्म है कि वह गुरुकी आज्ञामें रहे। गुरुकी आज्ञाका आंशिक पालन भी राजाओंकी आयु, लक्ष्मी तथा सौख्यको बढ़ानेवाला है। तुमने दानके द्वारा कभी ब्राह्मणोंको तृप्त नहीं किया; भगवान् श्रीविष्णुकी आराधना नहीं की; कोई व्रत, तपस्या तथा तीर्थ भी नहीं किया। महाराज ! कितने खेदकी बात है कि तुमने कामके अधीन होकर कभी भगवान्‌के नामका स्मरण नहीं किया। अबलाओंकी संगतिमें पड़कर विद्वानोंकी संगति नहीं की। जिसका मन स्थियोंने हर लिया, उसे अपनी विद्या, तपस्या, त्याग, नीति तथा विवेकशील चित्तसे क्या लाभ हुआ।\* एकमात्र धर्म ही सबसे महान् और श्रेष्ठ है, जो मृत्युके बाद भी साथ जाता है। शरीरके उपभोगमें आनेवाली अन्य जितनी वस्तुएँ हैं, वे सब यहीं नष्ट हो जाती हैं। धर्मकी सहायतासे ही मनुष्य दुर्गतिसे पार होता है। राजेन्द्र ! क्या तुम नहीं जानते, मनुष्योंके जीवनका विलास जलकी उत्ताल तरङ्गोंके समान चञ्चल एवं अनित्य है। जिनके लिये विनय ही पगड़ी और मुकुट है, सत्य और धर्म ही कुण्डल हैं तथा त्याग ही कंगन है, उन्हें जड़ आभूषणोंकी क्या आवश्यकता है। मनुष्यके निर्जीव शरीरको ढेले और काठके समान

पृथ्वीपर फेंक, उसके बन्धु-बान्धव मुँह फेरकर चल देते हैं; केवल धर्म ही उसके पीछे-पीछे जाता है। सब कुछ जा रहा है, आयु प्रतिदिन क्षीण हो रही है तथा यह जीवन भी लुप्त होता जा रहा है; ऐसी अवस्थामें भी तुम उठकर भागते क्यों नहीं ? खी-पुत्र आदि कुटुम्ब, शरीर तथा द्रव्य-संग्रह—ये सब पराये हैं, अनित्य हैं; किन्तु पुण्य और पाप अपने हैं। जब एक दिन सब कुछ छोड़कर तुम्हें विवशतापूर्वक जाना ही है तो तुम अनर्थमें फँसकर अपने धर्मका अनुष्ठान क्यों नहीं करते ? मरनेके बाद उस दुर्गम पथपर अकेले कैसे जा सकोगे, जहाँ न ठहरनेके लिये स्थान, न खानेयोग्य अन्न, न पानी, न राहखर्च और न राह बतानेवाला कोई गुरु ही है। यहाँसे प्रस्थान करनेके बाद तुम्हारे पीछे कुछ भी नहीं जायगा, केवल पाप और पुण्य जाते समय तुम्हारे पीछे-पीछे जायँगे।†

**अतः** अब तुम आलस्य छोड़कर वेदों तथा स्मृतियोंमें बताये हुए देश और कुलके अनुरूप हितकारक कर्मका अनुष्ठान करो, धर्ममूलक सदाचारक सेवन करो। अर्थ और काम भी यदि धर्मसे रहित हों तो उनका परित्याग कर देना चाहिये। दिन-रात इन्द्रिय-विजयरूपी योगका अनुष्ठान करना चाहिये; क्योंकि जितेन्द्रिय राजा ही प्रजाको अपने वशमें रख सकता है। लक्ष्मी अत्यन्त प्रगल्भ रमणीके कटाक्षके समान चञ्चल होती है, विनयरूपी गुण धारण करनेसे ही वह राजाओंके पास दीर्घकालतक ठहरती है। जो अत्यन्त कामी और घमंडी है, जिनका सारा कार्य बिना विचारे ही होता है, उन मूढ़चेता राजाओंकी सम्पत्ति उनकी आयुके साथ ही नष्ट हो जाती है। व्यसन और मृत्यु—इनमें व्यसनको ही

\* कि विद्या कि तपसा कि त्यागेन नयेन वा। किं विविक्तेन मनसा खीभिर्यस्य मनो हतम्॥ (९५। १४)

† मृतं शरीरमुत्सृज्य लोष्टकाष्ठसमं भुवि। विमुखा बान्धवा यात्ति धर्मस्तमनुगच्छति॥

गम्यमनेषु सर्वेषु श्रीयमाणे तथायुषि। जीविते लुप्यमाने च किमुत्थाय न धावसि॥

कुटुम्बं पुत्रदारादि शरीरं द्रव्यसञ्चयः। पारक्यमधुवं किन्तु खीये सुकृतदुष्कृते॥

यदा सर्वं परित्यज्य गन्तव्यमवशेन ते। अनर्थे कि प्रसक्तस्त्वं स्वधर्मं नानुतिष्ठसि॥

अविश्राममभक्ष्याम्बुमपाथेयमदेशिकम्। मृतः कान्तारमध्वानं कथमेको गमिष्यसि॥

न हि लं प्रस्थितं किञ्चित् पृष्ठतोऽनुगमिष्यति। दुष्कृतं सुकृतं च लं यास्यन्तमनुयास्यति॥ (९५। १९—२४)

कष्टदायक बताया गया है। व्यसनमें पड़े हुए राजाकी अधोगति होती है और जो व्यसनसे दूर रहता है, वह स्वर्गलोकमें जाता है।\* व्यसन और दुःख विशेषतः कामसे ही उत्पन्न होते हैं; अतः कामका परित्याग करो। पापोंमें फँस जानेपर वैभव एवं भोग स्थिर नहीं रहते; वे शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। चलते, रुकते, जागते और सोते समय भी जिसका चित्त विचारमें संलग्न नहीं रहता वह जीते-जी भी मेरे हुएके ही तुल्य है। विद्वान् पुरुष विषय-चिन्ता छोड़कर समतापूर्ण, स्थिर एवं व्यावहारिक युक्तिसे परमार्थका साधन करते हैं। जीवका चित्त बालककी भाँति चपल होता है; अतः उससे बलपूर्वक काम लेना चाहिये। राजन्! धर्मके तत्त्वदर्शी वृद्ध पुरुषोंकी बुद्धिका सहारा ले पराबुद्धिके द्वारा अपने कुपथगामी चित्तको वशमें करना चाहिये। लौकिक धर्म, मित्र, भाई-बन्धु, हाथ-पैरोंका चलाना, देशान्तरमें जाना, शरीरसे क्लेश उठाना तथा तीर्थके लिये यत्न करना आदि कोई भी परमपदकी प्राप्तिमें सहायता नहीं कर सकते; केवल परमात्मामें मन लगाकर उनका नाम-जप करनेसे ही उस पदकी प्राप्ति होती है।

इसलिये राजन्! विद्वान् पुरुषको उचित है कि वह विषयोंमें प्रवृत्त हुए चित्तको रोकनेके लिये यत्न करे। यत्नसे वह अवश्य ही वशमें हो जाता है। यदि मनुष्य मोहमें पड़ जाय—स्वयं विचार करनेमें असमर्थ हो जाय तो उसे विद्वान् सुहदोंके पास जाकर प्रश्न करना चाहिये। वे पूछनेपर यथोचित कर्तव्यका उपदेश देते हैं। कल्याणकी इच्छा रखनेवालेको हर एक उपायसे काम और क्रोधका निग्रह करना चाहिये; क्योंकि वे दोनों कल्याणका विघात करनेके लिये उद्यत रहते हैं। राजन्! काम बड़ा बलवान् है; वह शरीरके भीतर रहनेवाला महान् शत्रु है। श्रेयकी अभिलाषा रखनेवाले पुरुषको उसके अधीन नहीं होना चाहिये। अतः विधिपूर्वक पालन किया हुआ धर्म ही सबसे श्रेष्ठ है। इसलिये तुम धैर्य धारण करके धर्मका ही आचरण करो। यह श्वास

बड़ा चञ्चल है, जीवन उसीके अंधीन है। ऐसी स्थितिमें भी कौन मनुष्य धर्मके आचरणमें विलम्ब करेगा। राजन्! जो वृद्धावस्थाको प्राप्त हो चुका है, उसका चित्त भी इन निषिद्ध विषयोंकी ओरसे नहीं हटता; हाय ! यह कितने शोककी बात है। पृथ्वीनाथ ! इस कामके मोहमें पड़कर तुम्हारी सारी उम्र व्यर्थ बीत गयी, अब भी तो अपने हित-साधनमें लगो। राजन् ! तुम्हारे लिये सर्वोत्तम हितकी बात कहता हूँ; क्योंकि मैं तुम्हारा पुरोहित और तुम्हारे भले-बुरे कर्मोंका भागी हूँ। मुनीश्वरोंने ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी, गुरुपलीगमन आदि महापातक बताये हैं; उनमेंसे मनुष्योद्धारा मन, वाणी और शरीरसे भी किये हुए जो पाप हैं, उन्हें वैशाख मास नष्ट कर देता है। जैसे सूर्य अन्धकारका नाश करता है, उसी प्रकार वैशाख मास पापरूपी महान् अन्धकारको सर्वथा नष्ट कर डालता है। इसलिये तुम विधिपूर्वक वैशाख-ब्रतका पालन करो। राजन् ! मनुष्य वैशाख मासकी विधिके अनुष्ठानद्वारा होनेवाले पुण्यके प्रभावसे जन्मभरके किये हुए घोर पापोंका परित्याग करके परमधारमको प्राप्त होता है। इसलिये महाराज ! तुम भी इस वैशाख मासमें प्रातःस्नान करके विधिपूर्वक भगवान् मधुसूदनकी पूजा करो। जिस प्रकार कूटने-छाँटनेकी क्रियासे चावलकी भूसी छूट जाती है, माँजनेसे तांबेकी कालिख मिट जाती है, उसी प्रकार शुभ कर्मका अनुष्ठान करनेसे पुरुषके अन्तःकरणका मल धुल जाता है।

राजाने कहा—सौम्य स्वभाववाले गुरुदेव ! आपने मुझे वह अमृत पिलाया, जिसका आविर्भाव समुद्रसे नहीं हुआ है। आपका वचन संसाररूपी रोगका निवारण तथा दुर्व्यसनोंसे मुक्त करनेवाला द्रव्यधिन औषध है। आपने कृपा करके मुझे आज इस औषधका पान कराया है। विश्रव ! सत्पुरुषोंका समागम मनुष्योंको हर्ष प्रदान करनेवाली, उनके पापको दूर भगानेवाली तथा जरा-मृत्युका अपहरण करनेवाली संजीवनी बूटी है। इस पृथ्वीपर जो-जो मनोरथ दुर्लभ

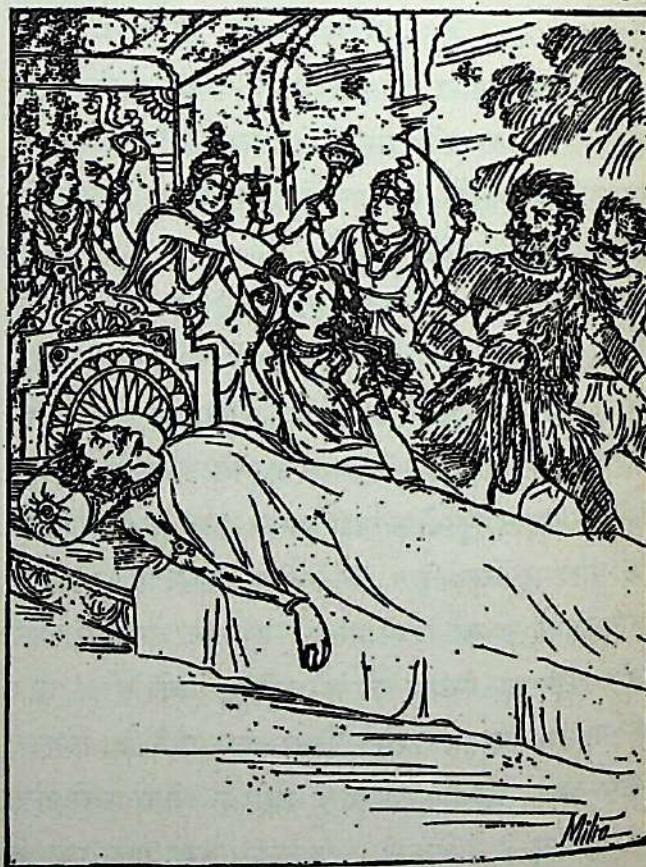
माने गये हैं, वे सब यहाँ साधु पुरुषोंके सङ्गसे प्राप्त हो जाते हैं। जो पापोंका अपहरण करनेवाली सत्सङ्गकी गङ्गामें स्नान कर चुका है, उसे दान, तीर्थसेवन, तपस्या तथा यज्ञ करनेकी क्या आवश्यकता है।\* प्रभो ! आजके पहले मेरे मनमें जो-जो भाव उठते थे, वे सब केवल काम-सुखके प्रति लोभ उत्पन्न करनेवाले थे; परन्तु आज आपके दर्शनसे तथा वचन सुननेसे उनमें विपरीत भाव आ गया। मूर्ख मनुष्य एक जन्मके सुखके लिये हजारों जन्मोंका सुख नष्ट करता है और विद्वान् पुरुष एक जन्मसे हजारों जन्म बना लेते हैं। हाय ! हाय ! कितने खेदकी बात है कि मुझ मूर्खनि अपने मनको सदा कामजनित रसके आस्वादन-सुखमें ही फँसाये रखनेके कारण कभी कुछ भी आत्म-कल्याणका कार्य नहीं किया। अहो ! मेरे मनका कैसा मोह है, जिससे मैंने स्त्रियोंके फेरमें पड़कर अपने आत्माको घोर विपत्तिमें डाल दिया, जिसका भविष्य अत्यन्त दुःखमय है तथा जिससे पार पाना बहुत कठिन है। भगवन् ! आपने स्वतः संतुष्ट होकर अपनी वाणीसे आज मुझे मेरी स्थितिका बोध करा दिया। अब उपदेश देकर मेरा उद्धार कीजिये। पूर्वजन्ममें मैंने कोई पुण्य किया था, जिससे आपने मुझे बोध कराया है। विशेषतः आपके चरणोंकी धूलिसे आज मैं पवित्र हो गया। वक्ताओंमें श्रेष्ठ ! अब आप मुझे वैशाख मासकी विधि बताइये।

कश्यपजी बोले—राजन् ! बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह बिना पूछे अथवा अन्यायपूर्वक पूछनेपर किसीको उपदेश न दे। लोकमें जानते हुए भी जडवत्—अनजानकी भाँति आचरण करे।† परन्तु विद्वानों, शिष्यों, पुत्रों तथा श्रद्धालु पुरुषोंको उनके हितकी बात कृपापूर्वक बिना पूछे भी बतानी चाहिये।‡ राजन् ! इस समय तुम्हारु मन धर्ममें स्थित हुआ है, अतः तुम्हें

वैशाख-स्नानके उत्तम व्रतका पालन कराऊँगा।

तदनन्तर पुरोहित कश्यपने राजा महीरथसे वैशाख मासमें स्नान, दान और पूजन कराया। शास्त्रमें वैशाख-स्नानकी जैसी विधि उन्होंने देखी थी, उसका पूरा-पूरा पालन कराया। राजा महीरथने भी गुरुकी प्रेरणासे उस समय विधिपूर्वक सब नियमोंका पालन किया तथा माधव मासका जो-जो विधान उन्होंने बताया, वह सब आदरपूर्वक सुना। उन नृपश्रेष्ठने प्रातःकाल स्नान करके भक्ति-भावके साथ पाद्य और अर्ध्य आदि देकर श्रीहरिका पूजन किया तथा नैवेद्य भोग लगाया।

यमराज कहते हैं—ब्रह्मन् ! तत्पश्चात् राजाके ऊपर कालकी दृष्टि पड़ी। अधिक मात्रामें रतिका सेवन करनेसे उन्हें क्षयका रोग हो गया था, जिससे उनका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया; अन्ततोगत्वा उनकी मृत्यु



\* हर्षप्रदो नृणां पापहानिकृज्जीवनौषधम्। जरामृत्युहरो विप्र सद्दिः सह समागमः ॥

यानि यानि दुरापानि वाच्छित्तानि महीतले। प्राप्यन्ते तानि तान्येव साधुनापीह संगमात् ॥

यः स्नातः पापहरया साधुसंगमगङ्ग्या। किं तस्य दानैः किं तीर्थैः किं तपोभिः किमध्वरैः ॥ (१६। ३—५)

† नापृष्ठः कस्यचिद् ब्रूयात् चान्यायेन पृच्छतः। जानन्त्रयि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत्॥ (१६। १७)

‡ विदुषामथ शिष्याणां पुत्राणां च कृपावता। अपृष्टमपि वक्तव्यं श्रेयः श्रद्धावतां हितम्॥ (१६। १८)

हो गयी। उस समय मेरे तथा भगवान् विष्णुके दूत भी उन्हें लेने पहुँचे। विष्णुदूतोंने 'ये राजा धर्मात्मा हैं' यों कहकर मेरे सेवकोंको डाँटा और स्वयं राजाको विमानपर बिठाकर वे वैकुण्ठलोकमें ले गये। वैशाख मासमें प्रातःकाल स्नान करनेसे राजाका पातक नष्ट हो चुका था। भगवान् विष्णुके दूत अत्यन्त चतुर होते हैं; वे भगवान्की आज्ञाके अनुसार राजा महीरथको नरक-मार्गके निकटसे ले चले। जाते-जाते राजाने नरकमें पकाये जानेके कारण घोर चील्कार करनेवाले नारकीय जीवोंका आर्तनाद सुना। कड़ाहमें डालकर औटाये जानेवाले पापियोंका क्रन्दन बड़ा भयंकर था। सुनकर राजाको बड़ा विस्मय हुआ। वे अत्यन्त दुःखी होकर दूतोंसे बोले—'जीवोंके कराहनेकी यह भयंकर आवाज क्यों सुनायी दे रही है? इसमें क्या कारण है? आपलोग सब बातें बतानेकी कृपा करें।'

**विष्णुदूत बोले—**जिन प्राणियोंने धर्मकी मर्यादाका परित्याग किया है, जो पापाचारी एवं पुण्यहीन हैं, वे तामिस्त आदि भयंकर नरकोंमें डाले गये हैं। पापी मनुष्य प्राण-त्यागके पश्चात् यमलोकके मार्गमें आकर भयानक दुःख भोगते हैं। यमराजके भयंकर दूत उन्हें इधर-उधर घसीटते हैं और वे अन्धकारमें गिर पड़ते हैं। उन्हें आगमें जलाया जाता है। उनके शरीरमें कौटे चुभाये जाते हैं। उनको आरीसे चीरा जाता है तथा वे भूख-प्याससे पीड़ित रहते हैं। पीब और रक्तकी दुर्गम्भिके कारण उन्हें बार-बार मूर्छा आ जाती है। कहीं वे खौलते हुए तेलमें औटाये जाते हैं; कहीं उनपर मूसलोंकी मार पड़ती है और कहीं तपाये हुए लोहेकी शिलाओंपर डालकर उन्हें पकाया जाता है। कहीं वमन, कहीं पीब और कहीं रक्त उन्हें खानेको मिलता है। मुर्दोंकी दुर्गम्भिके भेरे हुए करोड़ों नरक हैं, जहाँ 'शारपत्र' वन है, 'शिलापात'के स्थान हैं (जहाँ पापी शिलाओंपर पटके जाते हैं) तथा वहाँकी समतल भूमि भी आगसे तपी होती है। इसके सिवा गरम लोहेके, खौलते हुए

तेलके, मेदाके, तपे हुए स्तम्भके तथा कूट-शालमलि नामके भी नरक हैं। छूरे, कौटे, कील और उत्र ज्वालाके कारण क्षोभ एवं भय उत्पन्न करनेवाले बहुत-से नरक हैं। कहीं तपी हुई वैतरणी नदी है। कहीं पीबसे भेरे हुए अनेकों कुण्ड हैं। इन सबमें पृथक्-पृथक् पापियोंको डाला जाता है। कुछ नरक ऐसे हैं, जो जंगलके रूपमें हैं; वहाँके पते तलवारकी धारके समान तीखे हैं। इसीसे उन्हें 'असिपत्रवन' कहते हैं; वहाँ प्रवेश करते ही नर-नारियोंके शरीर कटने और छिलने लगते हैं। कितने ही नरक घोर अन्धकार तथा आगकी लपटोंके कारण अत्यन्त दारुण प्रतीत होते हैं। इनमें बार-बार यातना भोगनेके कारण पापी जीव नाना प्रकारके स्वरोंमें रोते और विलाप करते हैं। राजन्! इस प्रकार ये शास्त्र-विरुद्ध कर्म करनेवाले पापी जीव कराहते हुए नरकयातनाका कष्ट भोग रहे हैं। उन्हींका यह क्रन्दन हो रहा है। सभी प्राणियोंको अपने पूर्वकृत कर्मोंका भोग भोगना पड़ता है। परायी स्त्रियोंका सङ्ग प्रसन्नताके लिये किया जाता है, किन्तु वास्तवमें वह दुःख ही देनेवाला होता है। दो घड़ीतक किया हुआ विषय-सुखका आस्वादन अनेक कल्पोंतक दुःख देनेवाला होता है। राजेन्द्र! तुमने वैशाख मासमें प्रातःस्नान किया है, उसकी विधिका पालन करनेसे तुम्हारा शरीर पावन बन गया है। उससे छूकर बहनेवाली वायुका स्पर्श पाकर ये क्षणभरके लिये सुखी हो गये हैं। तुम्हारे तेजसे इन्हें बड़ी तृप्ति मिल रही है। इसीसे अब ये नरकवर्ती जीव कराहना छोड़कर चुप हो गये हैं। पुण्यवानोंका नाम भी यदि सुना या उच्चारण किया जाय तो वह सुखका साधक होता है तथा उसे छूकर चलनेवाली वायु भी शारीरमें लगनेपर बड़ा सुख देती है।\*

**यमराज कहते हैं—**करुणाके सागर राजा महीरथ अद्बुत कर्म करनेवाले भगवान् श्रीविष्णुके दूतोंकी उपर्युक्त बात सुनकर द्रवित हो उठे। निश्चय ही साधु पुरुषोंका हृदय मक्खनके समान होता है। जैसे नवनीत

आगकी आँच पाकर पिघल जाता है, उसी प्रकार साधु पुरुषोंका हृदय भी दूसरोंके संतापसे संतप्त होकर द्रवित हो उठता है। उस समय राजने दूतोंसे कहा।

राजा बोले—इन्हें देखकर मुझे बड़ी व्यथा हो रही है। मैं इन व्यथित प्राणियोंको छोड़कर जाना नहीं चाहता। मेरी समझमें सबसे बड़ा पापी वही है, जो समर्थ होते हुए भी वेदनाग्रस्त जीवोंका शोक दूर न कर सके। यदि मेरे शरीरको छूकर बहनेवाली वायुके स्पर्शसे ये जीव सुखी हुए हैं तो आपलोग मुझे उसी स्थानपर ले चलिये; क्योंकि जो चन्दनवृक्षकी भाँति दूसरोंके ताप दूर करके उन्हें आहादित करते हैं तथा जो परोपकारके लिये स्वयं कष्ट उठाते हैं, वे ही पुण्यात्मा हैं। संसारमें वे ही संत हैं, जो दूसरोंके दुःखोंका नाश करते हैं तथा पीड़ित जीवोंकी पीड़ा दूर करनेके लिये जिन्होंने अपने प्राणोंको तिनकेके समान निछावर कर दिया है। जो मनुष्य सदा दूसरोंकी भलाईके लिये उद्यत रहते हैं, उन्होंने ही इस पृथ्वीको धारण कर रखा है। जहाँ सदा अपने मनको ही सुख मिलता है, वह स्वर्ग भी नरकके ही समान है; अतः साधु पुरुष सदा दूसरोंके सुखसे ही सुखी होते हैं। यहाँ नरकमें गिरना अच्छा, प्राणोंसे वियोग हो जाना भी अच्छा; किन्तु पीड़ित जीवोंकी पीड़ा दूर किये बिना एक क्षण भी सुख भोगना अच्छा नहीं है।\*

दूत बोले—राजन्! पापी पुरुष अपने कर्मोंका ही फल भोगते हुए भयंकर नरकमें पकाये जाते हैं। जिन्होंने दान, होम अथवा पुण्यतीर्थमें स्नान नहीं किया है; मनुष्योंका उपकार तथा कोई उत्तम पुण्य नहीं किया है; यज्ञ, तपस्या और प्रसन्नतापूर्वक भगवन्नामोंका जप नहीं

किया है, वे ही परलोकमें आनेपर घेर नरकोंमें पकाये जाते हैं। जिनका शील-स्वभाव दूषित है, जो दुराचारी, व्यवहारमें निन्दित, दूसरोंकी बुराई करनेवाले एवं पापी हैं, वे ही नरकोंमें पड़ते हैं। जो पापी अपने मर्मभेदी वचनोंसे दूसरोंका हृदय विदीर्ण कर डालते हैं तथा जो परायी स्त्रियोंके साथ विहार करते हैं, वे नरकोंमें पकाये जाते हैं। महाभाग भूपाल ! आओ, अब भगवान्‌के धामको चलें। तुम पुण्यवान् हो, अतः अब तुम्हारा यहाँ ठहरना उचित नहीं है।

राजाने कहा—विष्णुदूतगण ! यदि मैं पुण्यात्मा हूँ तो इस महाभयंकर यातनामार्गमें कैसे लाया गया ? मैंने कौन-सा पाप किया है तथा किस पुण्यके प्रभावसे मैं विष्णुधामको जाऊँगा ? आपलोग मेरे इस संशयका निवारण करें।

दूत बोले—राजन् ! तुम्हारा मन कामके अधीन हो रहा था; इसलिये तुमने कोई पुण्य, यज्ञानुष्ठान अथवा यज्ञावशिष्ट अन्नका भोजन नहीं किया है। इसीलिये तुम्हें इस मार्गसे लाया गया है। किन्तु लगातार तीन वर्षोंतक तुमने अपने गुरुकी प्रेरणासे वैशाख मासमें विधिपूर्वक प्रातःस्नान किया है तथा महापापों और अतिपापोंकी राशिका विनाश करनेवाले भक्तिवत्सल, विश्वेश्वर भगवान् मधुसूदनकी भक्तिपूर्वक पूजा की है। यह सब पुण्योंका सार है। केवल इस एक ही पुण्यसे तुम देवताओंद्वारा पूजित होकर श्रीविष्णुधामको ले जाये जा रहे हो। नरेश्वर ! जैसे एक ही चिनगारी पड़ जानेसे तिनकोंकी राशि भस्म हो जाती है, उसी प्रकार वैशाखमें प्रातःस्नान करनेसे पापराशिका विनाश हो जाता है। जो वैशाखमें शास्त्रोक्त नियमोंसे युक्त होकर स्नान करता है, वह

\* परतापच्छदो ये तु चन्दना इव चन्दनाः। परोपकृतये ये तु पीड्यते कृतिनो हि ते॥  
सन्त्रस्त एव ये लोके परदुःखविदारणाः। आर्तानामार्तिनाशार्थं प्राणं येषां तृणोपमाः॥  
तैरियं धायते भूमिनैः परहितोद्यतैः। मनसो यत्सुखं नित्यं स स्वर्गो नरकोपमः॥  
तस्मात्परसुखेनैव साधवः सुखिनः सदा। वरं निरयपातोऽत्र वरं प्राणवियोजनम्॥  
तं पुनः क्षणमार्तानामार्तिनाशपृते सुखम्॥

हरिभक्त पुरुष अतिपापोंके समूहसे छुटकारा पाकर विष्णुपदको प्राप्त होता है।\*

यमराज कहते हैं—ब्रह्मन् ! तब दयासागर राजने उन जीवोंके शोकसे पीड़ित हो भगवान् श्रीविष्णुके दूतोंसे विनयपूर्वक कहा—‘साधु पुरुष प्राप्त हुए ऐश्वर्यका, गुणोंका तथा पुण्यका यही फल मानते हैं कि इनके द्वारा कष्टमें पड़े हुए जीवोंकी रक्षा की जाय । यदि मेरा कुछ पुण्य है तो उसीके प्रभावसे ये नरकमें पड़े हुए जीव निष्पाप होकर स्वर्गको चले जायें और मैं इनकी जगह नरकमें निवास करूँगा।’ राजाके ऐसे वचन सुनकर श्रीविष्णुके मनोहर दूत उनके सत्य और उदारतापर विचार करते हुए इस प्रकार बोले—‘राजन् ! इस दयारूप धर्मके अनुष्ठानसे तुम्हारे संचित धर्मकी विशेष वृद्धि हुई है । तुमने वैशाख मासमें जो स्नान, दान, जप, होम, तप तथा देवपूजन आदि कर्म किये हैं, वे अक्षय फल देनेवाले हो गये । जो वैशाख मासमें स्नान-दान करके भगवान्‌का पूजन करता है, वह सब कामनाओंको प्राप्त होकर श्रीविष्णुधामको जाता है । एक ओर तप, दान और यज्ञ आदिकी शुभ क्रियाएँ और एक ओर विधिपूर्वक आचरणमें लाया हुआ वैशाख मासका व्रत हो तो यह वैशाख मास ही महान् है । राजन् ! वैशाख मासके एक दिनका भी जो पुण्य है, वह तुम्हारे लिये सब दानोंसे बढ़कर है । दयाके समान धर्म, दयाके समान तप, दयाके समान दान और दयाके समान कोई मित्र नहीं है ।† पुण्यका दान करनेवाला मनुष्य सदा लाखगुना पुण्य प्राप्त करता है । विशेषतः तुम्हारी दयाके कारण धर्मकी अधिक वृद्धि हुई है । जो मनुष्य दुःखित प्राणियोंका दुःखसे उद्धार करता है, वही संसारमें पुण्यात्मा है । उसे भगवान् नारायणके अंशसे उत्पन्न

समझना चाहिये । वीर ! वैशाख मासकी पूर्णिमाको तीर्थमें जाकर जो तुमने सब पापोंका नाश करनेवाला स्नान-दान आदि पुण्य किया है, उसे विधिवत् भगवान् श्रीहरिको साक्षी बनाकर तीन बार प्रतिज्ञा करके इन पापियोंके लिये दान कर दो, जिससे ये नरकसे निकलकर स्वर्गको चले जायें । हमारा तो ऐसा विश्वास है कि पीड़ित जन्मुओंको शान्ति प्रदान करनेसे जो आनन्द मिलता है, उसे मनुष्य स्वर्ग और मोक्षमें भी नहीं पा सकता । सौम्य ! तुम्हारी बुद्धि दया एवं दानमें दृढ़ है, इसे देखकर हमलोगोंको भी उत्साह होता है । राजन् ! यदि तुम्हें अच्छा जान पड़े तो अब बिना विलम्ब किये इन्हें वह पुण्य प्रदान करो, जो नरकयातनाके दुःखको दग्ध करनेवाला है ।’

विष्णुदूतोंके यों कहनेपर दयालु राजा महीरथने भगवान् गदाधरको साक्षी बनाकर तीन बार प्रतिज्ञापूर्वक संकल्प करके उन पापियोंके लिये अपना पुण्य अर्पण किया । वैशाख मासके एक दिनके ही पुण्यका दान करनेपर वे सभी जीव यम-यातनाके दुःखसे मुक्त हो गये । फिर अत्यन्त हर्षमें भरकर वे श्रेष्ठ विमानपर आरूढ़ हुए और राजाकी प्रशंसा करते हुए उन्हें प्रणाम करके स्वर्गको चले गये । इस दानसे राजाको विशेष पुण्यकी प्राप्ति हुई । मुनियों और देवताओंका समुदाय उनकी स्तुति करने लगा तथा वे जगदीश्वर श्रीविष्णुके पार्षदोंद्वारा अभिवन्दित होकर उस परमपदको प्राप्त हुए, जो बड़े-बड़े योगियोंके लिये भी दुर्लभ है ।

द्विजश्रेष्ठ ! यह वैशाख मास और पूर्णिमाका कुछ माहात्म्य यहाँ थोड़ेमें बतलाया गया । यह धन, यश, आयु तथा परम कल्याण प्रदान करनेवाला है । इतना ही नहीं, इससे स्वर्ग तथा लक्ष्मीकी भी प्राप्ति होती है । यह

\* भक्त्या सम्पूजितो विष्णुर्विश्वेशो मधुसूदनः । महापापातिपापौघनिहन्ता  
सर्वैकसारेण पुनस्तेनैकेन । नरेश्वर । नीयसे विष्णुभवनं पूज्यमानो मरुद्रौणः ॥  
यथैव विस्फुलिङ्गेन ज्वाल्यते तृणसञ्चयः । प्रातःस्नानेन वैशाखे तथाघौषो नरेश्वर ॥  
वैशाखे मासि यो युक्ते यथोक्तनियमैर्नः । हरिभक्तोऽतिपापौघैर्मुक्तोऽच्युतपदं ब्रजेत् ॥

(१७) ४६, ४७, ४८, ५०)

† न दयासदृशो धर्मो न दयासदृशं तपः । न दयासदृशं दानं न दयासदृशः सखा ॥ (१८) १५)

प्रशंसनीय माहात्म्य अन्तःकरणको शुद्ध करनेवाला और पापोंको धो डालनेवाला है। माधव-मासका यह माहात्म्य भगवान् माधवको अत्यन्त प्रिय है। राजा महीरथका चरित्र और हम दोनोंका मनोरम संवाद सुनने, पढ़ने तथा विधिपूर्वक अनुमोदन करनेसे मनुष्यको भगवान्की भक्ति प्राप्त होती है, जिससे समस्त छेषोंका नाश हो जाता है।

सूतजी कहते हैं—धर्मराजकी यह बात सुनकर

वह ब्राह्मण उन्हें प्रणाम करके चला गया। उसने भूतलपर प्रतिवर्ष स्वयं तो वैशाख-स्नानकी विधिका पालन किया ही, दूसरोंसे भी कराया। यह ब्राह्मण और यमका संवाद मैंने आपलोगोंसे वैशाख मासके पुण्यमय स्नानके प्रसङ्गमें सुनाया है। जो एकचित्त होकर वैशाख मासके माहात्म्यका श्रवण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर श्रीविष्णुके परमपदको प्राप्त होता है।



### भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान

ऋषि बोले—महाप्राज्ञ सूतजी ! आपका हृदय अत्यन्त करुणापूर्ण है; आपने कृपा करके ही पापनाशक वैशाख-माहात्म्यका वर्णन किया है। अब इस समय हम भक्तगणोंके प्रिय परमात्मा श्रीकृष्णका ध्यान सुनना चाहते हैं, जो भवसागरसे तारनेवाला है।

सूतजीने कहा—मुनियो ! वृन्दावनमें विचरनेवाले जगदात्मा श्रीकृष्णके, जो गौओं, खालों और गोपियोंके प्राण हैं, ध्यानका वर्णन आप सब लोग सुनें। द्विजवरो ! एक समय महर्षि गौतमने देवर्षि नारदजीसे यही बात पूछी थी। नारदजीने उनसे जिस पापनाशक ध्यानका वर्णन किया था, वही मैं आपलोगोंको बताता हूँ।

नारदजी कहते हैं—

सुप्रकरसौरभोद्विलितमाध्विकाद्युल्लस-  
त्सुशाखिनवपल्लवप्रकरनप्रशोभायुतम् ।  
प्रफुल्लनवमञ्जरीलिलितवल्लरीवेष्टितं

स्मरेत सततं शिवं सितमतिः सुवृन्दावनम् ॥

ध्यान करनेवाले मनुष्यको सदा शुद्धचित्त होकर पहले उस परम कल्याणमय सुन्दर वृन्दावनका चिन्तन करना चाहिये, जो फूलोंके समुदाय, मनोहर सुगन्ध और बहते हुए मकरन्द आदिसे सुशोभित सुन्दर-सुन्दर वृक्षोंके नूतन पल्लवोंसे झुका हुआ शोभा पा रहा है तथा लिली हुई नवल मञ्जरियों और ललित लताओंसे आवृत है।

प्रवालनवपल्लवं भरकतच्छदं मौक्तिक-  
प्रभाप्रकरकोरकं कमलरागनानाफलम् ।

स्थविष्ठमखिलर्तुभिः सततसेवितं कामदं

तदन्तरपि कल्पकाङ्गिपमुदञ्चितं चिन्तयेत् ॥

उस वनके भीतर भी एक कल्पवृक्षका चिन्तन करे, जो बहुत ही मोटा और ऊँचा है, जिसके नये-नये पल्लव मूँगेके समान लाल हैं, पत्ते मरकत मणिके सदृश नीले हैं, कलिकाएँ मोतीके प्रभा-पुञ्जकी भाँति शोभा पा रही हैं और नाना प्रकारके फल पद्मराग मणिके समान जान पड़ते हैं। समस्त ऋतुएँ सदा ही उस वृक्षकी सेवामें रहती हैं तथा वह सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है।

सुहेमशिखराचले उदितभानुवद्धासुरा-

मधोऽस्य कनकस्थलीममृतशीकरासारिणः ।

प्रदीप्मणिकुञ्जिमां कुसुमरेणुपुञ्जोञ्ज्वलां

स्मरेत्पुनरतन्द्रितो विगतषद्दत्तरङ्गां ब्रुधः ॥

फिर आलस्यरहित हो विद्वान् पुरुष धारावाहिकरूपसे अमृतकी बूँदें बरसानेवाले उस कल्पवृक्षके नीचे सुवर्णमयी वेदीकी भावना करे, जो मेरु गिरिपर उगे हुए सूर्यकी भाँति प्रभासे उद्घासित हो रही है, जिसका फर्श जगमगाती हुई मणियोंसे बना है, जो फूलोंके पराग-पुञ्जसे कुछ धवल वर्णकी हो गयी है तथा जहाँ क्षुधा-पिपासा, शोक-मोह और जरा-मृत्यु—ये छः ऊर्मियाँ नहीं पहुँचने पातीं।

तद्रत्नकुञ्जिमनिविष्ठमहिष्ठयोग-

पीठेऽष्टपत्रमरुणं कमलं विचिन्त्य ।

उद्यद्विरोचनसरोचिरमुष्यं मध्ये

संचिन्तयेत् सुखनिविष्ठमथो मुकुन्दम् ॥

उस रत्नमय फर्शपर रखे हुए एक विशाल योग-

पीठके ऊपर लाल रंगके अष्टदल कमलका चिन्तन करके उसके मध्यभागमें सुखपूर्वक बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान करे, जो अपनी दिव्य प्रभासे उदयकालीन सूर्यदेवकी भाँति देवीप्यमान हो रहे हैं।  
सुत्रामहेतिदलिताङ्गनमेधपुङ्ग-

प्रत्यग्रनीलजलजन्मसमानभासम् ।  
सुस्त्रिग्धनीलधनकुञ्जितकेशजालं

राजन्मनोज्ञशितिकण्ठशिखण्डचूडम् ॥

भगवान्‌के श्रीविग्रहकी आभा इन्द्रके वज्रसे विदीर्ण हुए कज्जलगिरि, मेघोंकी घटा तथा नूतन नील-कमलके समान श्याम रंगकी है; श्याम मेघके सदृश काले-काले धुँधराले केश-कलाप बड़े ही चिकने हैं तथा उनके मस्तकपर मनोहर मोर-पंखका मुकुट शोभा पा रहा है।  
रोलम्बलालितसुरद्वमसूनसम्प-

द्युक्तं समुत्कचनवोत्पलकर्णपूरम् ।  
लोलालिभिः स्फुरितभालतलप्रदीप-

गोरोचनातिलकमुञ्जवलचिल्लचापम् ॥

कल्पवृक्षके फूलोंसे, जिनपर भौंर मँडरा रहे हैं, भगवान्‌का शृङ्गार हुआ है। उन्होंने कानोंमें खिले हुए नवीन कमलके कुण्डल धारण कर रखे हैं; जिनपर चञ्चल भ्रमर उड़ रहे हैं। उनके ललाटमें चमकीले गोरोचनका तिलक चमक रहा है तथा धनुषाकार भौंहे बड़ी सुन्दर प्रतीत हो रही है।

आपूर्णशारदगताङ्गशशाङ्गबिम्ब-

कान्ताननं कमलपत्रविशालनेत्रम् ।

रत्नस्फुरन्मकरकुण्डलरशिमदीप-

गण्डस्थलीमुकुरमुन्नतचारुनासम् ॥

भगवान्‌का मुख शरत्पूर्णिमाके कलङ्गहीन चन्द्रमण्डलकी भाँति कान्तिमान् है, बड़े-बड़े नेत्र कमलदलके समान सुन्दर जान पड़ते हैं, दर्पणके सदृश खच्छ कपोल रत्नोंके कारण चमकते हुए मकराकृत कुण्डलोंकी किरणोंसे देवीप्यमान हो रहे हैं तथा ऊँची नासिका बड़ी मनोहर जान पड़ती है।

सिन्दूरसुन्दरतराधरमिन्दुकुन्द-

मन्दारमन्दहसितद्युतिदीपिताशम् ।

वन्यप्रवालकुसुमप्रचयावङ्गम्-

ग्रैवेयकोञ्जवलमनोहरकम्बुकण्ठम् ॥

सिन्दूरके समान परम सुन्दर लाल-लाल ओठ हैं; चन्द्रमा, कुन्द और मन्दार पुष्पकी-सी मन्द मुसकानकी छटासे सामनेकी दिशा प्रकाशित हो रही है तथा वनके कोमल पल्लवों और फूलोंके समूहद्वारा बनाये हुए हारसे राङ्गसदृश मनोहर ग्रीवा बड़ी सुन्दर जान पड़ती है।  
मत्तभ्रमद्भ्रमरघुष्टविलम्बमान-

संतानकप्रसवदामपरिष्कृतांसम् ।

हारावलीभगणराजितपीवरोरो-

व्योमस्थलीलसितकौस्तुभभानुमन्तम् ॥

मँडराते हुए मतवाले भौंरोंसे निनादित एवं घुटनोंतक लटकी हुई पारिजात पुष्पोंकी मालासे दोनों कंधे शोभा पा रहे हैं। पीन और विशाल वक्षःस्थलरूपी आकाश हाररूपी नक्षत्रोंसे सुशोभित है तथा उसमें कौस्तुभमणिरूपी सूर्य भासमान हो रहा है।

श्रीवत्सलक्षणसुलक्षितमुन्नतांस-

माजानुपीनपरिवृत्तसुजातबाहुम् ।

आबन्धुरोदरमुदारगभीरनाभिं

भृङ्गाङ्गनानिकरमञ्जुलरोमराजिम् ॥

भगवान्‌के वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न बड़ा सुन्दर दिखायी देता है, उनके कंधे ऊँचे हैं, गोल-गोल सुन्दर भुजाएँ घुटनोंतक लंबी एवं मोटी हैं, उदरका भाग बड़ा मनोहर है, नाभि विस्तृत और गहरी है तथा त्रिवलीकी रोमपङ्क्ति भैंवरोंकी पङ्क्तिके समान शोभा पा रही है।

नानामणिप्रधटिताङ्गदकङ्गणोर्मि-

ग्रैवेयकारसननूपुरतुन्दबन्धम् ।

दिव्याङ्गरागपरिपिञ्चरिताङ्गयष्टि-

मापीतवस्त्रपरिवीतनितम्बविम्बम् ॥

नना प्रकारकी मणियोंके बने हुए भुजबंद, कड़े, अँगूठियाँ, हार, करधनी, नूपुर और पेटी आदि आभूषण भगवान्‌के श्रीविग्रहपर शोभा पा रहे हैं; उनके समस्त अङ्ग दिव्य अङ्गरागोंसे अनुरक्षित हैं तथा कटिभाग कुछ हल्के रंगके पीताम्बरसे ढका हुआ है।

चारुरुजानुमनुवृत्तमनोजज्ञं

कान्तोन्नतप्रपदनिन्दितकूर्मकान्तिम् ।

माणिक्यदर्पणलसर्वखराजिराज-

द्रक्ताङ्गुलिलिङ्गदनसुन्दरपादपद्मम् ॥

दोनों जाँघें और घुटने सुन्दर हैं; पिंडलियोंका भाग गोलाकार एवं मनोहर है; पादाग्रभाग परम कान्तिमान् तथा ऊँचा है और अपनी शोभासे कछुएके पृष्ठभागकी कान्तिको मलिन कर रहा है तथा दोनों चरण-कमल माणिक्य तथा दर्पणके समान स्वच्छ नखपद्मियोंसे सुशोभित लाल-लाल अङ्गुलिदलोंके कारण बड़े सुन्दर जान पड़ते हैं।

मत्स्याङ्गुशारिदरकेतुयवाब्जवञ्चैः

संलक्षितारुणकराङ्गितलाभिरामम् ।

लावण्यसारसमुदायविनिर्मिताङ्गं

सौन्दर्यनिन्दित मनोभवदेहकान्तिम् ॥

मत्स्य, अङ्गुश, चक्र, शङ्ख, पताका, जौ, कमल और वज्र आदि चिह्नोंसे चिह्नित लाल-लाल हथेलियों तथा तलवोंसे भगवान् बड़े मनोहर प्रतीत हो रहे हैं। उनका श्रीअङ्ग लावण्यके सार-संग्रहसे निर्मित जान पड़ता है तथा उनके सौन्दर्यके सामने कामदेवके शरीरकी कान्ति फीकी पड़ जाती है।

आस्यारविन्दपरिपूरितवेणुरन्ध-

लोलत्कराङ्गुलिसमीरितदिव्यरागैः ।

शशब्दवैः कृतनिविष्टसमस्तजन्तु-

सन्तानसंनतिमनन्तसुखाम्बुराशिम् ॥

भगवान् अपने मुखारविन्दसे मुरली बजा रहे हैं; उस समय मुरलीके छिद्रोंपर उनकी अङ्गुलियोंके फिरनेसे निरन्तर दिव्य रागोंकी सृष्टि हो रही है, जिनसे प्रभावित हो समस्त जीव-जन्तु जहाँ-के-तहाँ बैठकर भगवान्की ओर मस्तक टेक रहे हैं। भगवान् गोविन्द अनन्त आनन्दके समुद्र हैं।

गोभिर्मुखाम्बुजविलीनविलोचनाभि-

रुधोभरस्वलितमन्थरमन्दगाभिः ।

दन्ताधृष्टपरिशिष्टतुणाङ्गुराभि-

रालम्बिवालधिलताभिरथाभिवीतम् ॥

थनोंके भारसे लड़खड़ाती हुई मन्द-मन्द गतिसे चलनेवाली गौएँ दाँतोंके अग्रभागमें चबानेसे बचे हुए तिनकोंके अङ्गुर लिये, पूँछ लटकाये भगवान्के मुखकमलमें आँखें गड़ाये उन्हें चारों ओरसे घेरकर खड़ी हैं।

सम्प्रस्तुतस्तनविभूषणपूर्णनिश्च-

लास्याद् दृढक्षरितफेनिलदुग्धमुग्धैः ।

वेणुप्रवर्तितमनोहरमन्दगीत-

दत्तोद्यकर्णयुगलैरपि तर्णकैश्च ॥

गौओंके साथ ही छोटे-छोटे बछड़े भी भगवान्को सब ओरसे घेरे हुए हैं और मुरलीसे मन्दस्वरमें जो मनोहर संगीतकी धारा बह रही है, उसे वे कान लगाकर सुन रहे हैं, जिसके कारण उनके दोनों कान खड़े हो गये हैं। गौओंके टपकते हुए थनोंके आभूषणरूप दूधसे भेर हुए उनके मुख स्थिर हैं, जिनसे फेनयुक्त दूध बह रहा है; इससे वे बछड़े बड़े मनोहर प्रतीत हो रहे हैं।

गोपैः समानगुणशीलवयोविलास-

वेशैश्च मूर्छितकलस्वनवेणुवीणैः ।

मन्दोद्यतारपटुगानपरैर्विलोल-

दोर्वल्लरीललितलास्यविधानदक्षैः ॥

भगवान्के ही समान गुण, शील, अवस्था, विलास तथा वेष-भूषावाले गोप भी, जो अपनी चञ्चल भुजाओंको सुन्दर ढंगसे नचानेमें चतुर हैं, वंशी और वीणाकी मधुर ध्वनिका विस्तार करके मन्द, उच्च और तारस्वरमें कुशलतापूर्वक गान करते हुए भगवान्को सब ओरसे घेरकर खड़े हैं।

जङ्गान्तपीवरकटीरतटीनिबद्ध-

ब्यालोलकिङ्गिणिघटारणितैरटद्धिः ।

मुग्धैस्तरक्षुनखकलिपतकान्तभूषै-

रव्यक्तमञ्जुवचनैः पृथुकैः परीतम् ॥

छोटे-छोटे ग्वाल-बाल भी भगवान्के चारों ओर घूम रहे हैं; जाँघसे ऊपर उनके मोटे कटिभागमें करधनी पहनायी गयी है, जिसकी क्षुद्रघण्टिकाओंकी मधुर झनकार सुनायी पड़ती है। वे भोले-भाले बालक बघनखोंके सुन्दर आभूषण पहने हुए हैं। उनकी

मीठी-मीठी तोतली वाणी साफ समझमें नहीं आती ।

भगवान् के प्रति दृढ़ अनुराग रखनेवाली सुन्दरी गोपाङ्गनाएँ भी उन्हें प्रेमपूर्ण दृष्टिसे निहारती हुई सब ओरसे घेरकर खड़ी हैं । गोपी, गोप और पशुओंके घेरसे बाहर भगवान् के सामनेकी ओर ब्रह्मा, शिव तथा इन्द्र आदि देवताओंका समुदाय खड़ा होकर सुति कर रहा है ।

तद्वद् दक्षिणतो मुनिनिकरं दृढधर्मवाज्ञया समाप्नायपरम् ।  
योगीन्द्रानन्थ पृष्ठे मुमुक्षमाणान् समाधिना तु सनकाद्यान् ॥

इसी प्रकार उपर्युक्त घेरसे बाहर भगवान् के दक्षिण भागमें सुदृढ़ धर्मकी अभिलाषासे वेदाभ्यासपरायण मुनियोंका समुदाय उपस्थित है तथा पृष्ठभागकी ओर समाधिके द्वारा मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले सनकादि योगीश्वर खड़े हैं ।

सब्ये सकान्तानथ यक्षसिद्धान्  
गन्धर्वविद्याधरचारणांश्च

सकिन्नरानप्सरसश्च मुख्याः  
कामार्थिनीर्नर्तनगीतवाद्यैः ॥

वाम भागमें अपनी स्त्रियोंसहित यक्ष, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, चारण और किन्नर खड़े हैं । साथ ही भगवत्प्रेमकी इच्छा रखनेवाली मुख्य-मुख्य अप्सराएँ भी मौजूद हैं । ये सब लोग नाचने, गाने तथा बजानेके द्वारा भगवान् की सेवा कर रहे हैं ।

शङ्खान्दकुन्दधबलं सकलागमज्जं  
सौदामनीततिपिशङ्गजटाकलापम् ।

तत्पादपङ्गजगताममलां च भक्ति  
वाज्ञन्तमुज्जिततरान्यसमस्तसङ्गम् ॥

नानाविधश्रुतिगणान्वितसम्पराग-  
ग्रामत्रयीगतमनोहरमूर्छनाभिः ।

सम्प्रीणयन्तमुदिताभिरपि प्रभक्तया  
संचिन्तयेन्नभसि मां द्वृहिणप्रसूतम् ॥

तत्पश्चात् आकाशमें स्थित मुझ ब्रह्मपुत्र देवर्षि नारदका चिन्तन करना चाहिये । नारदजीके शरीरका वर्ण शङ्ख, चन्द्रमा तथा कुन्दके समान गौर है; वे सम्पूर्ण आगमोंके ज्ञाता हैं, उनकी जटाएँ बिजलीकी पद्मक्षियोंके समान पीली और चमकीली हैं, वे भगवान् के चरण-कमलोंकी निर्मल भक्तिके इच्छुक हैं तथा अन्य सब ओरकी आसक्तियोंका सर्वथा परित्याग कर चुके हैं और संगीतसम्बन्धी नाना प्रकारकी श्रुतियोंसे युक्त सात स्वरों और त्रिविध ग्रामोंकी मनोहर मूर्छनाओंको अभिव्यञ्जित करके अत्यन्त भक्तिके साथ भगवान् को प्रसन्न कर रहे हैं ।

इति ध्यात्वाऽत्मानं पदुविशदधीर्नन्दतनयं

नरो बौद्धैवर्धिप्रभृतिभिरनिन्दोपहतिभिः ।

यजेद् भूयो भक्त्या स्ववपुषि बहिष्टैश्च विभवै-

रिति प्रोक्तं सर्वं यदभिलिष्टं भूसुरवराः ॥\*

इस प्रकार प्रखर एवं निर्मल बुद्धिवाला पुरुष अपने आत्मस्वरूप भगवान् नन्दनन्दनका ध्यान करके मानसिक अर्थ आदि उत्तम उपहारोंसे अपने शरीरके भीतर ही भक्तिपूर्वक उनका पूजन करे तथा बाह्य उपचारोंसे भी उनकी आराधना करे । ब्राह्मणो ! आपलोगोंकी जैसी अभिलाषा थी, उसके अनुसार भगवान् का यह सम्पूर्ण ध्यान मैंने बता दिया ।

सूतजी कहते हैं—महर्षिगण ! जो इस कथाको सुनाता है, वह भगवान् के समान हो जाता है । विप्रो ! यह गुह्यसे भी गुह्य प्रसङ्ग कल्याणमय ज्ञान प्रदान करनेवाला है । जो इसे पढ़ता अथवा सुनता है, वह परम-पदको प्राप्त होता है ।

॥ पातालखण्ड सम्पूर्ण ॥

\* ये ध्यानसम्बन्धी श्लोक अध्याय ९९ से लिये गये हैं ।

## संक्षिप्त पद्मपुराण

— ★ —

### उत्तररवण्ड

— ★ —

### नारद-महादेव-संवाद—बदरिकाश्रम तथा नारायणकी महिमा

अज्ञानतिमिराघ्यस्य  
ज्ञानञ्जनशलाकया ।  
चक्षुरुच्यीलितं येन तस्मै श्रीगुरुवे नमः ॥\*  
ऋषियोंने कहा—वक्ताओंमें श्रेष्ठ सूतजी !  
आपके द्वारा वर्णित नाना प्रकारके उपाख्यानोंसे युक्त  
परमानन्ददायक पातालखण्डका हमलोगोंने श्रवण किया;  
अब भगवद्गतिको बढ़ानेवाला जो पद्मपुराणका शेष  
अंश है, उसे हम सुनना चाहते हैं। गुरुदेव ! कृपा करके  
उस अंशका वर्णन कीजिये ।

सूतजी बोले—मुनियो ! भगवान् शङ्करने देवर्षि  
नारदके प्रश्न करनेपर जिस पापनाशक विज्ञानका श्रवण

कराया था, उसीको मैं कहता हूँ; आप सब लोग सुनें।  
एक समयकी बात है, भगवान्के प्रिय भक्त देवर्षि  
नारदजी लोक-लोकान्तरोंमें ध्रमण करते हुए मन्दराचल  
पर्वतपर गये। वहाँ भगवान् शङ्करसे अपनी कुछ मनोगत  
बातोंको पूछना ही उनकी यात्राका उद्देश्य था। भगवान्  
उमानाथ उस पर्वतपर विराजमान थे। नारदजीने उन्हें  
प्रणाम किया और उनकी आज्ञासे उन्हींके सामने वे एक  
आसनपर बैठ गये। महात्माओ ! उस समय उन्होंने  
भगवान् शिवसे यही प्रश्न किया, जिसे आपलोग मुझसे  
पूछ रहे हैं।

नारदजीने कहा—भगवन् ! देवदेवेश !  
पार्वतीपते ! जगद्गुरो ! जिससे भगवत्तत्त्वका ज्ञान हो,  
उस विषयका आप मुझे उपदेश कीजिये ।

महादेवजी बोले—नारद ! सुनो; मैं वेदोंकी  
समानता करनेवाले पुराणका वर्णन आरम्भ करता हूँ  
जिसे सुनकर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। इस पृथ्वीपर एक लाख पच्चीस हजार पर्वत हैं, उन सबमें  
बदरिकाश्रम महान् पुण्यदायक एवं उत्तम है, जहाँ  
भगवान् नंर-नारायण विराजमान हैं। नारदजी ! मैं इस  
समय उन्हींके तेज और स्वरूपका वर्णन करूँगा।  
ब्रह्मन् ! हिमालय पर्वतपर दो पुरुष हैं, जो क्रमशः  
नंर-नारायणके नामसे विख्यात हैं; उनमें एक तो गौर  
वर्णके हैं और दूसरे इयाम वर्णके। इयाम वर्णवाले पुरुष  
ही 'नारायण' हैं; ये इस जगत्के आदि कारण और महान्  
प्रभु हैं। इनके चार भुजाएँ हैं। ये बड़े ही शोभासम्पन्न  
हैं। इनके दो रूप हैं—व्यक्त और अव्यक्त (साकार



\* जिन्हें अज्ञानरूपी अन्यकारसे अंधे हुए मुङ्ग शिष्यके विवेकरूपी बंद नेत्रको ज्ञानरूप अज्ञनकी शलाकासे खोल दिया है, उन श्रीगुरुदेवको प्रणाम है।

और निराकार)। ये सनातन पुरुष हैं। सुव्रत! उत्तरायणमें ही इनकी महती पूजा होती है। प्रायः छः महीनोंतक इनकी पूजा नहीं होती; क्योंकि जबतक दक्षिणायन रहता है, इनका स्थान हिमसे आच्छादित रहा करता है। अतः इनके-जैसा देवता न अबतक हुआ है और न आगे होगा। बदरिकाश्रममें देवगण निवास करते हैं। वहाँ ऋषियोंके भी आश्रम हैं। अग्निहोत्र और वेदपाठकी ध्वनि वहाँ सदा श्रवण-गोचर होती रहती है। भगवान् नारायणका दर्शन करना चाहिये। उनका दर्शन करोड़ों हत्याओंका नाश करनेवाला है। वहाँ 'अलकनन्दा' नामवाली गङ्गा बहती है, उनमें स्नान करना चाहिये। वहाँ स्नान करके मनुष्य महान् पापसे मुक्त हो जाता है। उस तीर्थमें सम्पूर्ण जगत्के स्वामी

भगवान् नारायण सदा ही विराजमान रहते हैं।

एक समयकी बात है, मैंने एक वर्षतक वहाँ बड़ी कठोर तपस्या की थी। उस समय भक्तोंपर कृपा करनेवाले भगवान् नारायण, जो अविनाशी, अन्तर्यामी, साक्षात् परमेश्वर तथा गरुड़के-से चिह्नवाली ध्वजासे युक्त हैं, बहुत प्रसन्न हुए और मुझसे बोले—‘सुव्रत! कोई वर माँगो; देव! तुम जो-जो चाहोगे, वह सभी मनोरथ मैं पूर्ण करूँगा; तुम कैलासके स्वामी, साक्षात् रुद्र तथा विश्वके पालक हो।

तब मैंने कहा—जनार्दन! यदि आप वर देना चाहते हैं तो मुझे दो वर प्रदान कीजिये—मेरे हृदयमें सदा ही आपके प्रति भक्ति बनी रहे और देवेश्वर! मैं आपके प्रसादसे मुक्तिदाता होऊँ।

## ★

### गङ्गावतरणकी संक्षिप्त कथा और हरिद्वारका माहात्म्य

महादेवजी कहते हैं—देवर्षियोंमें श्रेष्ठ नारद! अब तुम परम पुण्यमय हरिद्वारका माहात्म्य श्रवण करो। जहाँ भगवती गङ्गा बहती हैं, वहाँ उत्तम तीर्थ बताया गया है। वहाँ देवता, ऋषि और मनुष्य निवास करते हैं। वहाँ साक्षात् भगवान् केशव नित्य विराजमान रहते हैं। विद्वन्! राजा भगीरथ उसी मार्गसे भगवती गङ्गाको लाये थे तथा उन महात्माने गङ्गाजलका स्पर्श करकर अपने पूर्वजोंका उद्धार किया था।

नारद! अत्यन्त सुन्दर गङ्गाद्वारमें जो जिस प्रकार गङ्गाजीको ले आये थे, वह सब प्रसङ्ग मैं क्रमशः सुनाता हूँ। पूर्वकालमें हरिश्चन्द्र नामके एक राजा हो चुके हैं, जो त्रिभुवनमें सत्यके पालक विव्यात थे। उनके रोहित नामक एक पुत्र हुआ, जो भगवान् विष्णुकी भक्तिमें तत्पर था। रोहितका पुत्र वृक था, जो बड़ा ही धर्मात्मा और सदाचारी था। उसके सुबाहु नामक पुत्र हुआ। सुबाहुसे 'गर' नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। एक समय गरको कालयोगसे दुःखी होना पड़ा। अनेक राजाओंने चढ़ाई करके उनके देशको अपने अधीन कर लिया। गर कुदुम्बको साथ ले भृगुनन्दन और्वके आश्रमपर चले

गये। और्वने कृपापूर्वक वहाँ उनकी रक्षा की। वहाँ उनके सगर नामक पुत्रका जन्म हुआ। महात्मा भार्गवसे रक्षित होकर वह उसी आश्रमपर बढ़ने लगा। मुनिने उसके यज्ञोपवीत आदि सब क्षत्रियोचित संस्कार कराये। अस्त्र-शस्त्रों तथा वेद-विद्याका भी उसको अध्यास कराया।

तदनन्तर महातपस्वी राजा सगरने और्व मुनिसे आग्रेयास्त्र प्राप्त किया और समूची पृथ्वीपर भ्रमण करके अपने शत्रु ताल्जङ्घ, हैह्य, शक तथा पारदवंशियोंका वध कर डाला। इस प्रकार सबको जीतकर उन्होंने धर्म-संचय करना आरम्भ किया। राजाने अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करनेके लिये अश्व छोड़ा। वह अश्व पूर्व दक्षिण-समुद्रके तटपर हर लिया गया और पृथ्वीके भीतर पहुँचा दिया गया। तब राजाने अपने पुत्रोंको लगाकर सब ओरसे उस स्थानको खुदवाया। महासागर खोदने समय वे अश्वको तो नहीं पा सके, किन्तु वहाँ तपस्या करनेवाले आदि पुरुष महात्मा कपिलपर उनकी दृष्टि पड़ी। वे उतावलीके साथ उनके निकट गये और जगत्प्रभु कपिलको लक्ष्य करके कहने लगे—‘यह चोर है।’

कोलहल सुनकर भगवान् कपिल समाधिसे जाग उठे । उस समय उनके नेत्रोंसे आग प्रकट हुई, जिससे साठ

पञ्चजनके अंशुमान् नामक पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ । अंशुमान्‌के दिलीप और दिलीपके भगीरथ हुए, जो उत्तम ब्रत (तपस्या) का अनुष्ठान करके नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गाजीको पृथ्वीपर ले आये तथा जिन्होंने गङ्गाको समुद्रतक ले जाकर उन्हें अपनी कन्याके रूपमें अङ्गीकार किया ।

**नारदजीने पूछा**—भगवन् ! राजा भगीरथ गङ्गाको किस प्रकार लाये थे ? उन्होंने कौन-सी तपस्या की थी, ये सब बातें मुझे बताइये ।

**महादेवजी बोले**—नारद ! राजा भगीरथ अपने पूर्वजोंका हित करनेके लिये हिमालय पर्वतपर गये । वहाँ पहुँचकर उन्होंने दस हजार वर्षोंतक भारी तपस्या की । इससे आदिदेव भगवान् निञ्जन श्रीविष्णु प्रसन्न हुए । उन्हींके आदेशसे गङ्गाजी आकाशसे चलीं और जहाँ विश्वेश्वर श्रीशिव नित्य विराजमान रहते हैं, उस कैलास पर्वतपर उपस्थित हुई । मैंने गङ्गाजीको आया देख उन्हें अपने जटाजूटमें धारण कर लिया और दस



हजार सगर-पुत्र जलकर भस्म हो गये । महायशस्वी राजाने समुद्रसे उस आश्वमेधिक अश्वको प्राप्त किया और उसके द्वारा सौ अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान पूर्ण किया ।

**नारदजीने पूछा**—विज्ञानेश्वर ! सगरके साठ हजार पुत्र बड़े बलवान् और पराक्रमी थे, उन वीरोंकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई ? यह बताइये ।

**महादेवजी बोले**—नारद ! राजा सगरकी दो पत्नियाँ थीं, वे दोनों ही तपस्याके द्वारा अपने पाप दग्ध कर चुकी थीं । इससे प्रसन्न होकर मुनिश्रेष्ठ और्वने उन्हें वरदान दिया । उनमेंसे एक रानीने साठ हजार पुत्र माँगे और दूसरीने एक ही ऐसे पुत्रके लिये प्रार्थना की, जो वंश चलानेवाला हो । पहली रानीने तृंगीमें बहुत-से शूरवीर पुत्रोंको जन्म दिया; उन सबको धाइयोंने ही क्रमशः पाल-पोसकर बड़ा किया । घीसे भरे हुए घड़ोंमें रखकर उन कुमारोंका पोषण किया गया । कपिला गायका दूध पीकर वे सब-के-सब बड़े हुए । दूसरी रानीके गर्भसे पञ्चजन नामक पुत्र हुआ, जो राजा बना ।



हजार वर्षोंतक उसी रूपमें स्थित रहा । इधर राजा भगीरथ गङ्गाजीको न देखकर विचार करने लगे—गङ्गा कहाँ चली

गयीं ? ध्यान करके जब उन्होंने यह निश्चितरूपसे जान लिया कि उन्हें महादेवजीने ग्रहण कर लिया है, तब वे कैलास पर्वतपर गये। मुनिश्रेष्ठ वहाँ पहुँचकर वे तीव्र तपस्या करने लगे। उनके आराधना करनेपर मैंने अपने मस्तकसे एक बाल उखाड़ा और उसीके साथ त्रिपथगा गङ्गाजीको उन्हें अर्पण कर दिया। गङ्गाको लेकर वे पातालमें, जहाँ उनके पूर्वज भस्म हुए थे, गये। उस समय भगवान् विष्णुके चरणोंसे प्रकट हुई गङ्गा जब हरिद्वारमें आयी, तब वह देवताओंके लिये भी दुर्लभ श्रेष्ठ तीर्थ बन गया। जो मनुष्य उस तीर्थमें स्नान तथा विशेषरूपसे

श्रीहरिका दर्शन करके उनकी परिक्रमा करते हैं, वे दुःखके भागी नहीं होते। ब्रह्महत्या आदि पापोंकी अनेक राशियाँ ही क्यों न हों, वे सब सर्वदा श्रीहरिके दर्शनमात्रसे नष्ट हो जाती हैं। एक समय मैं भी हरिद्वारमें श्रीहरिके स्थानपर गया था, उस समय उस तीर्थके प्रभावसे मैं विष्णुस्वरूप हो गया। सभी मनुष्य वहाँ श्रीहरिका दर्शन करनेमात्रसे वैकुण्ठ-लोकको प्राप्त होते हैं। परम सुन्दर हरिद्वार-तीर्थ मेरी दृष्टिमें सबसे अधिक महत्वशाली है। वह समस्त तीर्थोंमें श्रेष्ठ और धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूप चारों पुरुषार्थ प्रदान करनेवाला है।



## गङ्गाकी महिमा, श्रीविष्णु, यमुना, गङ्गा, प्रयाग, काशी, गया एवं गदाधरकी स्तुति

महादेवजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ ! अब मैं श्रीगङ्गाजीके माहात्म्यका यथावत् वर्णन करूँगा, जिसके श्रवणमात्रसे तत्काल पापोंका नाश हो जाता है। जो मनुष्य सैकड़ों योजन दूरसे भी 'गङ्गा-गङ्गा' का उच्चारण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होता और अन्तमें विष्णुलोकको जाता है।\* नारद ! श्रीहरिके चरण-कमलोंसे प्रकट हुई 'गङ्गा' नामसे विख्यात नदी पापोंकी स्थूल राशियोंका भी नाश करनेवाली है। नर्मदा, सरयू, वेत्रवती (बेतवा), तापी, पयोष्णी (मन्दाकिनी), चन्द्रा, विपाशा (ब्यास), कर्मनाशिनी, पुष्पा, पूर्णा, दीपा, विदीपा तथा सूर्यतनया यमुना—इनमें स्नान करनेसे जो पुण्य होता है, वह सब पुण्य गङ्गा-स्नानसे मनुष्य प्राप्त कर लेते हैं। जो मनीषी पुरुष समुद्रसहित पृथ्वीका दान करते हैं, उनको मिलनेवाला फल भी गङ्गा-स्नानसे प्राप्त हो जाता है। सहस्र गोदान, सौ अश्वमेध यज्ञ तथा सहस्र वृषभ-दानसे जिस अक्षय फलकी प्राप्ति होती है, वह गङ्गाजीके दर्शनसे क्षणभरमें प्राप्त हो जाता है। वह गङ्गा नदी महान् पुण्यदायिनी है, विशेषतः ब्रह्महत्यारोंके लिये परम पावन है। वे नरकमें पड़नेवाले हों तो भी गङ्गाजी उनके पाप हर लेती है। तात ! जैसे सूर्योदय होनेपर

अन्धकार दूर हो जाता है, उसी प्रकार गङ्गाके प्रभावसे पातक नष्ट हो जाते हैं। ये माता गङ्गा संसारमें सदा पवित्र मानी गयी हैं। इनका स्वरूप परम कल्याणमय है। माता जाह्नवीका स्वरूप दिव्य है। जैसे देवताओंमें श्रीविष्णु श्रेष्ठ है, उसी प्रकार नदियोंमें गङ्गा उत्तम है। जहाँ गङ्गा, यमुना और सरस्वती हैं, उन तीर्थोंमें स्नान और आचमन करके मनुष्य मोक्षका भागी होता है—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

[भित्र-भित्र तीर्थोंमें जानेपर भगवान् श्रीविष्णु तथा यमुना, गङ्गा आदि नदियोंका किस प्रकार स्तवन करना चाहिये, यह बताया जाता है—]

त्वद्वार्ता प्रथतो ब्रवीमि यदहं सास्तु स्तुतिस्ते प्रभो

यद् भुजे तत्व सत्रिवेदनेमथो यद्यामि सा प्रेष्यता ।  
यच्छ्रान्तः स्वप्यमि त्वदद्विग्रियुगले दण्डप्रणामोऽस्तु मे

स्वामिन् यद्य करोमि तेन स भवान् विश्वेश्वरः प्रीयताम् ॥

प्रभो ! मैं शुद्धभावसे आपके सम्बन्धमें जो कुछ भी चर्चा करता हूँ, वही आपके लिये स्तुति हो। जो कुछ भोजन करता हूँ, वह आपके लिये नैवेद्यका काम दे। जो चलता-फिरता हूँ, वही आपकी सेवा-टहल समझी जाय। जो थककर सो जाता हूँ, वही आपके लिये

\* गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि । मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ (२३ । २)

साष्टाङ्ग प्रणाम हो तथा स्वामिन् ! मैं जो कुछ करता हूँ उससे आप जगदीश्वर श्रीविष्णु प्रसन्न हों।

दृष्टेन वन्दितेनापि स्पृष्टेन च धृतेन च ।  
नरा येन विमुच्यन्ते तदेतद् यामुनं जलम् ॥

जिसके दर्शन, वन्दन, स्पर्श तथा धारण करनेसे मनुष्य भव-बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं, वही यह यमुनाजीका जल है। तावद् भ्रमन्ति भुवने मनुजा भवोत्थ-

दारिद्र्यरोगमरणव्यसनाभिभूताः ।

यावज्जलं तव महानदि नीलनीलं

पश्यन्ति नो दधति मूर्धसु सूर्यपुत्रि ॥

सूर्यपुत्री महानदी यमुनाजी ! मनुष्य इस जगत्में प्राप्त होनेवाले दरिद्रता, रोग और मृत्यु आदि दुःखोंसे पीड़ित होकर तभीतक संसारमें भटकते रहते हैं, जबतक वे नीलमणिके सदृश आपके नीले जलका दर्शन नहीं करते अथवा उसे अपने मस्तकपर नहीं चढ़ाते।

यत्संसृतिः सपदि कृत्तति दुष्कृतौघं

पापावर्लो जयति योजनलक्ष्तोऽपि ।

यत्राम नाम जगदुच्चरितं पुनाति

दिष्ट्या हि सा पथि दृशोर्भविताद्य गङ्गा ॥

जिनकी सृति पापराशिका तत्काल नाश कर देती है, जो लाख योजन दूरसे भी पापोंके समूहको परास्त करती है, जिनका नाम उच्चारण किये जानेपर सम्पूर्ण जगत्को पवित्र कर देता है, वे गङ्गाजी आज सौभाग्यवश मेरे दृष्टिपथमें आयेंगी।

आलोकोत्कण्ठितेन प्रमुदितमनसा वर्त्म यस्याः प्रयातं सद्यस्मिन् कृत्यमेतामथ प्रथमकृती जङ्गिवान् स्वर्गसिन्धुम् । स्नानं सन्ध्या निवापः सुरयजनमपि श्राद्धविप्राशनाद्यां सर्वं सम्पूर्णमेतद् भवति भगवतः प्रीतिदं नात्र चित्रम् ॥

मनुष्य दर्शनके लिये उत्कण्ठित तथा प्रसन्नचित्त होकर जिसके पथका अनुसरण करता है, जिसके तटपर समस्त शास्त्रविहित कर्म उत्तमतापूर्वक सम्पन्न होते हैं, उन गङ्गाजीको आदि सृष्टिके रचयिता ब्रह्माजीने पहले स्वर्गज्ञके रूपमें उत्पन्न किया था। उनके तटपर किया हुआ स्नान, सन्ध्या, तर्पण, देवपूजा, श्राद्ध और ब्राह्मण-भोजन आदि सब कुछ परिपूर्ण एवं भगवान्को प्रसन्नता

प्रदान करनेवाला होता है—इसमें कोई आशुर्यकी बात नहीं है।

द्रवीभूतं परं ब्रह्म परमानन्दाद्यिनि ।  
अर्ध्यं गृहाण मे गङ्गे पापं हर नमोऽस्तु ते ॥  
परमानन्द प्रदान करनेवाली गङ्गाजी ! आप जल-रूपमें अवतीर्ण साक्षात् परब्रह्म हैं। आपको नमस्कार है। आप मेरा दिया हुआ अर्ध्य ग्रहण कीजिये और मेरे पाप हर लीजिये।

साक्षाद्धर्मद्रवौघं मुररिपुचरणाम्बोजपीयूषसारं

दुःखस्वाब्धेस्तस्त्रिं सुरदनुजनुतं स्वर्गसोपानमार्गम् ।  
सर्वाहोहारि वारि प्रवरगुणगाणं भासि या संवहन्ती  
तस्यै भागीरथि श्रीमति मुदितमना देवि कुर्वे नमस्ते ॥

श्रीमती भागीरथी देवी ! जो जलरूपमें परिणत साक्षात् धर्मकी राशि है, भगवान् विष्णुके चरणारविन्दोंसे प्रकट हुई सुधाका सार है, दुःखरूपी समुद्रसे पार होनेके लिये जहाज है तथा स्वर्गलोकमें जानेके लिये सीढ़ी है, जिसे देवता और दानव भी प्रणाम करते हैं, जो समस्त पापोंका संहार करनेवाला, उत्तम गुणसमूहसे युक्त और शोभा-सम्पन्न है, ऐसे जलको आप धारण करती हैं। मैं प्रसन्नचित्त होकर आपको नमस्कार करता हूँ।

स्वःसिन्धो दुरिताब्धिमग्रजनतासंतारणि प्रोल्लस्त-  
कल्लोलामलकान्तिनाशिततमस्तोमे जगत्यावनि ।  
गङ्गे देवि पुनीहि दुष्कृतभयक्रान्तं कृपाभाजनं  
मातर्मा शरणागतं शरणदे रक्षाद्य भो भीषितम् ॥

स्वर्गलोककी नदी भगवती गङ्गे ! आप पापके समुद्रमें दूबी हुई जनताको तारनेवाली हैं, अपनी उठती हुई शोभायुक्त लहरोंकी निर्मल कान्तिसे पापरूपी अन्धकार-राशिका नाश करती हैं तथा जगत्को पवित्र करनेवाली हैं; मैं पापके भयसे ग्रस्त और आपका कृपा-भाजन हूँ। शरणदायिनी माता ! आपकी शरणमें आया हूँ; आज मुझ भयभीतकी रक्षा कीजिये। हं हो मानस कम्पसे किमु सखे त्रस्तो भयान्नारकात्

किं ते भीतिरिति श्रुतिर्दुरितकृत् संजायते नारकी ।  
मा घैषीः शृणु मे गति यदि मया पापाचलस्पर्धिनी  
प्राप्ता ते निरयः कथं किमपरं किं मे न धर्मो धनम् ॥

ऐ मेरे चित्त ! ओ मित्र ! तुम नरकके भयसे त्रस्त होकर काँप क्यों रहे हो ? क्या तुम्हें यह सोचकर भय हो रहा है कि पापी मनुष्य नरकमें पड़ता है—ऐसा श्रुतिका कथन है। सखे ! इसके लिये भय न करो; मेरी क्या गति होगी—यह बताता हूँ सुनो; यदि मुझे पापोंके पहाड़से भी टकर लेनेवाली भगवती गङ्गा प्राप्त हो गयी हैं तो तुम्हें नरककी प्राप्ति कैसे हो सकती है अथवा दूसरी कोई दुर्गति भी क्यों होगी। क्या मेरे पास धर्मरूपी धन नहीं है ?

स्वर्वसाधिप्रशंसामुदमनुभवितुं मज्जनं यत्र चोक्तं  
स्वनर्थो वीक्ष्य हष्टा विबुधसुरपतिप्राप्तिसंभावनेन ।  
नीरे श्रीजहुकन्ये यमनियमरताः स्नान्ति ये तावकीने  
देवत्वं ते लभन्ते स्फुटमशुभकृतोऽप्यत्र वेदाः प्रमाणम् ॥

जिस गङ्गाजीके जलमें किया हुआ स्नान स्वर्गलोकके निवास तथा प्रशंसाके आनन्दकी अनुभूतिका कारण बताया गया है, वहाँ किसीको स्नान करते देख स्वर्गलोककी देवियाँ एक नूतन देवता इन्द्रके मिलनेकी संभावनासे बहुत प्रसन्न होती हैं। जहुपुत्री गङ्गे ! जो लोग यम-नियमोंका पालन करते हुए आपके जलमें स्नान करते हैं, वे पहलेके पापी होनेपर भी निश्चय ही देवत्व प्राप्त कर लेते हैं—इस विषयमें वेद प्रमाण हैं। बुद्ध सद्बुद्धिरेवं भवतु तव सखे मानस स्वस्ति तेऽस्तु आस्तां पादौ पदस्थौ सततमिह युवां साधुदृष्टी च दृष्टी । वाणि प्राणप्रियेऽधिप्रकटगुणवपुः प्राप्तुहि प्राणपुष्टिं यस्मात् सर्वैर्भवद्दिः सुखमतुलमहं प्राप्तुयां तीर्थपुण्यम् ॥

बुद्ध ! सदा इसी प्रकार तुम्हारी सद्बुद्धि बनी रहे। सखे मन ! तुम्हारा भी कल्याण हो। चरणो ! तुम भी इसी प्रकार योग्य पद (स्थान) पर स्थित रहो। नेत्रो ! तुम दोनों भी उत्तम दृष्टिसे सम्पन्न रहो। वाणि ! तुम प्राणोंकी प्रिया हो तथा प्रकट हुए उत्तम गुणोंसे युक्त शरीर ! तुम्हारी प्राणशक्तिका पोषण हो; क्योंकि मैं तुम सब लोगोंके साथ आज अतुलित सुख प्रदान करनेवाले तीर्थजनित पुण्यको प्राप्त करूँगा।

श्रीजाह्नवीरविसुतापरमेष्ठिपुत्री-

सिन्धुत्रयाभरण तीर्थवर प्रयाग ।

सर्वेश मामनुग्रहाण नयस्व चोर्ध्व-  
मन्तस्तमोदशविद्यं दलय स्वथाप्रा ॥

गङ्गा, यमुना और सरस्वती—इन तीनों नदियोंको आभूषणरूपमें धारण करनेवाले तीर्थराज प्रयाग ! सर्वेश्वर ! मुझपर अनुग्रह करो, मुझे ऊँचे उठाओ तथा मेरे अन्तःकरणके दस प्रकारके अविद्यान्धकारको अपने तेजसे नष्ट करो।

वारीशविष्ववीशपुरन्दराद्या:

पापप्रणाशाय विदां विदोऽपि ।

भजन्ति यत्तीरमनीलनीलं  
स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥

ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा इन्द्र आदि देवता और विद्वानोंमें श्रेष्ठ विद्वान् (ऋषि-महर्षि) भी जिसके श्वेतकृष्णजलसे शोभित तटका सेवन करते हैं, उस तीर्थराज प्रयागकी जय हो।

कलिन्दजासङ्गमवाप्य यत्र  
प्रत्यागता स्वर्गधुनी धुनोति ।  
अथात्मतापत्रितयं जनस्य  
स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥

जहाँ आयी हुई गङ्गा कलिन्दनन्दिनी यमुनाका सङ्गम पाकर मनुष्योंके आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक—इन तीनों तापोंका नाश करती हैं, उस तीर्थराज प्रयागकी जय हो।

श्यामो वटेऽश्यामगुणं वृणोति  
स्वच्छायया श्यामलया जनानाम् ।  
श्यामः श्रमं कृन्ति यत्र दृष्टः  
स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥

जहाँ श्यामवट उज्ज्वल गुण धारण करता है तथा दर्शन करनेपर अपनी श्यामल छायासे मनुष्योंके जन्म-मरणरूप श्रमका नाश कर डालता है, उस तीर्थराज प्रयागकी जय हो।

ब्रह्मादयोऽप्यात्मकृति विहाय  
भजन्ति पुण्यात्मकभागधेयम् ।  
यत्रोन्निता दण्डधरः स्वदण्डं  
स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥

ब्रह्मा आदि देवता भी अपना काम छोड़कर जिस पुण्यमय सौभाग्यसे युक्त तीर्थका सेवन करते हैं तथा जहाँ दण्डधारी यमराज भी अपना दण्ड त्याग देते हैं, उस तीर्थराज प्रयागकी जय हो।

यत्सेवया देवनृदेवतादि-

देवर्ष्यः प्रत्यहमामनन्ति ।

स्वर्गं च सर्वोत्तमभूमिराज्यं

स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥

देवता, मनुष्य, ब्राह्मण तथा देवर्षि भी प्रतिदिन जिसके सेवनसे स्वर्ग एवं सर्वोत्तम भूमप्दलका राज्य प्राप्त करते हैं, उस तीर्थराज प्रयागकी जय हो।

एनांसि हन्तीति प्रसिद्धवार्ता

नामप्रतापेन दिशो द्रवन्ती ।

यस्य त्रिलोकी प्रतता यशोभिः

स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥

प्रयाग अपने नामके प्रतापसे समस्त पापोंका नाश कर डालता है, यह प्रसिद्ध वार्ता सम्पूर्ण दिशाओंमें फैली हुई है। जिसके सुयशसे सारी त्रिलोकी आच्छादित है, उस तीर्थराज प्रयागकी जय हो।

धत्तोऽभितश्चामरचारुकान्ती

सितासिते यत्र सरिद्वरेण्ये ।

आद्यो वटश्छत्रमिवातिभाति

स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥

जहाँ दोनों किनारे श्याम और श्वेत सलिलसे सुशोभित दो श्रेष्ठ सरिताएँ यमुना और गङ्गा चँवरकी मनोहर कान्ति धारण कर रही हैं और आदि वट (अक्षयवट) छत्रके समान सुशोभित होता है, उस तीर्थराज प्रयागकी जय हो।

ब्राह्मीनपुत्रीत्रिपथास्त्रिवेणी-

समागमेनाक्षतयागमात्रान् ।

यत्रामृतान् ब्रह्मपदं नवन्ति

स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥

सरस्वती, यमुना और गङ्गा—ये तीन नदियाँ जहाँ दुबकी लगानेवाले मनुष्योंको, जो त्रिवेणी-संगमके समर्कसे अक्षत यागफलको प्राप्त हो चुके हैं, ब्रह्म-

लोकमें पहुँचा देती हैं, उस तीर्थराज प्रयागकी जय हो। केषाञ्जिजन्मकोटिर्विजति सुवचसा यामि यामीति यस्मिन् केषाञ्जित्प्रोषितानां नियतमतिपतेद् वर्षवृन्दं वरिष्ठम् । यः प्राप्तो भाग्यलक्ष्मीर्भवति भवति नो वा स वाचामवाच्यो दिष्ट्या वेणीविशिष्टो भवति द्वृगतिथिः किं प्रयागः प्रयागः ॥

‘मैं प्रयागमें जाऊँगा, जाऊँगा’ इन सुन्दर बातोंमें ही कितने ही लोगोंके करोड़ों जन्म बीत जाते हैं [और प्रयागकी यात्रा सुलभ नहीं होती]। कुछ लोग घरसे चल तो देते हैं, पर मार्गमें ही फँस जानेके कारण उनके अनेकों वर्ष समाप्त हो जाते हैं। लाखों बार भाग्यकी सहायता होनेपर भी जो कभी प्राप्त होता है और कभी नहीं भी होता, वह त्रिवेणी-संगम-विशिष्ट उत्तम यज्ञभूमि प्रयाग वाणीसे परे है। क्या मेरा ऐसा भाग्य है कि वह मेरे नेत्रोंका अतिथि हो सके ?

लोकानामक्षमाणां मरवकृतिषु कलौ स्वर्गकामैर्जपस्तु-त्यादिस्तोत्रैर्वचोभिः कथममरपदप्राप्तिविन्नातुराणाम् । अग्निष्टोमाश्वमेधप्रमुखमरवफलं सम्यगालोच्य साङ्गं ब्रह्माद्यैस्तीर्थराजोऽभिमतद् उपदिष्टोऽयमेव प्रयागः ॥

कलियुगमें मनुष्य स्वर्गकी इच्छा होते हुए भी यज्ञ-यगादि करनेमें असमर्थ होनेके कारण जप, स्तुति, स्तोत्र एवं पाठ आदिके द्वारा किस प्रकार अमरपदकी प्राप्ति हो—इस चिन्तासे आतुर होंगे; उनको अङ्गोंसहित अग्निष्टोम और अश्वमेध आदि यज्ञोंका फल कैसे मिले—इसकी भलीभाँति आलोचना करके ब्रह्मा आदि देवताओंने इस तीर्थराज प्रयागको ही सब प्रकारके अभीष्ट फलोंका दाता बताया है।

मया प्रमादातुरतादिदोषतः

संध्याविधिनों समुपासितोऽभूत् ।

चेदत्र संध्यां चरतोऽप्रमादतः

संध्यास्तु पूर्णाख्यलजन्मनोऽपि मे ॥

यदि मैंने प्रमाद और आतुरता आदि दोषोंके कारण भलीभाँति संध्योपासना नहीं की है तो यहाँ सावधानता-पूर्वक संध्या करनेसे मेरे सम्पूर्ण जन्मकी संध्योपासना पूर्ण हो जाय।

अन्यत्रापि प्रगर्जन्महिमनि तपसि प्रेमिभिर्विप्रकृष्टे-र्थातः संकीर्तितो योऽभिमतपदविधातानिशं निर्व्यपेक्षम् ।

श्रीमत्पांशुं त्रिवेणीपरिवृढमतुलं तीर्थराजं प्रयागं  
गोउलंकारप्रकाशं स्वयममरवैश्वार्चितं तं नमामि ॥

जो माघमासमें अपनी महिमाके विषयमें अन्यत्र भी गर्जना करता है, प्रेमीजनोंके दूरसे भी अपना ध्यान और कीर्तन करनेपर जो बिना किसीकी सहायताके निरन्तर अभीष्ट फल प्रदान करनेवाला है, जिसकी धूलिराशि शोभासे सम्पन्न है, जो त्रिवेणीका स्वामी है, जिसकी संसारमें कहीं भी तुलना नहीं है तथा जिसका दिव्य स्वरूप अंशुमाली सूर्यके समान प्रकाशमान है, उस श्रेष्ठ देवताओं-द्वारा पूजित तीर्थराज प्रयागको मैं प्रणाम करता हूँ।

अस्माभिः सुतपोऽन्वतापि किमहोऽयज्यन्त किं वाच्वराः पात्रे दानमदायि किं बहुविधं किं वा सुराश्वार्चिताः । किं सत्तीर्थमसेवि किं द्विजकुलं पूजादिभिः सत्कृतं येन प्राप सदाशिवस्य शिवदा सा राजधानी स्वयम् ॥

अहो ! हमलोगोंने क्या कोई उत्तम तपस्या की थी ? अथवा यज्ञोंका अनुष्ठान किया था ? या किसी सुपात्रको नाना प्रकारकी वस्तुओंका दान दिया था ? अथवा देवताओंकी पूजा की थी ? या किसी उत्तम तीर्थका सेवन किया था ? अथवा ब्राह्मणवंशका पूजा आदिके द्वारा सत्कार किया था, जिससे भगवान् सदाशिवकी यह कल्याणदायिनी राजधानी काशी हमें स्वयं ही प्राप्त हो गयी !

भाग्यमेऽधिगता ह्यनेकजनुषां सर्वाधिविध्वंसिनी  
सर्वाश्वर्यमयी मया शिवपुरी संसारसिन्धोस्तरी ।  
लब्धं तज्जनुषः फलं कुलमलंचक्रे पवित्रीकृतः  
स्वात्मा चाप्यस्तिलं कृतं किमपरं सर्वोपरिष्ठात् स्थितम् ॥

मेरे बड़े भाग्य थे, जो अनेक जन्मोंकी पापराशिका विध्वंस करनेवाली संसार-समुद्रके लिये नौकारूपा यह सर्वाश्वर्यमयी शिवपुरी मुझे प्राप्त हुई । इससे जन्म लेनेका फल मिल गया । मेरे कुलकी शोभा बड़े गयी । मेरी अन्तरात्मा पवित्र हो गयी तथा मेरे सम्पूर्ण कर्तव्य पूर्ण हो गये । अधिक क्या कहूँ, अब मैं सर्वोपरि पदपर प्रतिष्ठित हो गया ।

जीवन्नरः पश्यति भद्रलक्ष्मेवं वदन्तीति मृषा न यस्मात् ।  
तस्मान्यथा वै वपुषेदृशेन प्राप्तापि काशी क्षणभङ्गेरेण ॥

मनुष्य जीवित रहे तो वह लाखों कल्याणकी बातें देखता है—ऐसी जो किंवदन्ती है, वह ज्ञाती नहीं है; इसीलिये मैंने इस क्षणभङ्गेर शरीरसे भी काशी-जैसी पुरीको प्राप्त कर लिया ।

काश्यां विधातुमरैरपि दिव्यभूमौ

सत्तीर्थैलङ्गणनार्चन्तो न शक्या ।  
यानीह गुप्तविवृतानि पुरातनानि

सिद्धानि योजितकरः प्रणामामि तेष्यः ॥

काशीपुरीकी दिव्य भूमिमें कितने उत्तम तीर्थ और लिङ्ग हैं, उनकी पूजनपूर्वक गणना करना देवताओंके लिये भी असंभव है । यहाँ गुप्त और प्रकटरूपसे जो-जो पुरातन सिद्धपीठ हैं, उन्हें मैं हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ । किं भीत्या दुरितात्कृतात् किमु मुदा पुण्यैरगण्यैः कृतैः किं विद्याभ्यसनान्वदेन जडतादोषाद् विषादेन किम् । किं गवेण धनोदयादधनतातापेन किं भो जनाः स्नात्वा श्रीमणिकर्णिकापयसि चेद् विश्वेश्वरो दृश्यते ॥

मनुष्यो ! यदि श्रीमणिकर्णिकाके जलमें स्नान करके भगवान् विश्वनाथजीका दर्शन किया जाता हो तो पूर्वकृत पापोंसे भयकी क्या आवश्यकता है । अथवा किये हुए अगणित पुण्योंद्वारा प्राप्त होनेवाले आनन्दसे भी क्या लेना है । विद्याभ्यासको लेकर घमंड या मूर्खताके लिये खेद करनेसे क्या लाभ है ? धनकी प्राप्तिसे होनेवाले गर्व तथा निर्धनताके कारण होनेवाले संतापसे भी क्या प्रयोजन है ।

अल्पस्फीतिनिरामयापि तनुताप्रब्यक्तशक्त्यात्मता  
प्रोत्साहाद्यबलेन केवलमनोरागद्वितीयेन यत् ।  
अप्राप्यापि मनोरथैरविषया स्वप्रप्रवृत्तेरपि  
प्राप्ता सापि गदाधरस्य नगरी सद्योऽपवर्गप्रदा ॥

जो स्वल्प समृद्धिसे युक्त होनेपर भी निरामय (नाशरहित) है, सूक्ष्मताके द्वारा ही जो अपनी शक्ति-शालिता सूचित कर रही है, अप्राप्य होनेपर भी जो उत्साहयुक्त बल तथा विशुद्ध मानसिक अनुरागसे प्राप्त होती है, मनोरथोंकी भी जहाँतक पहुँच नहीं है, जो स्वप्नमें भी सुलभ नहीं होती, वह तत्काल मोक्ष प्रदान करनेवाली भगवान् गदाधरकी नगरी गया आज मुझे प्राप्त हुई है ।

मन्ये नात्मकृतिर्न पूर्वपुरुषप्राप्तेभलं चात्र त-  
न्नापीदं स्वजनप्रमाणमचलं किं शापतापादिकम् ।  
या दुष्टापगयाप्रव्यागयमुनाकाशीषु पर्वागमात्  
प्राप्तिस्त्र महाफलो विजयते श्रीशारदानुग्रहः ॥

कोई पुण्यपर्व आनेपर जो गया, प्रयाग, यमुना और  
काशी आदि दुर्लभ तीर्थोंमें आनेका सौभाग्य प्राप्त होता  
है, उसमें महान् फलदायक भगवती शारदाका अनुग्रह  
ही एकमात्र कारण है; उसीकी विजय है। मैं इसे अपना  
पुरुषार्थ नहीं मानता। पूर्वजोंने जो यहाँ आकर  
पुण्योपार्जन किया है, उसका बल भी इसमें सहायक  
नहीं है तथा स्वजनवर्गकी अविचल शक्ति भी इसमें  
कारण नहीं है। इन तीर्थोंमें आनेपर शाप-ताप आदि क्या  
कर सकते हैं।

यः श्राद्धसमये दूरात्स्मृतोऽपि पितृमुक्तिदः ।  
तं गयायां स्थितं साक्षात्त्रमामि श्रीगदाधरम् ॥

जो श्राद्ध-कालमें दूरसे स्मरण करनेपर भी  
पितरोंको मोक्ष प्रदान करते हैं, गयामें स्थित उन साक्षात्  
भगवान् श्रीगदाधरको मैं प्रणाम करता हूँ।

पन्थानं समतीत्य दुस्तरमिमं दूराद्वीयस्तरं  
क्षुद्रव्याघ्रतरक्षुकण्टकफणिप्रत्यर्थिभिः संकुलम् ।  
आगत्य प्रथमं ह्यायं कृपणवाग् याचेज्जनः कं परं  
श्रीमद्द्वारि गदाधर प्रतिदिनं त्वां द्वष्टुमुक्तपृष्ठते ॥

भगवान् गदाधर ! यह आपका दास मक्खी,  
मच्छ, बाघ, चीते, कौटि, सर्प तथा लुटेरोंसे भरे हुए इस  
दुस्तर मार्गको, जो दूरसे भी दूर पड़ता है, तै करके  
पहले-पहल यहाँ आया है और दीन वाणीमें आपसे  
याचना करता है। भला, आपके सिवा और किसके  
सामने यह हाथ फैलाये। भगवन् ! यह सेवक प्रतिदिन  
आपके शोभासम्पन्न द्वारपर आकर दर्शनके लिये  
उत्कण्ठित रहता है।

सर्वात्मनिजदर्शनेन च गयाश्राद्धेन वै दैवतान्  
प्रीणन् विश्वमनीहवत् कथमिहौदासीन्यमालम्बसे ।  
किं ते सर्वद निर्दयत्वमधुना किं वा प्रभुत्वं कले:  
किं वा सत्त्वनिरीक्षणं नृषु चिरं किं वास्य सेवारुचिः ॥

सर्वात्मन् ! आप अपने दर्शनसे तथा गयामें किये  
जानेवाले श्राद्धसे देवताओंसहित सम्पूर्ण विश्वको तृप्ति  
करते हैं; फिर मेरे सामने क्यों निश्चेष्ट-से होकर उदासीन  
भाव धारण कर रहे हैं? भक्तको सर्वस्व देनेवाले  
दयामय ! क्या इस समय आपने निर्दयता धारण कर ली  
है? या यह कलियुगका प्रभाव है? अथवा देर  
लगाकर आप मनुष्योंके सत्त्व (शुद्ध भाव एवं धैर्य) की  
परीक्षा ले रहे हैं या इस दासकी भगवत्सेवामें कितनी  
रुचि है, इसका निरीक्षण कर रहे हैं?

गदाधर मया श्राद्धं यच्चीर्णं त्वत्प्रसादतः ।  
अनुजानीहि मां देव गमनाय गृहं प्रति ॥\*

गदाधर ! आपकी कृपासे मैंने यहाँ श्राद्धका  
अनुष्ठान किया है; [इसे स्वीकार कीजिये और] देव !  
अब मुझे घर जानेकी आज्ञा दीजिये।

एवं हि देवतानां च स्तोत्रं स्वर्गार्थदायकम् ।  
श्राद्धकाले पठेन्नित्यं स्नानकाले तु यः पठेत् ॥  
सर्वतीर्थसमं स्नानं श्रवणात्पठनाज्जपात् ॥  
प्रयागस्य च गङ्गाया यमुनायाः स्तुतेद्विंश्च ।  
श्रवणेन विनश्यन्ति दोषाश्चैव तु कर्मजाः ॥

(२३ । ५१, ५३, ५४)

इस प्रकार यह देवताओंका स्तोत्र स्वर्ग एवं अभीष्ट  
वस्तु प्रदान करनेवाला है। जो मनुष्य श्राद्धकालमें तथा  
प्रतिदिन स्नानके समय इसका पाठ करता है, उसे सब  
तीर्थोंमें स्नानके समान पुण्य होता है। इसके श्रवण, पाठ  
तथा जपसे उक्त फलकी सिद्धि होती है। ब्रह्मन् ! प्रयाग,  
गङ्गा तथा यमुनाकी स्तुतिका श्रवण करनेसे कर्मजन्य  
दोष नष्ट हो जाते हैं।



## तुलसी, शालग्राम तथा प्रयागतीर्थका माहात्म्य

**शिवजी बोले—नारद !** सुनो; अब मैं तुलसीका माहात्म्य बताता हूँ, जिसे सुनकर मनुष्य जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त किये हुए पापसे छुटकारा पा जाता है। तुलसीका पत्ता, फूल, फल, मूल, शाखा, छाल, तना और मिट्टी आदि सभी पावन हैं।\* जिनका मृत शरीर तुलसी-काष्ठकी आगसे जलाया जाता है, वे विष्णुलोकमें जाते हैं। मृत पुरुष यदि अगम्यागमन आदि महान् पापोंसे ग्रस्त हो, तो भी तुलसी-काष्ठकी अग्रिमे देहका दाह-संस्कार होनेपर वह शुद्ध हो जाता है। जो मृत पुरुषके सम्पूर्ण अङ्गोंमें तुलसीका काष्ठ देकर पश्चात् उसका दाह-संस्कार करता है, वह भी पापसे मुक्त हो जाता है। जिसकी मृत्युके समय श्रीहरिका कीर्तन और स्मरण हो तथा तुलसीकी लकड़ीसे जिसके शरीरका दाह किया जाय, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। यदि दाह-संस्कारके समय अन्य लकड़ियोंके भीतर एक भी तुलसीका काष्ठ हो तो करोड़ों पापोंसे युक्त होनेपर भी मनुष्यकी मुक्ति हो जाती है।† तुलसीकी लकड़ीसे मिश्रित होनेपर सभी काष्ठ पवित्र हो जाते हैं। तुलसी-काष्ठकी अग्रिमे मृत मनुष्यका दाह होता देख विष्णुदूत ही आकर उसे वैकुण्ठमें ले जाते हैं; यमराजके दूत उसे नहीं ले जा सकते। वह करोड़ों जन्मोंके पापसे मुक्त हो भगवान् विष्णुको प्राप्त होता है। जो मनुष्य तुलसी-काष्ठकी अग्रिमें जलाये जाते हैं, उन्हें विमानपर बैठकर वैकुण्ठमें जाते देख देवता उनके ऊपर पुष्पाञ्जलि चढ़ाते हैं। ऐसे पुरुषको देखकर भगवान् विष्णु और शिव संतुष्ट होते हैं तथा श्रीजनार्दन उसके सामने जा हाथ पकड़कर उसे अपने धाममें ले जाते हैं। जिस अग्रिशाला अथवा श्मशानभूमिमें धीके साथ तुलसी-काष्ठकी अग्रि प्रज्वलित होती है, वहाँ जानेसे मनुष्योंका पातक भस्म हो जाता है।

जो ब्राह्मण तुलसी-काष्ठकी अग्रिमे हवन करते हैं, उन्हें एक-एक सिक्थ (भातके दाने) अथवा एक-एक तिलमें अग्रिष्टेम यज्ञका फल मिलता है। जो भगवान्को तुलसी-काष्ठका धूप देता है, वह उसके फलस्वरूप सौ यज्ञानुष्ठान तथा सौ गोदानका पुण्य प्राप्त करता है। जो तुलसीकी लकड़ीकी आँचसे भगवान्का नैवेद्य तैयार करता है, उसका वह अत्र यदि थोड़ा-सा भी भगवान् केशवको अर्पण किया जाय तो वह मेरुके समान अन्नदानका फल देनेवाला होता है। जो तुलसी-काष्ठकी आगसे भगवान्के लिये दीपक जलाता है, उसे दस करोड़ दीप-दानका पुण्य प्राप्त होता है। इस लोकमें पृथ्वीपर उसके समान वैष्णव दूसरा कोई नहीं दिखायी देता। जो भगवान् श्रीकृष्णको तुलसी-काष्ठका चन्दन अर्पण करता तथा उनके श्रीविग्रहमें उस चन्दनको भक्तिपूर्वक लगाता है। वह सदा श्रीहरिके समीप रमण करता है। जो मनुष्य अपने अङ्गमें तुलसीकी कीचड़ लगाकर श्रीविष्णुका पूजन करता है, उसे एक ही दिनमें सौ दिनोंके पूजनका पुण्य मिल जाता है। जो पितरोंके पिण्डमें तुलसीदल मिलाकर दान करता है, उसके दिये हुए एक दिनके पिण्डसे पितरोंको सौ वर्षोंतक तृप्ति बनी रहती है। तुलसीकी जड़की मिट्टीके द्वारा विशेषरूपसे स्नान करना चाहिये। इससे जबतक वह मिट्टी शरीरमें लगी रहती है, तबतक स्नान करनेवाले पुरुषको तीर्थ-स्नानका फल मिलता है। जो तुलसीकी नयी मञ्जरीसे भगवान्की पूजा करता है, उसे नाना प्रकारके पुष्पोंद्वारा किये हुए पूजनका फल प्राप्त होता है। जबतक सूर्य और चन्द्रमा हैं, तबतक वह उसका पुण्य भोगता है। जिस घरमें तुलसी-वृक्षका बगीचा है, उसके दर्शन और स्पर्शसे भी ब्रह्महत्या आदि सारे पाप नष्ट हो जाते हैं।

\* पत्रं पुष्पं फलं मूलं शाखा त्वक् स्कन्धसंज्ञितम्। तुलसीसंभवं सर्वं पावनं मृतिकादिकम्॥ (२४।२)

† यद्येकं तुलसीकाष्ठं मध्ये काष्ठस्य तस्य हि। दाहकाले भवेन्मुक्तिः कोटिपापयुतस्य च॥ (२४।७)

जिस-जिस घर, गाँव अथवा वनमें तुलसीका वृक्ष हो, वहाँ-वहाँ जगदीश्वर श्रीविष्णु प्रसन्नचित्त होकर निवास करते हैं। उस घरमें दरिद्रता नहीं रहती और बन्धुओंसे वियोग नहीं होता। जहाँ तुलसी विराजमान होती है, वहाँ दुःख, भय और रोग नहीं ठहरते। यों तो तुलसी सर्वत्र ही पवित्र होती है, किन्तु पुण्यक्षेत्रमें वे अधिक पावन मानी गयी हैं। भगवान्‌के समीप पृथ्वी-तलपर तुलसीको लगानेसे सदा विष्णुपद (वैकुण्ठ-धाम) की प्राप्ति होती है। तुलसीद्वारा भक्तिपूर्वक पूजित होनेपर शान्तिकारक भगवान् श्रीहरि भयंकर उत्पातों, रोगों तथा अनेक दुर्निमित्तोंका भी नाश कर डालते हैं। जहाँ तुलसीकी सुगन्ध लेकर हवा चलती है, वहाँकी दसों दिशाएँ और चारों प्रकारके जीव पवित्र हो जाते हैं। मुनिश्रेष्ठ ! जिस गृहमें तुलसीके मूलकी मिट्टी मौजूद है, वहाँ सम्पूर्ण देवता तथा कल्याणमय भगवान् श्रीहरि सर्वदा स्थित रहते हैं। ब्रह्मन् ! तुलसी-वनकी छाया जहाँ-जहाँ जाती हो, वहाँ-वहाँ पितरोंकी तृप्तिके लिये तर्पण करना चाहिये।

नारद ! जहाँ तुलसीका समुदाय पड़ा हो, वहाँ किया हुआ पिण्डदान आदि पितरोंके लिये अक्षय होता है। तुलसीकी जड़में ब्रह्मा, मध्यभागमें भगवान् जनार्दन तथा मञ्जरीमें श्रीरुद्रदेवका निवास है; इसीसे वह पावन मानी गयी है। विशेषतः शिवमन्दिरमें यदि तुलसीका वृक्ष लगाया जाय तो उससे जितने बीज तैयार होते हैं, उतने ही युगोंतक मनुष्य स्वर्गलोकमें निवास करता है। जो पार्वण श्राद्धके अवसरपर, श्रावण मासमें तथा संक्रान्तिके दिन तुलसीका पौधा लगाता है, उसके लिये वह अत्यन्त पुण्यदायिनी होती है। जो प्रतिदिन तुलसीदलसे भगवान्‌की पूजा करता है, वह यदि दरिद्र हो तो धनवान् हो जाता है। तुलसीकी मूर्ति सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्रदान करनेवाली होती है; वह श्रीकृष्णकी कीर्ति प्रदान करती है। जहाँ शालग्रामकी शिला होती है, वहाँ श्रीहरिका सानिध्य बना रहता है। वहाँ किया हुआ स्नान और दान काशीसे सौगुना अधिक महत्वशाली है। शालग्रामकी पूजासे कुरुक्षेत्र, प्रयाग तथा नैमिषारण्यकी अपेक्षा

कोटिगुना पुण्यं प्राप्त होता है। जहाँ कहीं शालग्राममयी मुद्रा हो, वहाँ काशीका सारा पुण्य प्राप्त हो जाता है। मनुष्य ब्रह्महत्या आदि जो कुछ पाप करता है, वह सब शालग्रामशिलाकी पूजासे शीघ्र नष्ट हो जाता है।

महादेवजी कहते हैं—नारद ! अब मैं वेदोंमें कही हुई प्रयागतीर्थकी महिमाका वर्णन करूँगा। जो मनुष्य पुण्य-कर्म करनेवाले हैं, वे ही प्रयागमें निवास करते हैं। जहाँ गङ्गा, यमुना और सरस्वती—तीनों नदियोंका संगम है, वही तीर्थप्रवर प्रयाग है; वह देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। इसके समान तीर्थ तीनों लोकोंमें न कोई हुआ है न होगा। जैसे ग्रहोंमें सूर्य और नक्षत्रोंमें चन्द्रमा श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार सब तीर्थोंमें प्रयाग नामक तीर्थ उत्तम है। विद्वन् ! जो प्रातःकाल प्रयागमें स्नान करता है, वह महान् पापसे मुक्त हो परमपदको प्राप्त होता है। जो दरिद्रताको दूर करना चाहता हो, उसे प्रयागमें जाकर कुछ दान करना चाहिये। जो मनुष्य प्रयागमें जाकर वहाँ स्नान करता है, वह धनवान् और दीर्घजीवी होता है। वहाँ जाकर मनुष्य अक्षयवटका दर्शन करता है, उसके दर्शनमात्रसे ब्रह्महत्याका पाप नष्ट होता है। उसे आदिवट कहा गया है। कल्पान्तमें भी उसका दर्शन होता है। उसके पत्रपर भगवान् विष्णु शयन करते हैं; इसलिये वह अविनाशी माना गया है। विष्णुभक्त मनुष्य प्रयागमें अक्षयवटका पूजन करते हैं। उस वृक्षमें सूत लपेटकर उसकी पूजा करनी चाहिये।

वहाँ 'माधव' नामसे प्रसिद्ध भगवान् विष्णु नित्य विराजमान रहते हैं; उनका दर्शन अवश्य करना चाहिये। ऐसा करनेवाला पुरुष महापापोंसे छुटकारा पा जाता है। देवता, ऋषि और मनुष्य—सभी वहाँ अपने-अपने योग्य स्थानका आश्रय लेकर नित्य निवास करते हैं। गोहत्यारा, चाण्डाल, दुष्ट, दूषितहृदय, बालघाती तथा अज्ञानी मनुष्य भी यदि वहाँ मृत्युको प्राप्त होता है तो चतुर्भुजरूप धारण करके सदा ही वैकुण्ठ-धाममें निवास करता है। जो मानव प्रयागमें माघ-स्नान करता है, उसे प्राप्त होनेवाले पुण्यफलकी कोई गणना नहीं है। भगवान् नारायण प्रयागमें स्नान करनेवाले पुरुषोंको भोग और

मोक्ष प्रदान करते हैं। जैसे ग्रहोंमें सूर्य और नक्षत्रोंमें चन्द्रमा श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार महीनोंमें माघ मास श्रेष्ठ है। यह सभी कर्मके लिये उत्तम है। विद्वन्! यह माघ-मकरका योग चराचर त्रिलोकीके लिये दुर्लभ है। जो इसमें यत्पूर्वक सात, पाँच अथवा तीन दिन भी प्रयाग-स्नान कर लेता है, उसका अभ्युदय होता है। मनुष्य आदि चराचर जीव प्रयाग

तीर्थका सेवन करके वैकुण्ठलोकको प्राप्त होते हैं। दिव्यलोकमें रहनेवाले जो वसिष्ठ और सनकादि ऋषि हैं, वे भी प्रयागतीर्थका बारंबार सेवन करते हैं। विष्णु, रुद्र और इन्द्र भी तीर्थप्रवर प्रयागमें निवास करते हैं। प्रयागमें दान और नियमोंके पालनकी प्रशंसा होती है। वहाँ स्नान और जलपान करनेसे पुनर्जन्म नहीं होता।



### त्रिरात्र तुलसीब्रतकी विधि और महिमा

**नारदजी बोले—भगवन्!** आपकी कृपासे मैंने तुलसीके माहात्म्यका श्रवण किया। अब त्रिरात्र तुलसी-ब्रतका वर्णन कीजिये।

**महादेवजीने कहा—विद्वन्!** तुम बड़े बुद्धिमान् हो, सुनो; यह ब्रत बहुत पुराना है। इसका श्रवण करके मनुष्य निश्चय ही सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। नारद ! ब्रत करनेवाला पुरुष कार्तिक शुक्लपक्षकी नवमी तिथिको नियम ग्रहण करे। पृथ्वीपर सोये और इन्द्रियोंको काबूमें रखे। त्रिरात्रब्रत करनेके उद्देश्यसे वह शौच-स्नानसे शुद्ध हो मनको संयममें रखते हुए प्रतिदिन रातको नियमपूर्वक तुलसीबनके समीप शयन करे। मध्याह्न-कालमें नदी आदिके निर्मल जलमें स्नान करके विधि-पूर्वक देवताओं और पितरोंका तर्पण करे। इस ब्रतमें पूजाके लिये लक्ष्मी और श्रीविष्णुकी सुवर्णमयी प्रतिमा बनवानी चाहिये तथा उनके लिये दो वस्त्र भी तैयार करा लेने चाहिये। वस्त्र पीत और श्वेत वर्णके हों। ब्रतके आरम्भमें विधिपूर्वक नवग्रह-शान्ति कराये, उसके बाद चरु पकाकर उसके द्वारा श्रीविष्णु देवताकी प्रीतिके लिये हवन करे। द्वादशीके दिन देवदेवेश्वर भगवान्की यत्पूर्वक पूजा करके विधिके अनुसार कलश-स्थापन करे। कलश शुद्ध हो और फूटा-टूटा न हो। उसमें पञ्चरत्न, पञ्चपल्लव तथा ओषधियाँ पड़ी हों। कलशके ऊपर एक पात्र रखे और उसके भीतर लक्ष्मीजीके साथ भगवान् विष्णुकी प्रतिमाको विराजमान करे। फिर वैदिक और पौराणिक मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए तुलसी-वृक्षके मूलमें भगवत्प्रतिमाकी स्थापना करे। तुलसीकी

वाटिकाको केवल जलसे सोंचे। फिर देवाधिदेव जगद्गुरु भगवान्को पञ्चामृतसे स्नान कराकर इस प्रकार प्रार्थना करे—

#### प्रार्थना-मन्त्र

योऽनन्तरूपोऽखिलविश्वरूपो

गर्भोदके लोकविधि बिभर्ति ।

प्रसीदतामेष स देवदेवो

यो मायया विश्वकृदेव रूपी ॥

‘जिनके रूपका कहीं अन्त नहीं है, सम्पूर्ण विश्व जिनका स्वरूप है, जो गर्भरूप (आधारभूत) जलमें स्थित होकर लोकसृष्टिका भरण-पोषण करते हैं और मायासे ही रूपवान् होकर समस्त संसारकी सृष्टि करते हैं, वे देवदेव परमेश्वर मुझपर प्रसन्न हों।’

#### आवाहन-मन्त्र

आगच्छाच्युत देवेश तेजोराशे जगत्पते ।

सदैव तिमिरध्वंसिस्त्राहि मां भवसागरात् ॥

‘हे अच्युत ! हे देवेश ! हे तेजःपुज्ञ जगदीश्वर ! यहाँ पधारिये; आप सदा ही अज्ञानान्धकारका नाश करनेवाले हैं, इस भवसागरसे मेरी रक्षा कीजिये।’

#### स्नान-मन्त्र

पञ्चामृतेन सुस्नातस्तथा गन्धोदकेन च ।

गङ्गादीनां च तोयेन स्नातोऽनन्तः प्रसीदतु ॥

‘पञ्चामृत और चन्दनयुक्त जलसे भलीभांति नहाकर गङ्गा आदि नदियोंके जलसे स्नान किये हुए भगवान् अनन्त मुझपर प्रसन्न हों।’

**विलेपन-मन्त्र**

श्रीखण्डागुरुकर्पूरकुङ्कुमादिविलेपनम् ।

भक्तया दत्तंस्मयाऽऽग्नेयं लक्ष्म्या सह गृहण वै ॥

‘भगवन् ! मैंने चन्दन, अरगजा, कपूर और केसर आदिका सुगन्धित अङ्गराग भक्तिपूर्वक अर्पण किया है; आप श्रीलक्ष्मीजीके साथ इसे स्वीकार करें।’

**वस्त्र-मन्त्र**

नारायण नमस्तेऽस्तु नरकार्णवतारण ।

त्रैलोक्याधिष्ठते तुश्यं ददामि वसनं शुचि ॥

‘नरकके समुद्रसे तारनेवाले नारायण ! आपको नमस्कार है। त्रिलोकीनाथ ! मैं आपको पवित्र वस्त्र अर्पण करता हूँ।’

**यज्ञोपवीत-मन्त्र**

दामोदर नमस्तेऽस्तु त्राहि मां भवसागरात् ।

ब्रह्मसूत्रं मया दत्तं गृहण पुरुषोत्तम ॥

‘दामोदर ! आपको नमस्कार है, भवसागरसे मेरी रक्षा कीजिये। पुरुषोत्तम ! मैंने ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) अर्पण किया है, आप इसे ग्रहण करें।’

**पुष्टि-मन्त्र**

पुष्पाणि च सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो ।

मया दत्तानि देवेश प्रीतितः प्रतिगृह्यताम् ॥

‘प्रभो ! मैंने मालती आदिके सुगन्धित पुष्टि सेवामें प्रस्तुत किये हैं, देवेश्वर ! आप इन्हें प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करें।’

**नैवेद्य-मन्त्र**

नैवेद्यं गृह्णतां नाथ भक्ष्यभोज्यैः समन्वितम् ।

सर्वैः रसैः सुसम्पन्नं गृहण परमेश्वर ॥

‘नाथ ! भक्ष्य-भोज्य पदाथीसे युक्त नैवेद्य स्वीकार कीजिये; परमेश्वर ! यह सब रसोंसे सम्पन्न है, इसे ग्रहण करें।’

**ताम्बूल-मन्त्र**

पूर्णानि नागपत्राणि कर्पूरसहितानि च ।

मया दत्तानि देवेश ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥

‘देवेश्वर ! मैंने सुपारी, पानके पत्ते और कपूर

आपकी सेवामें भेट किये हैं; आप यह बीड़ा स्वीकार करें।’

तत्पश्चात् भक्तिपूर्वक धूप, अगर तथा धी मिलाया हुआ गुग्गुल—इनकी आहुति देकर भगवान्को सुंघाये। इस प्रकार पूजा करनी चाहिये। धीका दीपक जलाना चाहिये। मुनिश्रेष्ठ ! एकाग्रचित्त हो भगवान् श्रीलक्ष्मी-नारायणके सामने तथा तुलसीबनके समीप नाना प्रकारका दीपक सजाना चाहिये। चक्रधारी देवाधिदेव विष्णुको प्रतिदिन अर्घ्य भी देना चाहिये। पुत्र-प्राप्तिके लिये नवमीको नारियलका अर्घ्य देना उत्तम है। धर्म, काम तथा अर्थ—तीनोंकी सिद्धिके लिये दशमीको बिजौरीका अर्घ्य अर्पण करना उचित है तथा एकादशीको अनारसे अर्घ्य देना चाहिये; इससे सदा दरिद्रताका नाश होता है। नारद ! बाँसके पात्रमें सप्तधान्य रखकर उसमें सात फल रखें; फिर तुलसीदल, फूल एवं सुपारी डालकर उस पात्रको वस्त्रसे ढक दें। तत्पश्चात् उसे भगवान्के सम्मुख निवेदन करें। विप्रेन्द्र ! अर्घ्य निष्ठाङ्कित मन्त्रसे देना चाहिये; इसे एकाग्रचित्त होकर सुनो—

**अर्घ्य-मन्त्र**

तुलसीसहितो देव सदा शङ्खेन संयुतम् ।

गृहणार्घ्यं मया दत्तं देवदेव नमोऽस्तु ते ॥

‘देव ! आप तुलसीजीके साथ मेरे दिये हुए इस शङ्खयुक्त अर्घ्यको ग्रहण करें। देवदेव ! आपको नमस्कार है।’

इस प्रकार लक्ष्मीसहित देवेश्वर भगवान् विष्णुकी पूजा करके ब्रतकी पूर्तिके निमित्त उन देवदेवेश्वरसे प्रार्थना करें—

उपोषितोऽहं देवेश कामक्रोधविवर्जितः ।

ब्रतेनानेन देवेश त्वमेव शरणं मम ॥

गृहीतेऽस्मिन् ब्रते देव यदपूर्णं कृतं मया ।

सर्वं तदस्तु सम्पूर्णं त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ॥

नमः कमलपत्राक्षं नमस्ते जलशायिने ।

इदं ब्रतं मया चीर्णं प्रसादात्तव केशव ॥

अज्ञानतिमिरध्वंसिन् ब्रतेनानेन केशव ।  
प्रसादसुमुखो भूत्वा ज्ञानदृष्टिप्रदो भव ॥\*

'देवेश्वर ! मैंने काम-क्रोधसे रहित होकर इस ब्रतके द्वारा उपवास किया है । देवेश ! आप ही मेरे शरणदाता हैं । देव ! जनर्दन ! इस ब्रतको ग्रहण करके मैंने इसके जिस अङ्गकी पूर्ति न की हो, वह सब आपके प्रसादसे पूर्ण हो जाय । कमलनयन ! आपको नमस्कार है । जलशायी नारायण ! आपको प्रणाम है । केशव ! आपके ही प्रसादसे मैंने इस ब्रतका अनुष्ठान किया है । अज्ञानान्धकारका विनाश करनेवाले केशव ! आप इस ब्रतसे प्रसन्न होकर मुझे ज्ञान-दृष्टि प्रदान करें ।'

तदनन्तर रातमें जागरण, गान तथा पुस्तकका स्वाध्याय करे । गानविद्या तथा नृत्यकलामें प्रवीण पुरुषोद्वारा संगीत और नृत्यकी व्यवस्था करे । अत्यन्त सुन्दर एवं पवित्र उपाख्यानोंके द्वारा रात्रिका समय व्यतीत करे । निशाके अन्तमें प्रभात होनेपर जब सूर्यदेवका उदय हो जाय, तब ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करके भक्तिपूर्वक वैष्णव श्राद्ध करे । यज्ञोपवीत, वस्त्र, माला तथा चन्दन

देकर वस्त्राभूषण एवं केसरके द्वारा पूजनपूर्वक तीन ब्राह्मण-दम्पतीको भोजन कराये । घृत-मिश्रित खीरके द्वारा यथेष्ट भोजन करानेके पश्चात् दक्षिणासहित पान, फूल और गन्ध आदि दान करे । अपनी शक्तिके अनुसार बाँसके अनेक पात्र बनवाकर उन्हें पके हुए नारियल, पकवान, वस्त्र तथा भाँति-भाँतिके फलोंसे भरे । सपलीक आचार्यको वस्त्र पहनाये । दिव्य आभूषण देकर चन्दन और मालासे उनका पूजन करे । फिर उन्हें सब सामग्रियोंसे युक्त दूध देनेवाली गौ दान करे । गौके साथ दक्षिणा, वस्त्र, आभूषण, दोहनपात्र तथा अन्यान्य सामग्री भी दे । श्रीलक्ष्मीनारायणकी प्रतिमा भी सब सामग्रियोंसहित आचार्यको दे । सब तीर्थोंमें स्नान करनेवाले मनुष्योंको जो पुण्य प्राप्त होता है, वह सब इस ब्रतके द्वारा देव-देव विष्णुके प्रसादसे प्राप्त हो जाता है । ब्रत करनेवाला पुरुष इस लोकमें मनको प्रिय लगनेवाला सम्पूर्ण पदार्थों और प्रचुर भोगोंका उपभोग करके अन्तमें श्रीविष्णुकी कृपासे भगवान् विष्णुके परमधामको प्राप्त होता है ।



### अन्नदान, जलदान, तडाग-निर्माण, वृक्षारोपण तथा सत्यभाषण आदिकी महिमा

नारदजीने पूछा—भगवन् ! गुणोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको देनेकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य इस लोकमें किन-किन वस्तुओंका दान करे ? यह सब बताइये ।

महादेवजी बोले—देवर्षिप्रवर ! सुनो—लोकमें तत्त्वको जानकर सज्जन पुरुष अन्नदानकी ही प्रशंसा करते हैं; क्योंकि सब कुछ अन्नमें ही प्रतिष्ठित हैं । अतएव साधु महात्मा विशेषरूपसे अन्नका ही दान करना चाहते हैं । अन्नके समान कोई दान न हुआ है न होगा । यह चराचर जगत् अन्नके ही आधारपर टिका हुआ है । लोकमें अन्न ही बलवर्धक है । अन्नमें ही प्राणोंकी स्थिति है । कल्याणकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको उचित है कि वह अपने कुटुम्बको कष्ट देकर भी अन्नकी भिक्षा माँगने-

वाले महात्मा ब्राह्मणको अवश्य दान दे । नारद ! जो याचना करनेवाले पीड़ित ब्राह्मणको अन्न दे, वही विद्वानोंमें श्रेष्ठ है । यह दान आत्माके पारलौकिक सुखका साधन है । रास्तेका थका-माँदा गृहस्थ ब्राह्मण यदि भोजनके समय घरपर आकर उपस्थित हो जाय तो कल्याणकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको अवश्य उसे अन्न देना चाहिये । अन्नदाता इहलोक और परलोकमें भी सुख उठाता है । थके-माँदे अपरिचित राहगीरको जो बिना क्लेशके अन्न देता है, वह सब धर्मोंका फल प्राप्त करता है । अतिथिकी न तो निन्दा करे और न उससे द्रोह ही रखे । उसे अन्न अर्पण करे । उस दानकी विशेष प्रशंसा है ।

महामुने ! जो मनुष्य अन्नसे देवताओं, पितरों,

ब्राह्मणों तथा अतिथियोंको तृप्त करता है, उसे अक्षय पुण्यकी प्राप्ति होती है। महान् पाप करके भी जो याचकको—विशेषतः ब्राह्मणको अन्न-दान करता है, वह पापसे मुक्त हो जाता है। ब्राह्मणको दिया हुआ दान अक्षय होता है। शूद्रको भी किया हुआ अन्न-दान महान् फल देनेवाला है। अन्न-दान करते समय याचकसे यह न पूछे कि वह किस गोत्र और किस शाखाका है, तथा उसने कितना अध्ययन किया है? अन्नका अभिलाषी कोई भी क्यों न हो, उसे दिया हुआ अन्न-दान महान् फल देनेवाला होता है। अतः मनुष्योंको इस पृथ्वीपर विशेष रूपसे अन्नका दान करना चाहिये।

जलका दान भी श्रेष्ठ है; वह सदा सब दानोंमें उत्तम है। इसलिये बावली, कुआँ और पोखरा बनवाना चाहिये। जिसके खोदे हुए जलाशयमें गौ, ब्राह्मण और साधु पुरुष सदा पानी पीते हैं, वह अपने कुलको तार देता है। नारद! जिसके पोखरेमें गर्भकि समयतक पानी ठहरता है, वह कभी दुर्गम एवं विषम संकटका सामना नहीं करता। पोखरा बनवानेवाला पुरुष तीनों लोकोंमें सर्वत्र सम्मानित होता है। मनीषी पुरुष धर्म, अर्थ और कामका यही फल बतलाते हैं कि देशमें खेतके भीतर उत्तम पोखरा बनवाया जाय, जो प्राणियोंके लिये महान् आश्रय हो। देवता, मनुष्य, गर्भव, पितर, नाग, राक्षस तथा स्थावर प्राणी भी जलाशयका आश्रय लेते हैं। जिसके पोखरेमें केवल वर्षा ऋतुमें ही जल रहता है, उसे अग्निहोत्रका फल मिलता है। जिसके तालाबमें हेमन्त और शिशिर कालतक जल ठहरता है, उसे सहस्र गोदानका फल मिलता है। यदि वसन्त तथा ग्रीष्म ऋतुतक पानी रुकता हो तो मनीषी पुरुष अतिरिक्त और अश्वमेध यज्ञोंका फल बतलाते हैं।

अब वृक्ष लगानेके जो लाभ है, उनका वर्णन सुनो। महामुने! वृक्ष लगानेवाला पुरुष अपने भूतकालीन पितरों तथा होनेवाले वंशजोंका भी उद्धार कर देता है। इनलिये वृक्षोंको अवश्य लगाना चाहिये। वह पुरुष परलोकमें जानेपर वहाँ अक्षय लोकोंको प्राप्त करता है। वृक्ष अपने फूलोंसे देवताओंका, पत्तोंसे पितरोंका तथा छायासे समस्त अतिथियोंका पूजन करते हैं। किन्त्र, यक्ष, राक्षस, देवता, गर्भव, मानव तथा ऋषि भी वृक्षोंका आश्रय लेते हैं। वृक्ष फूल और फलोंसे युक्त होकर इस लोकमें मनुष्योंको तृप्त करते हैं। वे इस लोक और परलोकमें भी धर्मतः पुत्र माने गये हैं। जो पोखरेके किनारे वृक्ष लगाते, यज्ञानुष्ठान करते तथा जो सदा सत्य बोलते हैं, वे कभी स्वर्गसे भ्रष्ट नहीं होते।

सत्य ही परम मोक्ष है, सत्य ही उत्तम शास्त्र है, सत्य देवताओंमें जाग्रत् रहता है तथा सत्य परम पद है। तप, यज्ञ, पुण्यकर्म, देवर्षि-पूजन, आद्यविधि और विद्या—ये सभी सत्यमें प्रतिष्ठित हैं। सत्य ही यज्ञ, दान, मन्त्र और सरस्वती देवी है; सत्य ही ब्रतचर्या है तथा सत्य ही उँचार है। सत्यसे ही वायु चलती है, सत्यसे ही सूर्य तपता है, सत्यके प्रभावसे ही आग जलती है तथा सत्यसे ही स्वर्ग टिका हुआ है। लोकमें जो सल बोलता है, वह सब देवताओंके पूजन तथा सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेका फल निःसंदेह प्राप्त कर लेता है। एक हजार अश्वमेध यज्ञका पुण्य और सत्य—इन दोनोंको यदि तराजूपर रखकर तौला जाय तो सम्पूर्ण यज्ञोंकी अपेक्षा सत्यका ही पलड़ा भारी होगा। देवता, पितर और ऋषि सत्यमें ही विश्वास करते हैं। सत्यको ही परम धर्म और सत्यको ही परम पद कहते हैं।\* सत्यको

\* सत्यमेव परो मोक्षः सत्यमेव परं श्रुतम्। सत्यं देवेषु जागर्ति सत्यं च परमं पदम्॥

तपो यज्ञाश्च पुण्यं च तथा देवर्षिपूजनम्। आद्यो विधिश्च विद्या च सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्॥

सत्यं यज्ञस्तथा दानं मन्त्रो देवी सरस्वती। ब्रतचर्या तथा सत्यमोङ्कारः सत्यमेव च॥

सत्येन वायुरभ्येति सत्येन तपते रविः। सत्येन चाग्निर्दहति स्वर्गः सत्येन तिष्ठति॥

पूजनं सर्वदेवानां सर्वतीर्थवगाहनम्। सत्यं च वदते लोके सर्वमाश्रोत्यसंशयः॥

अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुल्या धृतम्। सर्वेषां सर्वयज्ञानां सत्यमेव विशिष्यते॥

सत्ये देवाः प्रतीयन्ते पितरो ऋषयस्तथा। सत्यमाहुः परं धर्मं सत्यमाहुः परं पदम्॥ (२८। २०—२६)

परब्रह्मका स्वरूप बताया गया है; इसलिये मैं तुम्हें सत्यका उपदेश करता हूँ। सत्यपरायण मुनि अत्यन्त दुष्कर तपस्या करके सत्यधर्मका पालन करते हुए इस लोकसे स्वर्गको प्राप्त हुए हैं। सदा सत्य ही बोलना चाहिये, सत्यसे बढ़कर दूसरी कोई वस्तु नहीं है। सत्यरूपी तीर्थ अगाध, विस्तृत एवं पवित्र हृद (कुण्ड) से युक्त है; योगयुक्त पुरुषोंको उसमें मनसे स्नान करना चाहिये। यही स्नान उत्तम माना गया है। जो मनुष्य अपने, पराये अथवा पुत्रके लिये भी असत्य भाषण नहीं करते, वे स्वर्गगामी होते हैं। ब्राह्मणोंमें वेद, यज्ञ तथा मन्त्र नित्य निवास करते हैं; किन्तु जो ब्राह्मण सत्यका परित्याग कर देते हैं, उनमें वेद आदि शोभा नहीं देते; अतः सत्य-भाषण करना चाहिये।

**नारदजीने कहा—भगवन्!** अब मुझे विशेषतः तपस्याका फल बताइये; क्योंकि प्रायः सभी वर्णोंका तथा मुख्यतः ब्राह्मणोंका तपस्या ही बल है।

**महादेवजी बोले—नारद!** तपस्याको श्रेष्ठ बताया गया है। तपसे उत्तम फलकी प्राप्ति होती है। जो सदा तपस्यामें संलग्न रहते हैं, वे सदा देवताओंके साथ आनन्द भोगते हैं। तपसे मनुष्य मोक्ष पा लेता है, तपसे 'महत्' पदकी प्राप्ति होती है। मनुष्य अपने मनसे ज्ञान-विज्ञानका खजाना, सौभाग्य और रूप आदि जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करता है, वह सब उसे तपस्यासे मिल जाती है। जिन्होंने तपस्या नहीं की है, वे कभी ब्रह्मलोकमें नहीं जाते। पुरुष जिस किसी कार्यका उद्देश्य लेकर तप करता है, वह सब इस लोक और परलोकमें उसे प्राप्त हो जाता है। शराबी, परखीगामी, ब्रह्महत्यारा तथा गुरुपत्नीगामी-जैसा पापी भी तपस्याके बलसे सबसे पार हो जाता है—सब पापोंसे छुटकारा पा लेता है।\* तपस्याके प्रभावसे छियासी हजार ऊर्ध्वरिता

मुनि स्वर्गमें रहकर देवताओंके साथ आनन्द भोग रहे हैं। तपस्यासे राज्य प्राप्त होता है। इन्द्र तथा सम्पूर्ण देवता और असुरोंने तपस्यासे ही सदा सबका पालन किया है। तपस्यासे ही वे वृत्तिदाता हुए हैं। सम्पूर्ण लोकोंके हितमें लगे रहनेवाले दोनों देवता सूर्य और चन्द्रमा तपसे ही प्रकाशित होते हैं। नक्षत्र और ग्रह भी तपस्यासे ही कान्तिमान् हुए हैं। तपस्यासे मनुष्य सब कुछ पा लेता है, सब सुखोंका अनुभव करता है।

मुने ! जो जंगलमें फल-मूल खाकर तपस्या करता है तथा जो पहले केवल वेदका अध्ययन ही करता है—वे दोनों समान हैं। वह अध्ययन तपस्याके ही तुल्य है। श्रेष्ठ द्विज वेद पढ़ानेसे जो पुण्य प्राप्त करता है, स्वाध्याय और जपसे इसकी अपेक्षा दूना फल पा जाता है। जो सदा तपस्या करते हुए शास्त्रके अभ्याससे ज्ञानोपार्जन करता है और लोकको उस ज्ञानका बोध कराता है, वह परम पूजनीय गुरु है। पुराणवेत्ता पुरुष दानका सबसे श्रेष्ठ पात्र है। वह पतनसे त्राण करता है, इसलिये पात्र कहलाता है। जो लोग सुपात्रको धन, धान्य, सुवर्ण तथा भाँति-भाँतिके वस्त्र-दान करते हैं, वे परम गतिको प्राप्त होते हैं। जो श्रेष्ठ पात्रको गौ, भैंस, हाथी और सुन्दर-सुन्दर घोड़े दान करता है, वह सम्पूर्ण लोकोंमें अश्वमेधके अक्षय फलको प्राप्त होता है। जो सुपात्रको जोती-बोयी एवं फलसे भरी हुई सुन्दर भूमि दान करता है, वह अपने दस पीढ़ी पहलेके पूर्वजों और दस पीढ़ी बादतककी संतानोंको तार देता है तथा दिव्य विमानसे विष्णुलोकको जाता है। देवगण पुस्तक बाँचनेसे जितना संतुष्ट होते हैं, उतना संतोष उन्हें यज्ञोंसे, प्रोक्षण (अभिषेक) से तथा फूलोंद्वारा की हुई पूजाओंसे भी नहीं होता। जो भगवन् विष्णुके मन्दिरमें धर्म-ग्रन्थका पाठ कराता है तथा देवी, शिव, गणेश और सूर्यके

\* तपो हि परमं प्रोक्तं तपसा विन्दते फलम्। तपोरता हि ये नित्यं मोदन्ते सह दैवतैः ॥

तपसा मोक्षमाप्नोति तपसा विन्दते महत्। ज्ञानविज्ञानसम्पत्तिः सौभाग्यं रूपमेव च ॥

तपसा लभ्यते सर्वं मनसा यद्यदिच्छति। नातपतपसो यान्ति ब्रह्मलोकं कदाचन ॥

यत्कार्यं किञ्चिदास्थाय पुष्टस्तप्यते तपः। तत्सर्वं समवाप्नोति परत्रेह च मानवः ॥

सुरपः परदारी च ब्रह्महा गुरुतल्पगः। तपसा तरते सर्वं सर्वतश्च विमुच्यते ॥ (२८। ३५—३९)

मन्दिरमें भी उसकी व्यवस्था करता है, वह मानव राजसूय और अश्वमेध यज्ञोंका फल पाता है। इतिहासपुराणके ग्रन्थोंका बाँचना पुण्यदायक है। ऐसा करनेवाला पुरुष सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है तथा अन्तमें सूर्यलोकका भेदन करके ब्रह्मलोकको चला जाता है। वहाँ सौ कल्पोंतक रहनेके पश्चात् इस पृथ्वीपर जन्म ले राजा होता है। एक हजार अश्वमेध

यज्ञोंका जो फल बताया गया है, उसे वह मनुष्य भी प्राप्त कर लेता है, जो देवताके आगे महाभारतका पाठ करता है। अतः सब प्रकारका प्रयत्न करके भगवान् विष्णुके मन्दिरमें इतिहासपुराणके ग्रन्थोंका पाठ करना चाहिये। वह शुभकारक होता है। विष्णु तथा अन्य देवताओंके लिये दूसरा कोई साधन इतना प्रीतिकारक नहीं है।

— ★ —

## मन्दिरमें पुराणकी कथा कराने और सुपात्रको दान देनेसे होनेवाली सङ्गतिके विषयमें एक आख्यान तथा गोपीचन्दनके तिलककी महिमा

महादेवजी कहते हैं—नारद ! इस विषयमें विज्ञ पुरुष एक प्राचीन इतिहास कहा करते हैं। यह इतिहास अत्यन्त पुरातन, पुण्यदायक सब पापोंको हरनेवाला तथा शुभकारक है। देवर्षे ! ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारने लोक-पितामह ब्रह्माजीको नमस्कार करके मुझे यह उपाख्यान सुनाया था।

सनत्कुमार बोले—एक दिन मैं धर्मराजसे मिलने गया था। वहाँ उन्होंने बड़ी प्रसन्नता और भक्तिके

साथ नाना प्रकारकी स्तुतियोंद्वारा मेरा सत्कार किया। तत्पश्चात् मुझे सुखमय आसनपर बैठनेके लिये कहा। बैठनेपर मैंने वहाँ एक अद्भुत बात देखी। एक पुरुष सोनेके विमानपर बैठकर वहाँ आया। उसे देखकर धर्मराज बड़े वेगसे आसनसे उठ खड़े हुए और आगन्तुकका दाहिना हाथ पकड़कर उन्होंने अर्घ्य आदिके द्वारा उसका पूर्ण सत्कार किया। तत्पश्चात् वे उससे इस प्रकार बोले।

धर्मने कहा—धर्मके द्रष्टा महापुरुष ! तुम्हारा स्वागत है ! मैं तुम्हारे दर्शनसे बहुत प्रसन्न हूँ। मेरे पास बैठो और मुझे कुछ ज्ञानकी बातें सुनाओ। इसके बाद उस धारमें जाना, जहाँ श्रीब्रह्माजी विराजमान है।

सनत्कुमार कहते हैं—धर्मराजके इतना कहते ही एक दूसरा पुरुष उत्तम विमानपर बैठा हुआ वहाँ आ पहुँचा। धर्मराजने विनीत भावसे उसका भी विमानपर ही पूजन किया तथा जिस प्रकार पहले आये हुए मनुष्यसे सान्त्वनापूर्वक वार्तालाप किया था, उसी प्रकार इस नवागन्तुकके साथ भी किया। यह देखकर मुझे बड़ा विस्मय हुआ। मैंने धर्मसे पूछा—‘इन्होंने कौन-सा ऐसा कर्म किया है, जिसके ऊपर आप अधिक संतुष्ट हुए हैं ? इन दोनोंके द्वारा ऐसा कौन-सा कर्म बन गया है, जिसका इतना उत्तम पुण्य है ? आप सर्वज्ञ हैं, अतः बताइये किस कर्मके प्रभावसे इन्हें दिव्य फलकी प्राप्ति हुई है ?’ मेरी बात सुनकर धर्मराजने कहा—‘इन



दोनोंका किया हुआ कर्म बताता हूँ सुनो। पृथ्वीपर धन दूँगा।' वैदिश नामका एक विख्यात नगर है। वहाँ धरापाल नामसे प्रसिद्ध एक राजा थे, जिन्होंने भगवान् विष्णुका मन्दिर बनवाकर उसमें उनकी स्थापना की। उस नगरमें जितने लोग रहते थे, उन सबको उन्होंने भगवान् का दर्शन करनेके लिये आदेश दिया। गाँवके भीतर बना हुआ श्रीविष्णुका वह सुन्दर मन्दिर लोगोंसे ठसाठस भर गया। तब राजाने पहले ब्राह्मण आदिके समुदायका पूजन किया, फिर उन महाबुद्धिमान् नरेशने इतिहास-पुराणके ज्ञाता एक श्रेष्ठ द्विजको, जो विद्यामें भी श्रेष्ठ थे, वाचक बनाकर उनकी विशेष रूपसे पूजा की। फिर क्रमशः गन्ध-पुष्प आदि उपचारोंसे पुस्तकका भी पूजन करके राजाने वाचक ब्राह्मणसे विनयपूर्वक कहा— 'द्विजश्रेष्ठ ! मैंने जो यह भगवान् विष्णुका मन्दिर

मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार राजाके आदेशसे वहाँ पुण्यमय कथा-वार्ताका क्रम चालू हो गया। वर्ष बीतते-बीतते आयु क्षीण हो जानेके कारण राजाकी मृत्यु हो गयी। तब मैंने तथा भगवान् विष्णुने भी इनके लिये घुलोकसे विमान भेजा था। ये जो दूसरे ब्राह्मण यहाँ आये थे, इन्होंने सत्सङ्गके द्वारा उत्तम धर्मका श्रवण किया था। श्रवण करनेसे श्रद्धावश इनके हृदयमें परमात्माकी भक्तिका उदय हुआ। मुनिश्रेष्ठ ! फिर इन्होंने उन महात्मा वाचककी परिक्रमा की और उन्हें एक माशा सुवर्ण दान दिया। सुपात्रको दान देनेसे इन्हें इस प्रकारके फलकी प्राप्ति हुई है। मुने ! इस प्रकार यह कर्म, जिसे इन दोनोंने किया था, मैंने कह सुनाया।

महादेवजी कहते हैं—जो मनीषी पुरुष इस पुण्य-प्रसङ्गका माहात्म्य श्रवण करते हैं, उनकी किसी जन्ममें कभी दुर्गति नहीं होती। देवर्षिप्रवर ! अब दूसरी बात सुनाता हूँ सुनो। गोपीचन्दनका माहात्म्य जैसा मैंने देखा और सुना है, उसका वर्णन करता हूँ। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र—कोई भी क्यों न हो, जो विष्णुका भक्त होकर उनके भजनमें तत्पर रहकर अपने अङ्गोंमें गोपीचन्दन लगाता है, वह गङ्गाजलसे नहाये हुएकी भाँति सब दोषोंसे मुक्त हो जाता है। कल्याणकी इच्छा रखनेवाले वैष्णव ब्राह्मणोंके लिये गोपीचन्दनका तिलक धारण करना विशेष रूपसे कर्तव्य है। ललाटमें दण्डके आकारका, वक्षःस्थलमें कमलके सदृश, बाहुओंके मूलभागमें बाँसके पत्तेके समान तथा अन्यत्र दीपकके तुल्य चन्दन लगाना चाहिये। अथवा जैसी रुचि हो, उसीके अनुसार भिन्न-भिन्न अङ्गोंमें चन्दन लगाये, इसके लिये कोई खास नियम नहीं है। गोपीचन्दनका तिलक धारण करनेमात्रसे ब्राह्मणसे लेकर चाढ़ालतक सभी मनुष्य शुद्ध हो जाते हैं। जो वैष्णव ब्राह्मण भगवान् विष्णुके ध्यानमें तत्पर हो, उसमें तथा विष्णुमें भेद नहीं मानना चाहिये; वह इस लोकमें श्रीविष्णुका ही स्वरूप होता है।

तुलसीके पत्र अथवा काष्ठकी बनी हुई माला



बनवाया है, इसमें धर्म श्रवण करनेकी इच्छासे चारों वर्णोंका समुदाय एकत्रित हुआ है; अतः आप पुस्तक बाँधिये। इस समय ये सौ स्वर्णमुद्राएँ उत्तम जीविकावृत्तिके रूपमें ग्रहण कीजिये और एक वर्षतक प्रतिदिन कथा कहिये। वर्ष समाप्त होनेपर पुनः और संपूर्ण २१ —

धारण करनेसे ब्राह्मण निश्चय ही मुक्तिका भागी होता है। \* मृत्युके समय भी जिसके ललाटपर गोपीचन्दनका तिलक रहता है, वह विमानपर आंखूँ हो विष्णुके परम पदको प्राप्त होता है। नारद ! कलियुगमें जो नरश्रेष्ठ गोपीचन्दनका तिलक धारण करते हैं, उनकी कभी दुर्गति

नहीं होती। ब्रह्मन् ! इस पृथ्वीपर जो शराबी, खी और बाटकोंकी हत्या करनेवाले तथा अगम्या खीके साथ समागम करनेवाले देखे जाते हैं, वे भगवद्गत्तोंके दर्शनमात्रसे पापमुक्त हो जाते हैं। मैं भी भगवन् विष्णुकी भक्तिके प्रसादसे वैष्णव हुआ हूँ।



## संवत्सरदीप-ब्रतकी विधि और महिमा

**नारदजी बोले**—भगवन् ! अब मुझे सब व्रतोंमें प्रधान 'संवत्सरदीप' नामक ब्रतकी उत्तम विधि बताइये, जिसके करनेसे सब व्रतोंके अनुष्ठानका फल निस्संदेह प्राप्त हो जाय, सब कामनाओंकी सिद्धि हो तथा सब पापोंका नाश हो जाय।

**महादेवजीने कहा**—देवर्ण ! मैं तुम्हें एक पापनाशक रहस्य बताता हूँ जिसे सुनकर ब्रह्महत्यारा, गोधाती, मित्रहन्ता, गुरुखीगामी, विश्वासधाती तथा क्रूर हृदयवाला मनुष्य भी शाश्वत मोक्षको प्राप्त होता है तथा अपनी सौ पीढ़ियोंका उद्धार करके विष्णुलोकको जाता है। वह रहस्य संवत्सरदीपब्रत है, जो बहुत ही श्रेयस्कर ब्रत है। मैं उसकी विधि और महिमाका वर्णन करूँगा। हेमन्त ऋतुके प्रथम मास—अगहनमें शुभ एकादशी तिथि आनेपर ब्राह्ममुहूर्तमें उठे और काम-क्रोधसे रहित हो नदीके संगम, तीर्थ, पोखरे या नदीमें जाकर स्नान करे। अथवा मनको वशमें रखते हुए घरपर ही स्नान करे। स्नान करनेका मन्त्र इस प्रकार है—

स्नातोऽहं सर्वतीर्थेषु गर्ते प्रस्त्रवणेषु च ।

नदीषु सर्वतीर्थेषु तत्स्नानं देहि मे सदा ॥

'मैं सम्पूर्ण तीर्थों, कुण्डों, झारनों तथा नदियोंमें स्नान कर चुका। जल ! तुम मुझे उन सबमें स्नान करनेका फल प्रदान करो।'

तदनन्तर देवताओं और पितरोंका तर्पण करके जप करनेके अनन्तर जितेन्द्रिय पुरुष देवदेव भगवान् लक्ष्मी-नारायणका पूजन करे। पहले पञ्चामृतसे नहलाकर फिर

चन्दनयुक्त जलसे स्नान कराये। तत्पश्चात् इस प्रकार कहे—

स्नातोऽसि लक्ष्म्या सहितो देवदेव जगत्पते ।

मां समुद्धर देवेश घोरात् संसारबन्धनात् ॥

'देवदेव ! जगत्पते ! देवेश्वर ! आप लक्ष्मीजीके साथ स्नान कर चुके हैं; इस घोर संसार-बन्धनसे मेरा उद्धार कीजिये।'

इसके बाद वैदिक तथा पौराणिक मन्त्रोंसे भक्ति-पूर्वक लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णुका पूजन करे। 'अतो देव' इस सूक्तसे अथवा पुरुषसूक्तसे पूजा करनी चाहिये। अथवा—

नमो मत्स्याय देवाय कूर्मदेवाय वै नमः ।

नमो वाराहदेवाय नरसिंहाय वै नमः ॥

वामनाय नमस्तुभ्यं परशुरामाय ते नमः ।

नमोऽस्तु रामदेवाय विष्णुदेवाय ते नमः ॥

नमोऽस्तु बुद्धदेवाय कल्किने च नमो नमः ।

नमः सर्वात्मने तुभ्यं शिरसेत्यभिपूजयेत् ॥

'मत्स्य, कच्छप, वाराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्की—ये दस अवतार धारण करनेवाले आप सर्वात्माको मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ।' यों कहकर पूजन करे।

अथवा भगवान्‌के जो 'केशव' आदि प्रसिद्ध नाम हैं, उनके द्वारा श्रीहरिका पूजन करना चाहिये।

### धूपका मन्त्र

वनस्पतिरसो दिव्यः सुरभिर्गन्धवाज्ञुचिः ।

धूपोऽयं देवदेवेश नमस्ते प्रतिगृह्णताम् ॥

'देवदेवेश्वर ! मनोहर सुगम्यसे भरा यह परम पवित्र दिव्य वनस्पतिका रसरूप धूप आपकी सेवामें प्रस्तुत है; आपको नमस्कार है, आप इसे स्वीकार करें।'

### दीपका मन्त्र

दीपस्तमो नाशयति दीपः कान्तिं प्रयच्छति ।  
तस्मादीपप्रदानेन प्रीयतां मे जनार्दनः ॥

'दीप अन्धकारका नाश करता है, दीप कान्ति प्रदान करता है; अतः दीपदानसे भगवान् जनार्दन मुझपर प्रसन्न हों।'

### नैवेद्य-मन्त्र

नैवेद्यमिदमन्नाद्यं देवदेव जगत्पते ।  
लक्ष्म्या सह गृहण त्वं परमामृतमुत्तमम् ॥

'देवदेव ! यह अन्न आदिका बना हुआ नैवेद्य सेवामें प्रस्तुत है; जगदीश्वर ! आप लक्ष्मीजीके साथ इस परम अमृतरूप उत्तम नैवेद्यको ग्रहण कीजिये।'

तदनन्तर श्रीजनार्दनका ध्यान करके रङ्गमें जल और हाथमें फल लेकर भक्तिपूर्वक अर्घ्य निवेदन करें; अर्घ्यका मन्त्र इस प्रकार है—

जन्मान्तरसहस्रेण यन्मया पातकं कृतम् ।  
तत्सर्वं नाशमायातुं प्रसादात्तव केशव ॥

'केशव ! हजारों जन्मोंमें मैंने जो पातक किये हैं, वे सब आपकी कृपासे नष्ट हो जायें।'

इसके बाद घी अथवा तेलसे भरा हुआ एक सुन्दर नवीन कलश ले आकर भगवान् लक्ष्मीनारायणके सामने स्थापित करें। कलशके ऊपर ताँबी या मिट्टीका पात्र रखें। उसमें नौ तन्तुओंके समान मोटी बत्ती डाल दे तथा कलशको स्थिरतापूर्वक स्थापित करके वहाँ वायुरहित गृहमें दीपक जलायें। देवर्षे ! फिर पवित्रतापूर्वक पुष्प और गन्ध आदिसे कलशकी पूजा करके निशाङ्कित मन्त्रसे शुभ संकल्प करें—

कामो भूतस्य भव्यस्य सप्राडेको विराजते ।  
दीपः संवत्सरं यावन्मयायं परिकल्पितः ।

अग्निहोत्रपविच्छिन्नं प्रीयतां मम केशवः ॥

'भूत और भविष्यके सप्राद् तथा सबकी कामनाके विषय एक—अद्वितीय परमात्मा सर्वत्र विराजमान हैं। मैंने एक वर्षतक प्रज्वलित रखनेके लिये इस दीपककी

स्थापना की है; यह अखण्ड अग्निहोत्ररूप है। इससे भगवान् केशव मुझपर प्रसन्न हों।

तत्पश्चात् इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए वेदोंके स्वाध्याय तथा ज्ञानयोगमें तत्पर रहे। पतितों, पापियों और पाखण्डी मनुष्योंसे बातचीत न करें। रातको गीत, नृत्य, बाजे आदिसे, पुण्य ग्रन्थोंके पाठसे तथा भाँति-भाँतिके धार्मिक उपाख्यानोंसे मन बहलाते हुए उपवासपूर्वक जागरण करें। इसके बाद सबेरा होनेपर पूर्वाह्निके नित्य-कर्मोंका अनुष्ठान करके भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराये तथा अपनी शक्तिके अनुसार उनकी पूजा करें। फिर स्वयं भी पारण करके ब्राह्मणोंको प्रणाम कर विदा करें। इस प्रकार दृढ़ संकल्प करके एक वर्षतक दिन-रात उक्त नियमसे रहे। एक या आधे पल सोनेका दीपक बनायें; उसके लिये बत्ती चाँदीकी बतायी गयी है, जो दो या ढाई पलकी होनी चाहिये। घीसे भरा हुआ घड़ा हो तथा उसके ऊपर ताँबेका पात्र रखा रहे। मुत्तिकी अभिलाषा रखनेवाले पुरुषको भक्तिपूर्वक भगवान् लक्ष्मीनारायणकी प्रतिमा भी यथाशक्ति सोनेकी बनवानी चाहिये। इसके बाद [वर्ष पूर्ण होनेपर] विद्वान् पुरुष साधु एवं श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करें। बारह ब्राह्मण हों—यह उत्तम पक्ष है। छः ब्राह्मणोंका होना मध्यम पक्ष है। इतना भी न हो सके तो तीन ब्राह्मणोंको ही निमन्त्रित करें। इनमेंसे एक कर्मनिष्ठ एवं सपलीक ब्राह्मणकी पूजा करें। वह ब्राह्मण शान्त होनेके साथ ही विशेषतः क्रियावान् हो। इतिहास-पुराणोंका ज्ञाता, धर्मज्ञ, मृदुल स्वभावका, पितृभक्त, गुरुसेवापरायण तथा देवता-ब्राह्मणोंका पूजन करनेवाला हो। पाद्य-अर्घ्यदान आदिकी विधिसे वस्त्र, अलंकार तथा आभूषण अर्पण करते हुए पलीसहित ब्राह्मणदेवकी भक्तिपूर्वक पूजा करके भगवान् लक्ष्मीनारायणको तथा बत्तीसहित दीपकको भी ताप्रपात्रमें रखकर घीसे भरे हुए घड़ेके साथ ही उस ब्राह्मणको दान कर दे। देवर्षे ! उस समय निशाङ्कित मन्त्रसे परम पुरुष नारायणदेवका ध्यान भी करता रहे—

अविद्यात्मसा व्यासे संसारे पापनाशनः ।  
ज्ञानप्रदो मोक्षदश्च तस्माह्नतो मयानघ ॥

‘पापरहित नारायण तथा ज्योतिर्मय दीप ! अविद्यामय अन्धकारसे भरे हुए संसारमें तुम्हीं ज्ञान एवं मोक्ष प्रदान करनेवाले हो; इसलिये मैंने आज तुम्हारा दान किया है।’

फिर पूजित ब्राह्मणको अपनी शक्तिके अनुसार भक्तिपूर्वक दक्षिणां दे। अन्यान्य ब्राह्मणोंको भी घृतयुक्त खीर तथा मिठाईका भोजन कराये। ब्राह्मणभोजनके अनन्तर सपलीक ब्राह्मणको वस्त्र पहनाये। सामग्रियों-सहित शश्या तथा बछड़े-सहित धेनु दान करे। अन्य ब्राह्मणोंको भी अपनी सामर्थ्यके अनुसार दक्षिणा दे। सुहदों, स्वजनों तथा बन्धु-बन्धवोंको भी भोजन कराये और उनका सत्कार करे। इस प्रकार इस संवत्सरदीप-ब्रतकी समाप्तिके अवसरपर महान् उत्सव करे। फिर सबको प्रणाम करके विदा करे और अपनी त्रुटियोंके लिये क्षमा माँगी।

दान, ब्रत, यज्ञ तथा योगाभ्याससे मनुष्य जिस फलको प्राप्त करता है, वही फल उसे संवत्सरदीप-ब्रतके पालनसे मिलता है। गौ, भूमि, सुवर्ण तथा विशेषतः गृह आदिके दानसे विद्वान् पुरुष जिस फलको पाता है, वही दीपब्रतसे भी प्राप्त होता है। दीपदान करनेवाला पुरुष कान्ति, अक्षय धन, ज्ञान तथा परम सुख पाता है। दीपदान करनेसे मनुष्यको सौभाग्य, अत्यन्त निर्मल विद्या, आरोग्य तथा परम उत्तम समृद्धिकी प्राप्ति होती है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है। दीपदान करनेवाला मानव समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त सौभाग्यवती पत्नी, पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र तथा अक्षय संतति प्राप्त करता है। दीपदानके प्रभावसे ब्राह्मणको परम ज्ञान, क्षत्रियको उत्तम राज्य, वैश्यको धन और समस्त पशु तथा शूद्रको सुखकी प्राप्ति होती है। कुमारी कन्याको सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे युक्त पति मिलता है। वह बहुत-से पुत्र-पौत्र तथा बड़ी आयु पाती है। युवती स्त्री इस ब्रतके प्रभावसे कभी वैधव्यका दुःख नहीं देखती। उसका अपने

स्वामीसे कभी वियोग नहीं होता। दीपदानसे मानसिक चिन्ता तथा रोग भी दूर होते हैं। भयभीत पुरुष भयसे तथा कैदी बन्धनसे छूट जाता है। दीपब्रतमें तत्पर रहनेवाला मनुष्य ब्रह्महत्या आदि पापोंसे निःसन्देह मुक्त हो जाता है—ऐसा ब्रह्माजीका वचन है।

जिसने श्रीहरिके संमुख संवत्सर-दीप जलाया है, उसने निश्चय ही चान्द्रायण तथा कृच्छ्र-ब्रतोंका अनुष्ठान पूरा कर लिया। जिन्होंने भक्तिपूर्वक श्रीहरिकी पूजा करके संवत्सरदीप-ब्रतका पालन किया है, वे धन्य हैं तथा उन्होंने जन्म लेनेका फल पा लिया। जो सलाईसे दीपकी बत्तीको उकसा देते हैं, वे भी देवदुर्लभ परमपदको प्राप्त होते हैं। जो लोग सदा ही मन्दिरके दीपमें यथाशक्ति तेल और बत्ती डालते हैं, वे परम धामको जाते हैं। जो लोग बुझते या बुझे हुए दीपको स्वयं जलानेमें असमर्थ होनेपर दूसरे लोगोंसे उसकी सूचना दे देते हैं, वे भी उक्त फलके भागी होते हैं। जो दीपकके लिये थोड़े-थोड़े तेलकी भीख माँगकर श्रीविष्णुके सम्मुख दीप जलाता है, उसे भी पुण्यकी प्राप्ति होती है। दीपक जलाते समय यदि कोई नीच पुरुष भी उसकी ओर श्रद्धासे हाथ जोड़कर निहारता है, तो वह विष्णुधाममें जाता है। जो दूसरोंको भगवान्के सामने दीप जलानेकी सलाह देता है तथा स्वयं भी ऐसा करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकको प्राप्त होता है।

जो लोग पृथ्वीपर दीपब्रतके इस माहात्म्यको सुनते हैं, वे सब पापोंसे छुटकारा पाकर श्रीविष्णुधामको जाते हैं। विद्वन् ! मैंने तुमसे यह दीपब्रतका वर्णन किया है। यह मोक्ष तथा सब प्रकारका सुख देनेवाला, प्रशस्त एवं महान् ब्रत है। इसके अनुष्ठानसे पापके प्रभावसे होनेवाले नेत्ररोग नष्ट हो जाते हैं। मानसिक चिन्ताओं तथा व्याधियोंका क्षणभरमें नाश हो जाता है। नारद ! इस ब्रतके प्रभावसे दारिद्र्य और शोक नहीं होता। मोह और भ्रान्ति मिट जाती है।

## जयन्ती संज्ञावाली जन्माष्टमीके ब्रत तथा विविध प्रकारके दान आदिकी महिमा

नारदजी बोले—देवदेव ! जगदीक्षर ! भक्तोंको अभ्यदान देनेवाले महादेव ! मुझपर कृपा करके कोई दूसरा ब्रत बताइये ।

महादेवजीने कहा—पूर्वकालमें हरिश्चन्द्र नामक एक चक्रवर्ती राजा हो गये हैं। उनपर संतुष्ट होकर ब्रह्माजीने उन्हें एक सुन्दर पुरी प्रदान की, जो समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली थी। उसमें रहकर राजा हरिश्चन्द्र सात द्वीपोंसे युक्त वसुन्धराका धर्मपूर्वक पालन करते थे। प्रजाको वे औरस पुत्रकी भाँति मानते थे। राजाके पास धन-धान्यकी अधिकता थी। उन्हें नाती-प्रेतोंकी भी कमी न थी। अपने उत्तम राज्यका पालन करते हुए राजाको एक दिन बड़ा विस्मय हुआ। वे सोचने लगे—‘आजके पहले कभी किसीको ऐसा राज्य नहीं मिला था। मेरे सिवा दूसरे मनुष्योंने ऐसे विमानपर सवारी नहीं की होगी। यह मेरे किस कर्मका फल है, जिससे मैं देवराज इन्द्रके समान सुखी हूँ?’

राजाओंमें श्रेष्ठ हरिश्चन्द्र इस प्रकार सोच-विचारकर



अपने उत्तम विमानपर आरूढ़ हुए आकाशमार्गसे जाते समय पर्वतोंमें श्रेष्ठ मेरुपर उनकी दृष्टि पड़ी। उस श्रेष्ठ शैलपर ज्ञानयोग-परायण ब्रह्मिं सनत्कुमार दिखायी पड़े, जो सुवर्णमयी शिलाके ऊपर विराजमान थे। उन्हें देखकर राजा अपना विस्मय पूछनेके लिये उत्तर पड़े। उन्होंने पास जा हर्षमें भरकर मुनिके चरणोंमें मस्तक झुकाया। ब्रह्मिं भी राजाका अभिनन्दन किया। फिर सुखपूर्वक बैठकर राजाने मुनिश्रेष्ठ सनत्कुमारजीसे पूछा—‘भगवन् ! मुझे जो यह सम्पत्ति प्राप्त हुई है, मानवलोकमें प्रायः दुर्लभ है। ऐसी सम्पत्ति किस कर्मसे प्राप्त होती है ? मैं पूर्वजन्ममें कौन था ? ये सब बातें यथार्थरूपसे बतलाइये।’

सनत्कुमारजी बोले—राजन् ! सुनो—तुम पूर्वजन्ममें सत्यवादी, पवित्र एवं उत्तम वैश्य थे। तुमने अपना काम-धाम छोड़ दिया था, इसलिये बन्धु-बान्धवोंने तुम्हारा परित्याग कर दिया। तुम्हारे पास जीविकाका कोई साधन नहीं रह गया था; इसलिये तुम स्वजनोंको छोड़कर चल दिये। खीने ही तुम्हारा साथ दिया। एक समय तुम दोनों किसी घने जङ्गलमें जा पहुँचे। वहाँ एक पोखरेमें कमल खिले हुए थे। उन्हें देखकर तुम दोनोंके मनमें यह विचार उठा कि हम यहाँसे कमल ले लें। कमल लेकर तुम दोनों एक-एक पग भूमि लाँघते हुए शुभ एवं पुण्यमयी वाराणसी पुरीमें पहुँचे। वहाँ तुमलोग कमल बेचने लगे किन्तु कोई भी उन्हें खरीदता नहीं था। वहीं खड़े-खड़े तुम्हारे कानोंमें बाजेकी आवाज सुनायी पड़ी। फिर तुम उसी ओर चल दिये। वहाँ काशीके विस्वात राजा इन्द्रद्युम्नकी सती-साध्वी कन्या चन्द्रावतीने, जो बड़ी सौभाग्यशालिनी थी, जयन्ती नामक जन्माष्टमीका शुभकारक ब्रत किया था। उस स्थानपर तुम बड़े हर्षके साथ गये। वहाँ पहुँचनेपर तुम्हारा चित्त संतुष्ट हो गया। तुमने वहाँ भगवान्‌के पूजनका विधान देखा। कलशके ऊपर श्रीहरिकी स्थापना करके उनकी पूजा हो रही थी। विशेष

समारोहके साथ भगवान्‌का पूजन किया गया था, भिन्न-भिन्न पुष्पोंसे उनका शूङ्गार हुआ था। भगवान्‌की भक्तिके

तिथि आती है और किस विधिसे उसका व्रत करना चाहिये? यह मुझे बताइये।

**सनत्कुमारजीने कहा—राजन्!** मैं तुम्हें इस व्रतको बताता हूँ; सावधान होकर सुनो। श्रावणमासके कृष्णपंक्षकी अष्टमी तिथिको यदि रोहिणी नक्षत्रका योग मिल जाय तो उस जन्माष्टमीका नाम 'जयन्ती' होता है। अब मैं इसकी विधिका वर्णन करता हूँ जैसा कि ब्रह्माजीने मुझे बताया था। उस दिन उपवासका व्रत लेकर काले तिलोंसे मिश्रित जलसे स्नान करे। फिर नवीन कलशकी, जो फूटा-टूटा न हो, स्थापना करे। उसमें पञ्चरत्न डाल दे। हीरा, मोती, वैदूर्य, पुष्पराग (पुखराज) और इन्द्रनील—ये उत्तम पञ्चरत्न हैं—ऐसा कात्यायनका कथन है<sup>१</sup>। कलशके ऊपर सोनेका पात्र रखे और सोनेकी बनी हुई नन्दरानी यशोदाकी प्रतिमा स्थापित करे। प्रतिमाका भाव यह होना चाहिये—'यशोदा अपने पुत्र श्रीकृष्णको स्तन पिलाती हुई मन्द-मन्द मुसकरा रही हैं, श्रीकृष्ण यशोदा मैयाका एक स्तन तो पी रहे हैं और दूसरा स्तन दूसरे हाथसे पकड़े हुए हैं। वे माताकी ओर प्रेमसे देखकर उन्हें सुख पहुँचा रहे हैं।' इस प्रकार जैसी अपनी शक्ति हो, उसीके अनुसार सुवर्णमय भगवत्प्रतिमाका निर्माण कराये। इसके सिवा सोनेकी रोहिणी और चाँदीके चन्द्रमाकी प्रतिमा बनवाये। अँगूठेके बराबर चन्द्रमा हों और चार अंगुलकी रोहिणी। भगवान्‌के कानोंमें कुण्डल और गलेमें कण्ठा पहनाये। इस प्रकार माताके साथ जगत्पति गोविन्दकी प्रतिमा बनवाकर दूध आदिसे स्नान कराये तथा चन्दनसे अनुलेप करे। दो श्वेत वस्त्रोंसे भगवान्‌को आच्छादित करके फूलोंकी मालासे उनका शूङ्गार करे। भाँति-भाँतिके भक्ष्य पदार्थोंका नैवेद्य लगाये, नाना प्रकारके फल अर्पण करे। दीप जलाकर रखे और फूलोंके मण्डपसे पूजास्थानको सुशोभित करे। विज



वर्णीभूत हो तुमने भी अपनी पलीके साथ कमलके फूलोंसे वहाँ श्रीहरिका पूजन किया तथा पूजासे बचे हुए फूलोंको उनके समीप ही बिखेर दिया। तुमने भगवान्‌को पुष्पमय कर दिया। इससे उस कन्याको बड़ा संतोष हुआ। वह स्वयं तुम्हें धन देने लगी, किन्तु तुमने नहीं लिया। तब राजकुमारीने तुम्हें भोजनके लिये निमन्त्रित किया; किन्तु उस समय तुमने न तो भोजन स्वीकार किया और न धन ही लिया। यही पुण्य तुमने पिछले जन्ममें उपार्जित किया था। फिर अपने कर्मके अनुसार तुम्हारी मृत्यु हो गयी। उसी महान् पुण्यके प्रभावसे तुम्हें विमान मिला है। राजन्! पूर्वजन्ममें जो तुम्हारे द्वारा वह पुण्य हुआ था, उसीका फल इस समय तुम भोग रहे हो।

**हरिश्चन्द्र बोले—मुनिवर!** किस महीनेमें वह

१-यहाँ श्रावणका अर्थ भाद्रपद समझना चाहिये। जहाँ शुक्लपक्षसे मासका आरम्भ होता है; वहाँ भाद्रपदका कृष्णपक्ष श्रावणका कृष्णपक्ष समझा जाता है। इन प्रान्तोंमें कृष्णपक्षसे ही महीना आरम्भ होता है।

२-व्रजमौक्तिकवैदूर्यपुष्परागेन्द्रनीलकम्

| पञ्चरत्नं प्रशस्तं तु इति कात्यायनोऽन्नवीत् ॥ (३२ । ३८)

पुरुषोंके द्वारा भक्तिपूर्वक नृत्य, गीत और वाद्य कराये। इस प्रकार अपने वैभवके अनुसार सब विधान पूर्ण करके गुरुका पूजन करे, तत्पश्चात् पूजाकी समाप्ति करे।

**महादेवजी कहते हैं—**जब इन्द्रके सौ यज्ञ पूर्ण हो गये और उत्तम दक्षिणा देकर यज्ञका कार्य समाप्त कर दिया गया, उस समय देवराजके मनमें कुछ पूछनेका संकल्प हुआ; अतएव उन्होंने अपने गुरु बृहस्पतिजीसे इस प्रकार प्रश्न किया।

**इन्द्र बोले—**भगवन्! किस दानसे सब ओर सुखकी वृद्धि होती है? जो अक्षय तथा महान् अर्थका साधक हो, उसका वर्णन कीजिये।

**बृहस्पतिजीने कहा—**इन्द्र! सोना, वस्त्र, गौ तथा भूमि—इनका दान करनेवाला पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो भूमिका दान करता है, उसके द्वारा सोने, चाँदी, वस्त्र, मणि एवं रत्नका भी दान हो जाता है। जो फालसे जोती हो, जिसमें बीज बो दिया गया हो तथा जहाँ खेती लहरा रही हो, ऐसी भूमिका दान करके मनुष्य तबतक स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है, जबतक सूर्यका प्रकाश बना रहता है। जीविकाके कष्टसे मनुष्य जो कुछ भी पाप करता है, वह गोचर्ममात्र भूमिके दानसे छूट जाता है। दस हाथका एक दण्ड होता है, तीस दण्डका एक वर्तन होता है और दस वर्तनका एक गोचर्म होता है; यही ब्रह्म-गोचर्मकी भी परिभाषा है। छोटे बछड़ोंको जन्म देनेवाली एक हजार गौएँ जहाँ साँड़ोंके साथ खड़ी हो सकें, उतनी भूमिको एक गोचर्म माना गया है। गुणवान्, तपस्वी तथा जितेन्द्रिय ब्राह्मणको दान देना चाहिये। उस दानका अक्षय फल तबतक मिलता रहता है, जबतक यह समुद्रपर्यन्त पृथ्वी कायम रहती है। इन्द्र! जैसे तेलकी बूँद कहीं गिरनेपर शीघ्र ही फैल जाती है, उसी प्रकार खेतीके साथ किया हुआ भूमिदान विशेष विस्तारको प्राप्त होता है। गौ, भूमि और विद्या—इन तीन वस्तुओंके दानको अतिदान बताया

गया है; ये क्रमशः दुहने, बोने तथा अभ्यास करनेसे नरकसे उद्धार कर देती हैं।\*

**वस्त्रदान करनेवाले** पुरुष परलोकके मार्गपर वस्त्रोंसे आच्छादित होकर यात्रा करते हैं और जिन्होंने वस्त्रदान नहीं किया है, उन्हें नंगे ही जाना पड़ता है। अन्नदान करनेवाले लोग तृप्त होकर जाते हैं; जो अन्नदान नहीं करते, उन्हें भूखे ही यात्रा करनी पड़ती है। नरकके भयसे डरे हुए सभी पितर इस बातकी अभिलाषा करते हैं कि हमारे पुत्रोंमेंसे जो कोई गया जायगा, वह हमें तारनेवाला होगा। बहुत-से पुत्रोंकी इच्छा करनी चाहिये; क्योंकि उनमेंसे एक भी तो गया जायगा अथवा नील वृषका उत्सर्ग करेगा। जो रंगसे लाल हो, जिसकी पूँछके अग्रभागमें कुछ पीलापन लिये सफेदी हो और खुर तथा सींगोंका विशुद्ध श्वेत वर्ण हो, वह 'नील वृष' कहलाता है।† पाण्डु रंगकी पूँछवाला नील वृष जो जल उछालता है, उससे साठ हजार वर्षोंतक पितर तृप्त रहते हैं। जिसके सींगमें नदीके किनारेकी उखाड़ी हुई मिट्टी लगी होती है, उसके दानसे पितरगण परम प्रकाशमय चन्द्रलोकका सुख भोगते हैं।

यह पृथ्वी पूर्वकालमें राजा दिलीप, नृग, नहुष तथा अन्यान्य नरेशोंके अधीन थी और पुनः अन्यान्य राजाओंके अधिकारमें जाती रहेगी। सगर आदि बहुत-से राजा इस पृथ्वीका दान कर चुके हैं। यह जब जिसके अधिकारमें रहती है, तब उसीको इसके दानका फल मिलता है। जो अपनी या दूसरेकी दी हुई पृथ्वीको हर लेता है; वह विष्णुका कीड़ा होकर पितरोंसहित नरकमें पकाया जाता है। भूमिदान करनेवालेसे बढ़कर पुण्यवान् तथा भूमि हर लेनेवालेसे बढ़कर पापी दूसरा कोई नहीं है। जबतक महाप्रलय नहीं हो जाता, तबतक भूमिदाता ऊर्ध्वलोकमें और भूमिहर्ता नरकमें रहता है। सुर्वं अग्निकी प्रथम संतान है, पृथ्वी विष्णुके अंशसे प्रकट हुई है तथा गौएँ सूर्यकी कन्याएँ हैं। इसलिये जो सुर्वं, गौ

\* श्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती। नरकादुद्धरन्त्येते

जपवापनदोहनात् ॥ (३३ । १८)

† लोहितो यस्तु वर्णेन पुच्छाग्रे यस्तु पाण्डुः। श्वेतः खुरविषाणाभ्यां स नीले वृष उच्यते ॥ (३२ । २२-२३),

तथा पृथ्वीका दान करता है, वह उनके दानका अक्षय फल भोगता है। जो भूमिको न्यायपूर्वक देता और जो न्यायपूर्वक ग्रहण करता है, वे दोनों ही पुण्यकर्म हैं; उन्हें निश्चय ही स्वर्गकी प्राप्ति होती है। जिन लोगोंने अन्यायपूर्वक पृथ्वीका अपहरण किया अथवा कराया है, वे दोनों ही प्रकारके मनुष्य अपनी सात पीढ़ियोंका विनाश करते हैं—उन्हें सद्गतिसे वंचित कर देते हैं। ब्राह्मणका खेत हर लेनेपर कुलकी तीन पीढ़ियोंका नाश हो जाता है। एक हजार कूप और बावली बनवानेसे, सौ अश्वमेध करनेसे तथा करोड़ों गौएँ देनेसे भी भूमिहर्तार्की शुद्धि नहीं होती।

किया हुआ शुभ कर्म, दान, तप, स्वाध्याय तथा जो कुछ भी धर्मसम्बन्धी कार्य है, वह सब खेतकी आधी अंगुल सीमा हर लेनेसे भी नष्ट हो जाता है। गोतीर्थ (गौओंके चरने और पानी पीने आदिका स्थान), गाँवकी सड़क, मरघट तथा गाँवको दबाकर मनुष्य प्रलयकाल-तक नरकमें पड़ा रहता है।\* यदि जीविकाके बिना प्राण कण्ठतक आ जायें तो भी ब्राह्मणके धनका लोभ नहीं करना चाहिये। अग्रिकी आँच और सूखके तापसे जले हुए वृक्ष आदि पुनः पनपते हैं, राजदण्डसे दण्डित मनुष्योंकी अवस्था भी पुनः सुधर जाती है; किन्तु जिनपर ब्राह्मणोंके शापका प्रहार होता है, वे तो नष्ट ही हो जाते हैं। ब्राह्मणके धनका अपहरण करनेवाला मनुष्य रौख नरकमें पड़ता है। केवल विषको ही विष नहीं कहते, ब्राह्मणका धन सबसे बड़ा विष कहा जाता है। साधारण विष तो एकको ही मारता है, किन्तु ब्राह्मणका धनरूपी विष बेटों और पोतोंका भी नाश कर डालता है। मनुष्य लोहे और पत्थरके चूरेको तथा विषको भी पचा सकता है; परन्तु तीनों लोकोंमें कौन ऐसा पुरुष है, जो ब्राह्मणके धनको पचा सके। ब्राह्मणके धनसे जो सुख उठाया जाता है, देवताके धनके प्रति जो राग पैदा होता है, वह धन समूचे कुलके नाशका कारण होता है तथा अपना

विनाश तो वह करता ही है। ब्राह्मणका धन, ब्रह्महत्या, दरिद्रिका धन, गुरु और मित्रका सुवर्ण—ये सब स्वर्गमें जानेपर भी मनुष्यको पीड़ा पहुँचाते हैं।

देवश्रेष्ठ इन्द्र ! जो ब्राह्मण श्रोत्रिय, कुलीन, दरिद्र, संतुष्ट, विजयी, वेदाभ्यासी, तपस्वी, ज्ञानी और इन्द्रियसंयमी हो, उसे ही दिया हुआ दान अक्षय होता है। जैसे कच्चे बर्तनमें रखा हुआ तृध, दही, घी अथवा मधु दुर्बलताके कारण पात्रको ही छेद देता है, उसी प्रकार यदि अज्ञानी पुरुष गौ, सुवर्ण, वस्त्र, अन्न, पृथ्वी और तिल आदिका दान ग्रहण करता है तो वह काष्ठकी भाँति भस्म हो जाता है।

जो नया पोखरा बनवाता है, अथवा पुरानेको ही खुदवाता है, वह समस्त कुलका उद्धार करके स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। बावली, कुआँ, तडाग और बगीचे पुनः संस्कार (जीर्णोद्धार) करनेपर मोक्षरूप फल प्रदान करते हैं। इन्द्र ! जिसके जलाशयमें गर्भोंकी मौसमतक पानी ठहरता है, वह कभी दुर्गम एवं विषम संकटका सामना नहीं करता। देवश्रेष्ठ ! यदि एक दिन भी पानी ठहर जाय तो वह सात पहलेकी और सात पीछेकी पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। दीपका प्रकाश दान करनेसे मनुष्य रूपवान् होता है और दक्षिणा देनेसे स्मरणशक्ति तथा मेधा (धारणा-शक्ति) को प्राप्त करता है। यदि बलपूर्वक अपहरण की हुई भूमि, गौ तथा खीको मनुष्य पुनः लौटा न दे तो उसे ब्रह्महत्यारा कहा जाता है।

इन्द्र ! जो विवाह, यज्ञ तथा दानका अवसर उपस्थित होनेपर उसमें मोहवश विनाश डालता है, वह मरनेपर कीड़ा होता है। दान करनेसे धन और जीव-रक्षा करनेसे जीवन सफल होता है। रूप, ऐश्वर्य तथा आरोग्य—ये अहिंसाके फल हैं, जो अनुभवमें आते हैं। फल-मूलके भोजनसे सम्मान तथा सत्यसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। मरणात्त उपवाससे राज्य और सर्वत्र सुख

\* कृतं दत्तं तपोऽधीतं यत्किञ्चिद्दर्मसंस्थितम्। अर्धाङ्गुलस्य सीमाया हरणेन प्रणश्यति॥

गोतीर्थं ग्रामरथ्यां च इमशानं ग्राममेव च। संपीड्य नरकं याति यावदाभूतसंप्लवम्॥ (३३ । ३८-३९)

उपलब्ध होता है। तीनों काल स्नान करनेवाला मनुष्य रूपवान् होता है। वायु पीकर रहनेवाला यज्ञका फल पाता है। जो उपवास करता है, वह चिरकालतक स्वर्गमें निवास करता है। जो सदा भूमिपर शयन करता है, उसे

अभीष्ट गतिकी प्राप्ति होती है, जो पवित्र धर्मका आचरण करता है, वह स्वर्गलोकमें सम्मानित होता है। जो द्विजश्रेष्ठ बृहस्पतिजीके इस पवित्र मतका स्वाध्याय करते हैं, उनकी आयु, विद्या, यश और बल—ये चार बातें बढ़ती हैं।



## महाराज दशरथका शनिको संतुष्ट करके लोकका कल्याण करना

नारदजीने पूछा—सुरश्रेष्ठ ! शनैश्चरकी दी हुई पीड़ा कैसे दूर होती है ? यह मुझे बताइये ।

महादेवजी बोले—देवर्षे ! सुनो, ये शनैश्चर देवताओंमें प्रसिद्ध कालरूपी महान् ग्रह है। इनके मस्तकपर जटा है, शरीरमें बहुत-से रोएँ हैं तथा ये दानवोंको भय पहुँचानेवाले हैं। पूर्वकालकी बात है, रघुवंशमें दशरथ नामके एक बहुत प्रसिद्ध राजा हो गये हैं। वे चक्रवर्तीं सम्राट्, महान् वीर तथा सातों द्वीपोंके स्वामी थे। उन दिनों ज्योतिषियोंने यह जानकर कि शनैश्चर कृतिकाके अन्तमें जा पहुँचे हैं, राजाको सूचित किया—‘महाराज ! इस समय शनि रोहिणीका भेदन करके आगे बढ़ेगे; यह अत्यन्त उप्र शाकटभेद नामक योग है, जो देवताओं तथा असुरोंके लिये भी भयंकर है। इससे बारह वर्षोंतक संसारमें अत्यन्त भयानक दुर्भिक्ष कैलेगा।’ यह सुनकर राजाने मन्त्रियोंके साथ विचार किया और वसिष्ठ आदि ब्राह्मणोंसे पूछा—द्विजवरो ! बताइये, इस संकटको रोकनेका यहाँ कौन-सा उपाय है ?’

वसिष्ठजी बोले—राजन् ! यह रोहिणी प्रजापति ब्रह्माजीका नक्षत्र है, इसका भेद हो जानेपर प्रजा कैसे रह सकती है। ब्रह्मा और इन्द्र आदिके लिये भी यह योग असाध्य है।

महादेवजी कहते हैं—नारद ! इस बातपर विचार करके राजा दशरथने मनमें महान् साहसका संग्रह किया और दिव्यास्त्रोंसहित दिव्य धनुष लेकर आरूढ हो बड़े वेगसे वे नक्षत्र-मण्डलमें गये। रोहिणीपृष्ठ सूर्यसे सवा लाख योजन ऊपर है; वहाँ पहुँचकर राजाने धनुषको कानतक खींचा और उसपर संहारास्त्रका संधान किया। वह अस्त्र देवता और असुरोंके लिये भयंकर था। उसे

देखकर शनि कुछ भयभीत हो हँसते हुए बोले—‘राजेन्द्र ! तुम्हारा महान् पुरुषार्थ शत्रुको भय



पहुँचानेवाला है। मेरी दृष्टिमें आकर देवता, असुर, मनुष्य, सिद्ध, विद्याधर और नाग—सब भस्म हो जाते हैं; किन्तु तुम बच गये। अतः महाराज ! तुम्हारे तेज और पौरुषसे मैं संतुष्ट हूँ। वर माँगो; तुम अपने मनसे जो कुछ चाहोगे, उसे अवश्य दूँगा।’

दशरथने कहा—शनिदेव ! जबतक नदियाँ और समुद्र हैं, जबतक सूर्य और चन्द्रमासहित पृथ्वी कायम है, तबतक आप रोहिणीका भेदन करके आगे न बढ़ें। साथ ही कभी बारह वर्षोंतक दुर्भिक्ष न करें।

शनि बोले—एवमस्तु ।

महादेवजी कहते हैं—ये दोनों वर पाकर राजा बड़े प्रसन्न हुए, उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। वे रथके ऊपर धनुष डाल हाथ जोड़ शनिदेवकी इस प्रकार स्तुति करने लगे।

**दशरथ बोले**—जिनके शरीरका वर्ण कृष्ण, नील तथा भगवान् शङ्खके समान है, उन शनिदेवको नमस्कार है। जो जगत्के लिये कालाग्नि एवं कृतान्तरूप है, उन शनैश्चरको बारम्बार नमस्कार है। जिनका शरीर कङ्काल है तथा जिनकी दाढ़ी-मूँछ और जटा बढ़ी हुई है, उन शनिदेवको प्रणाम है। जिनके बड़े-बड़े नेत्र, पीठमें सटा हुआ पेट और भयानक आकार हैं, उन शनैश्चरदेवको नमस्कार है। जिनके शरीरका ढाँचा फैला हुआ है, जिनके रोएं बहुत मोटे हैं, जो लम्बे-चौड़े किन्तु सूखे शरीरवाले हैं तथा जिनकी दाढ़ें कालरूप हैं, उन शनिदेवको बारम्बार प्रणाम है। शने ! आपके नेत्र खोखलेके समान गहरे हैं, आपकी ओर देखना कठिन है, आप घोर, रौद्र, भीषण और विकराल हैं। आपको नमस्कार है। बलीमुख ! आप सब कुछ भक्षण करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है। सूर्यनन्दन ! भास्करपुत्र ! अभय देनेवाले देवता ! आपको प्रणाम है। नीचेकी ओर दृष्टि रखनेवाले शनिदेव ! आपको नमस्कार है। संवर्तक ! आपको प्रणाम है। मन्दगतिसे चलनेवाले शनैश्चर ! आपका प्रतीक तलवारके समान है, आपको पुनः-पुनः प्रणाम है। आपने तपस्यासे अपने देहंको दग्ध कर दिया है; आप सदा योगाभ्यासमें तत्पर, भूखसे आतुर और अतृप्त रहते

हैं। आपको सदा-सर्वदा नमस्कार है। ज्ञाननेत्र ! आपको प्रणाम है। कश्यपनन्दन सूर्यके पुत्र शनिदेव ! आपको नमस्कार है। आप संतुष्ट होनेपर राज्य दे देते हैं और रुष्ट होनेपर उसे तत्क्षण हर लेते हैं। देवता, असुर, मनुष्य, सिद्ध, विद्याधर और नाग—ये सब आपकी दृष्टि पड़ने-पर समूल नष्ट हो जाते हैं। देव ! मुझपर प्रसन्न होइये। मैं वर पानेके योग्य हूँ और आपकी शरणमें आया हूँ।\*

**महादेवजी कहते हैं**—नारद ! राजाके इस प्रकार स्तुति करनेपर ग्रहोंके राजा महाबलवान् सूर्यपुत्र शनैश्चर बोले—उत्तम व्रतके पालक राजेन्द्र ! तुम्हारी इस स्तुतिसे मैं संतुष्ट हूँ। रघुनन्दन ! तुम इच्छानुसार वर माँगो, मैं तुम्हें अवश्य दूँगा।

**दशरथ बोले**—सूर्यनन्दन ! आजसे आप देवता, असुर, मनुष्य, पशु, पक्षी तथा नाग—किसी भी प्राणीको पीड़ा न दें।

**शनिने कहा**—राजन् ! देवता, असुर, मनुष्य, सिद्ध, विद्याधर तथा राक्षस—इनमेंसे किसीके भी मृत्यु-स्थान, जन्मस्थान अथवा चतुर्थ स्थानमें मैं रहूँ तो उसे मृत्युका कष्ट दे सकता हूँ। किन्तु जो श्रद्धासे युक्त, पवित्र और एकाग्रचित्त हो मेरी लोहमयी सुन्दर प्रतिमाका शमीपत्रोंसे पूजन करके तिलमिश्रित उड्ढ-भात, लोहा, काली गौ या काला वृषभ ब्राह्मणको दान करता है तथा विशेषतः मेरे दिनको इस स्तोत्रसे मेरी पूजा करता है, पूजनके पश्चात् भी हाथ जोड़कर मेरे स्तोत्रका जप करता है, उसे मैं कभी भी पीड़ा नहीं दूँगा। गोचरमें, जन्मलग्नमें,

\* नमः कृष्णाय नीलाय शितिकण्ठनिभाय च । नमः कालाग्निरूपाय कृतान्ताय च वै नमः ॥

नमो निर्मासदेहाय दीर्घश्मश्रुजटाय च । नमो विशालनेत्राय शुष्कोदरभयाकृते ॥

नमः पुष्कलगात्राय स्थूलरोम्णे च वै पुनः । नमो दीर्घाय शुष्काय कालदंष्ट्र नमोऽस्तु ते ॥

नमस्ते कोटराक्षाय दुर्निरीक्ष्याय वै नमः । नमो घोराय रौद्राय भीषणाय करलिने ॥

नमस्ते सर्वभक्षाय बलीमुख नमोऽस्तु ते । सूर्यपुत्र नमस्तेऽस्तु भास्करेऽभयदाय च ॥

अधोदृष्टे नमस्तेऽस्तु संवर्तक नमोऽस्तु ते । नमो मन्दगते तु यं निखिंशाय नमोऽस्तु ते ॥

तपसा दग्धदेहाय नित्यं योगरताय च । नमो नित्यं क्षुधार्ताय अतृप्ताय च वै नमः ॥

ज्ञानचक्षुर्नमस्तेऽस्तु कश्यपात्मजसूनवे । तुष्टे ददासि वै राज्यं रुष्टो हरसि तत्क्षणात् ॥

देवासुरमनुष्याश्च सिद्धविद्याधरोरेगाः । त्वया विलोकिताः सर्वे नाशं यान्ति समूलतः ॥

प्रसादं कुरु मे देव वराहोऽहमुपागतः ॥

दशाओं तथा अन्तर्दशाओंमें ग्रह-पीड़ाका निवारण करके मैं सदा उसकी रक्षा करूँगा। इसी विधानसे सारा संसार पीड़ासे मुक्त हो सकता है। रघुनन्दन ! इस प्रकार मैंने युक्तिसे तुम्हें वरदान दिया है।

महादेवजी कहते हैं—नारद ! वे तीनों वरदान पाकर उस समय राजा दशरथने अपनेको कृतार्थ माना।

वे शनैश्चरको नमस्कार करके उनकी आज्ञा ले रथपर सवार हो बड़े वेगसे अपने स्थानको चले गये। उन्होंने कल्याण प्राप्त कर लिया था। जो शनिवारको सबैरे उठकर इस स्तोत्रका पाठ करत है तथा पाठ होते समय जो श्रद्धापूर्वक इसे सुनता है, वह मनुष्य पापसे मुक्त हो स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है।



## त्रिसूक्ष्मा व्रतकी विधि और महिमा

नारदजी बोले—सर्वेश्वर ! अब आप विशेष रूपसे त्रिसूक्ष्मा नामक व्रतका वर्णन कीजिये, जिसे सुनकर लोग तत्काल कर्मबन्धनसे मुक्त हो जाते हैं।

महादेवजीने कहा—विद्वन् ! पूर्वकालमें सम्पूर्ण लोकोंके हितकी इच्छासे सनल्कुमारजीने व्यासजीके प्रति इस व्रतका वर्णन किया था। यह व्रत सम्पूर्ण पाप-राशिका शमन करनेवाला और महान् दुःखोंका विनाशक है। विप्र ! त्रिसूक्ष्मा नामक महान् व्रत सम्पूर्ण कामनाओंका दाता माना गया है। ब्राह्मणोंके लिये तो मोक्षदायक भी है। महामुने ! जो प्रतिदिन 'त्रिसूक्ष्मा'का नामोच्चारण करता है, उसके समस्त पापोंका क्षय हो जाता है। देवाधिदेव भगवान्-ने मोक्ष-प्राप्तिके लिये इस व्रतकी सृष्टि की है, इसीलिये इसे 'वैष्णवी तिथि' कहते हैं। इन्द्रियोंका निग्रह न होनेसे मनमें स्थिरता नहीं आती [मनकी यह अस्थिरता ही मोक्षमें बाधक है]। ब्रह्मन् ! जो ध्यान-धारणासे वर्जित, विषयपरायण तथा काम-भोगमें आसक्त है, उनके लिये त्रिसूक्ष्मा ही मोक्षदायिनी है। मुनिश्रेष्ठ ! पूर्वकालमें जब चक्रधारी श्रीविष्णुके द्वाग्र क्षीरसागरका मन्थन हो रहा था, उस समय चरणोंमें पड़े हुए देवताओंके मध्यमें ब्रह्माजीसे मैंने ही इस व्रतका वर्णन किया था। जो लोग विषयोंमें आसक्त रहकर भी त्रिसूक्ष्माका व्रत करेंगे, उनके लिये भी मैंने मोक्षका अधिकार दे रखा है। नारद ! तुम इस व्रतका अनुष्ठान करो, क्योंकि त्रिसूक्ष्मा मोक्ष देनेवाली है। महामुने ! बड़े-बड़े मुनियोंके समुदायने इस व्रतका पालन किया है। यदि कार्तिक शुक्लपक्षमें सोमवार या बुधवारसे युक्त

त्रिसूक्ष्मा एकादशी हो तो वह करोड़ों पापोंका नाश करनेवाली है। विप्रवर ! और पापोंकी तो बात ही क्या है, त्रिसूक्ष्माके व्रतसे ब्रह्महत्या आदि महापाप भी नष्ट हो जाते हैं। प्रयागमें मृत्यु होनेसे तथा द्वारकामें श्रीकृष्णके निकट गोमतीमें स्नान करनेसे शाश्वत मोक्ष प्राप्त होता है, परन्तु त्रिसूक्ष्माका उपवास करनेसे घरपर भी मुक्ति हो जाती है। इसलिये विप्रवर नारद ! तुम मोक्षदायिनी त्रिसूक्ष्माके व्रतका अवश्य अनुष्ठान करो। विप्र ! पूर्वकालमें भगवान् माधवने प्राची सरस्वतीके तटपर गङ्गाजीके प्रति कृपापूर्वक त्रिसूक्ष्मा-व्रतका वर्णन किया था।

गङ्गाने पूछा—हृषीकेश ! ब्रह्महत्या आदि करोड़ों पाप-राशियोंसे युक्त मनुष्य मेरे जलमें स्नान करते हैं, उनके पापों और दोषोंसे मेरा शरीर कलुषित हो गया है। देव ! गरुडध्वज ! मेरा वह पातक कैसे दूर होगा ?

प्राचीमाधव बोले—शुभे ! तुम त्रिसूक्ष्माका व्रत करो। यह सौ करोड़ तीर्थोंसे भी अधिक महत्वशालिनी है। करोड़ों यज्ञ, व्रत, दान, जप, होम और सांख्ययोगसे भी इसकी शक्ति बढ़ी हुई है। यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंको देनेवाली है। नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गा ! त्रिसूक्ष्मा-व्रत जिस-किसी महीनेमें भी आये तथा वह शुक्लपक्षमें हो या कृष्णपक्षमें, उसका अनुष्ठान करना ही चाहिये। उसे करके तुम पापसे मुक्त हो जाओगी। जब एक ही दिन एकादशी, द्वादशी तथा रात्रिके अन्तिम प्रहरमें त्रयोदशी भी हो तो उसे 'त्रिसूक्ष्मा' समझना चाहिये। उसमें दशमीका योग नहीं होता। देवनदी ! एकादशी-व्रतमें दशमी-वेधका दोष मैं नहीं क्षमा करता।

ऐसा जानकर दशमीयुक्त एकादशीका व्रत नहीं करना चाहिये। उसे करनेसे करोड़ों जन्मोंके किये हुए पुण्य तथा संतानका नाश होता है। वह पुरुष अपने वंशको स्वर्गसे गिराता और रौरव, आदि नरकोंमें पहुँचाता है। अपने शरीरको शुद्ध करके मेरे दिन—एकादशीका व्रत करना चाहिये। द्वादशी मुझे अत्यन्त प्रिय है, मेरी आज्ञासे इसका व्रत करना उचित है।

**गङ्गा बोलीं—जगन्नाथ!** आपके कहनेसे मैं त्रिस्पृशाका व्रत अवश्य करूँगी, आप मुझे इसकी विधि बताइये।

**प्राचीमाधवने कहा—सरिताओंमें उत्तम गङ्गा देवी!** सुनो, मैं त्रिस्पृशाका विधान बताता हूँ। इसका श्रवण मात्र करनेसे भी मनुष्य पातकोंसे मुक्त हो जाता है। अपने वैभवके अनुसार एक या आधे पल सोनेकी मेरी प्रतिमा बनवानी चाहिये। इसके बाद एक ताँबिके पात्रको तिलसे भरकर रखे और जलसे भरे हुए सुन्दर कलशकी स्थापना करे, जिसमें पञ्चरत्न मिलाये गये हों। कलशको फूलोंकी मालाओंसे आवेष्टित करके कपूर आदिसे सुवासित करे। इसके बाद भगवान् दामोदरको स्थापित करके उन्हें स्नान कराये और चन्दन चढ़ाये। फिर भगवान्‌को वस्त्र धारण कराये। तदनन्तर पुराणोक्त सामयिक सुन्दर पुष्प तथा कोमल तुलसीदलसे भगवान्‌की पूजा करे। उन्हें छत्र और उपानह (जूतियाँ) अर्पण करे! मनोहर नैवेद्य और बहुत-से सुन्दर-सुन्दर फलोंका भोग लगाये। यज्ञोपवीत तथा नूतन एवं सुदृढ़ उत्तरीय वस्त्र चढ़ाये। सुन्दर ऊँची बाँसकी छड़ी भी भेंट करे। ‘दामोदराय नमः’ कहकर दोनों चरणोंकी, ‘माधवाय नमः’ से दोनों घुटनोंकी, ‘कामप्रदाय नमः’ से गुह्यभागकी तथा ‘वामनमूर्तये नमः’ कहकर कटिकी पूजा करे। ‘पद्मनाभाय नमः’ से नाभिकी, ‘विश्वमूर्तये नमः’ से पेटकी, ‘ज्ञानगम्याय नमः’ से हृदयकी, ‘वैकुण्ठगामिने नमः’ से कण्ठकी, ‘सहस्रबाहवे नमः’ से बाहुओंकी, ‘योगस्त्रयिणे नमः’ से नेत्रोंकी, ‘सहस्रशीर्षों नमः’ से सिरकी तथा ‘माधवाय नमः’ कहकर सम्पूर्ण अङ्गोंकी पूजा करनी चाहिये।

इस प्रकार विधिवत् पूजा करके विधिके अनुसार अर्ध्य देना चाहिये। जलयुक्त शङ्खके ऊपर सुन्दर नारियल रखकर उसमें रक्षासूत्र लपेट दे। फिर दोनों हाथोंमें वह शङ्ख आदि लेकर निम्राङ्कित मन्त्र पढ़े—

सृतो हरसि पापानि यदि नित्यं जनार्दन ॥  
दुःस्वप्नं दुर्निमित्तानि मनसा दुर्विचिन्तितम् ।  
नारकं तु भयं देव भयं दुर्गतिसंभवम् ॥  
यन्मम स्यान्महादेव ऐहिं पारलौकिकम् ।  
तेन देवेश मां रक्ष गृहाणार्थ्यं नमोऽस्तु ते ॥  
सदा भक्तिर्मैवास्तु दामोदर तवोपरि ।

(३५। ६९—७२)

‘जनार्दन ! यदि आप सदा स्मरण करनेपर मनुष्यके सब पाप हर लेते हैं तो देव ! मेरे दुःस्वप्न, अपशकुन, मानसिक दुश्चिन्ता, नारकीय भय तथा दुर्गतिजन्य त्रास हर लीजिये। महादेव ! देवेश्वर ! मेरे लिये इहलोक तथा परलोकमें जो भय है, उनसे मेरी रक्षा कीजिये तथा यह अर्ध्य ग्रहण कीजिये। आपको नमस्कार है। दामोदर ! सदा आपमें ही मेरी भक्ति बनी रहे।’

तत्पश्चात् धूप, दीप और नैवेद्य अर्पण करके भगवान्‌की आरती उतारे। उनके मस्तकपर शङ्ख धुमाये। यह सब विधान पूरा करके सदगुरुकी पूजा करे। उन्हें सुन्दर वस्त्र, पगड़ी तथा अंगां दे। साथ ही जूता, छत्र, अङ्गूठी, कमण्डलु, भोजन, पान, सप्तधान्य तथा दक्षिणा दे। गुरु और भगवान्‌की पूजाके पश्चात् श्रीहरिके समीप जागरण करे। जागरणमें गीत, नृत्य तथा अन्यान्य उपचारोंका भी समावेश रहना चाहिये। तदनन्तर रात्रिके अन्तमें विधिपूर्वक भगवान्‌को अर्ध्य दे स्नान आदि कार्य करके ब्राह्मणोंको भोजन करानेके पश्चात् स्वयं भोजन करे।

**महादेवजी कहते हैं—ब्रह्मन् ! ‘त्रिस्पृशा’ व्रतका यह अद्भुत उपाख्यान सुनकर मनुष्य गङ्गातीर्थमें स्नान करनेका पुण्य-फल प्राप्त करता है। त्रिस्पृशाके उपवाससे हजार अश्वमेथ और सौ वाजपेय यज्ञोंका फल मिलता है। यह व्रत करनेवाला पुरुष पितृकुल, मातृकुल तथा पत्नीकुलके सहित विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। करोड़ों तीर्थोंमें जो पुण्य तथा करोड़ों लक्ष्मीोंमें जो फल**

मिलता है, वह त्रिस्पृशाके उपवाससे मनुष्य प्राप्त कर लेता है। द्विजश्रेष्ठ ! जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा अन्य जातिके लोग भगवान् श्रीकृष्णमें मन लगाकर इस व्रतको करते हैं, वे सब इस धराधामको छोड़नेपर मुक्त हो जाते हैं। इसमें द्वादशाक्षर मन्त्रका जप करना चाहिये। यह मन्त्रोंमें मन्त्रराज माना गया है। इसी

प्रकार त्रिस्पृशा सब व्रतोंमें उत्तम बतायी गयी है। जिसने इसका व्रत किया, उसने सम्पूर्ण व्रतोंका अनुष्टान कर लिया। पूर्वकालमें स्वयं ब्रह्माजीने इस व्रतको किया था, तदनन्तर अनेकों ऋषियोंने भी इसका अनुष्टान किया; फिर दूसरोंकी तो बात ही क्या है। नारद ! यह त्रिस्पृशा मोक्ष देनेवाली है।



## पक्षवर्धिनी एकादशी तथा जागरणका माहात्म्य

**नारदजीने पूछा**—महादेव ! ‘पक्षवर्धिनी’ नामवाली तिथि कैसी होती है, जिसका व्रत करनेसे मनुष्य महान् पापसे छुटकारा पा जाता है ?

**श्रीमहादेवजी बोले**—यदि अमावास्या अथवा पूर्णिमा साठ दप्डकी होकर दिन-रात अविकल रूपसे रहे और दूसरे दिन अतिपदमें भी उसका कुछ अंश चला गया हो तो वह ‘पक्षवर्धिनी’ मानी जाती है। उस पक्षकी एकादशीका भी यही नाम है, वह दस हजार अश्वमेध यज्ञोंके समान फल देनेवाली होती है। अब उस दिन की जानेवाली पूजाविधिका वर्णन करता हूँ, जिससे भगवान् लक्ष्मीपतिको संतोष प्राप्त होता है। सबसे पहले जलसे भरे हुए कलशकी स्थापना करनी चाहिये। कलश नवीन हो—फूटा-टूटा न हो और चन्दनसे चर्चित किया गया हो। उसके भीतर पञ्चरत्न डाले गये हों तथा वह कलश फूलकी मालाओंसे आवृत हो। उसके ऊपर एक ताँबिका पात्र रखकर उसमें गेहूँ भर देना चाहिये। उस पात्रमें भगवान्के सुवर्णमय विग्रहकी स्थापना करे। जिस मासमें पक्षवर्धिनी तिथि पड़ी हो, उसीका नाम भगवद्विग्रहका भी नाम समझना चाहिये। जगत्के स्वामी देवेश्वर जगत्राथका स्वरूप अत्यन्त मनोहर बनवाना चाहिये। फिर विधिपूर्वक पञ्चामृतसे भगवान्को नहलाना तथा कुङ्कम, अरणजा और चन्दनसे अनुलेप करना चाहिये। फिर दो वस्त्र अर्पण करने चाहिये; उनके साथ छत्र और जूते भी हों। इसके बाद कलशपर विराजमान देवेश्वर श्रीहरिकी पूजा आरम्भ करे। ‘पद्मनाभाय नमः’ कहकर दोनों चरणोंकी, ‘विश्वमूर्तये नमः’ बोलकर दोनों

घुटनोंकी, ‘ज्ञानगम्याय नमः’ से दोनों जाँघोंकी, ‘ज्ञानप्रदाय नमः’ से कटिभागकी, ‘विश्वनाथाय नमः’ से उदरकी, ‘श्रीधराय नमः’ से हृदयकी, ‘कौस्तुभ-कण्ठाय नमः’ से कण्ठकी, ‘क्षत्रान्तकारिणे नमः’ से दोनों बाँहोंकी, ‘व्योममूर्खे नमः’ से ललाटकी तथा ‘सर्वरूपिणे नमः’ से सिरकी पूजा करनी चाहिये। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न अङ्गोंका भी उनके नाममन्त्रद्वारा पूजन करना उचित है। अन्तमें ‘दिव्यरूपिणे नमः’ कहकर भगवान्के सम्पूर्ण अङ्गोंकी पूजा करनी चाहिये।

इस तरह विधिवत् पूजन करके विद्वान् पुरुष सुन्दर नारियलके द्वारा चक्रधारी देवदेव श्रीहरिको अर्घ्य प्रदान करे। इस अर्घ्यदानसे ही व्रत पूर्ण होता है। अर्घ्यदानका मन्त्र इस प्रकार है—

संसारार्णवमग्रं भो मामुद्धर जगत्पते ।  
त्वमीशः सर्वलोकानां त्वं साक्षात् जगत्पतिः ॥  
गृहाणार्थ्यं मया दत्तं पद्मनाभ नमोऽस्तु ते ।

(३८। १४-१५)

‘जगदीश्वर ! मैं संसारसागरमें ढूब रहा हूँ, मेरा उद्धार कीजिये। आप सम्पूर्ण लोकोंके ईश्वर तथा साक्षात् जगत्पति परमेश्वर हैं। पद्मनाभ ! आपको नमस्कार है। मेरा दिया हुआ अर्घ्य स्वीकार कीजिये।’

तत्पश्चात् भगवान् केशवको भक्तिपूर्वक भाँति-भाँतिके नैवेद्य अर्पण करे, जो मनको अत्यन्त प्रिय लगानेवाले और मधुर आदि छहों रसोंसे युक्त हों। इसके बाद भगवान्को भक्तिके साथ कर्पूरयुक्त ताम्बूल निवेदन करे। घी अथवा तिलके तेलसे दीपक जलाकर रखे।

यह सब करनेके पश्चात् गुरुकी पूजा करे। उन्हें वस्त्र, पगड़ी तथा जामा दे। अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणा भी दे। फिर भोजन और ताम्बूल निवेदन करके आचार्यको संतुष्ट करे। निर्धन पुरुषोंको भी यथाशक्ति प्रयत्नपूर्वक पक्षवर्धिनी एकादशीका व्रत करना चाहिये। तदनन्तर गीत, नृत्य, पुराण-पाठ तथा हर्षके साथ रात्रिमें जागरण करे।

जो मनीषी पुरुष पक्षवर्धिनी एकादशीका माहात्म्य श्रवण करते हैं, उनके द्वारा सम्पूर्ण व्रतका अनुष्ठान हो जाता है। पञ्चामिसेवन तथा तीर्थोंमें साधना करनेसे जो पुण्य होता है, वह श्रीविष्णुके समीप जागरण करनेसे ही प्राप्त हो जाता है। पक्षवर्धिनी एकादशी परम पुण्यमयी तथा सब पापोंका नाश करनेवाली है। ब्रह्मन्! यह उपवास करनेवाले मनुष्योंकी करोड़ों हत्याओंका भी विनाश कर डालती है। मुने ! पूर्वकालमें महर्षि वसिष्ठ, भरद्वाज, धृति तथा राजा अम्बरीषने भी इसका व्रत किया था। यह तिथि श्रीविष्णुको अत्यन्त प्रिय है। यह काशी तथा द्वारकापुरीके समान पवित्र है। भक्त पुरुषके उपवास करनेपर यह उसे मनोवाञ्छित फल प्रदान करती है। जैसे सूर्योदय होनेपर तत्काल अन्धकारका नाश हो जाता है, उसी प्रकार पक्षवर्धिनीका व्रत करनेसे पापराशि नष्ट हो जाती है।

नारद ! अब मैं एकादशीकी रातमें जागरण करनेका माहात्म्य बतलाऊँगा, ध्यान देकर सुनो। भक्त पुरुषको चाहिये कि एकादशी तिथिको रात्रिके समय भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुका पूजन करके वैष्णवोंके साथ उनके सामने जागरण करे। जो गीत, वाद्य, नृत्य, पुराण-पाठ, धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्प, चन्दनानुलेप, फल, अर्ध्य, श्रद्धा, दान, इन्द्रियसंयम, सत्यभाषण तथा शुभकर्मके अनुष्ठानपूर्वक प्रसन्नताके साथ श्रीहरिके समक्ष जागरण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् का प्रिय होता है। जो विद्वान् मनुष्य भगवान् विष्णुके समीप जागरण करते, श्रीकृष्णकी भावना करते हुए कभी नींद नहीं लेते तथा मन-ही-मन बास्त्वार श्रीकृष्णका नामोच्चारण करते हैं, उन्हें परम धन्य समझना चाहिये। विशेषतः एकादशीकी रातमें जागरणेपर

तो वे और भी धन्यवादके पात्र हैं। जागरणके समय एक क्षण गोविन्दका नाम लेनेसे व्रतका चौगुना फल होता है, एक पहरतक नामोच्चारणसे कोटिगुना फल मिलता है और चार पहरतक नामकीर्तन करनेसे असीम फलकी प्राप्ति होती है। श्रीविष्णुके आगे आधे निमेष भी जागरणेपर कोटिगुना फल होता है, उसकी संख्या नहीं है। जो नरश्रेष्ठ भगवान् केशवके आगे नृत्य करता है, उसके पुण्यका फल जन्मसे लेकर मृत्युकालतक कभी क्षीण नहीं होता। महाभाग ! प्रत्येक प्रहरमें विस्मय और उत्साहसे युक्त हो पाप तथा आलस्य आदि छोड़कर निवेदशून्य हृदयसे श्रीहरिके समक्ष नमस्कार और नीराजनासे युक्त आरती उतारनी चाहिये। जो मनुष्य एकादशीको भक्तिपूर्वक अनेक गुणोंसे युक्त जागरण करता है, वह फिर इस पृथ्वीपर जन्म नहीं लेता। जो धनकी कंजूसी छोड़कर पूर्वोक्त प्रकारसे एकादशीको भक्तिसहित जागरण करता है, वह परमात्मामें लीन होता है।

जो भगवान् विष्णुके लिये जागरणका अवसर प्राप्त होनेपर उसका उपहास करता है, वह साठ हजार वर्षोंतक विष्णुका कीड़ा होता है। प्रतिदिन वेद-शास्त्रमें परायण तथा यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाला ही क्यों न हो, यदि एकादशीकी रातमें जागरणका समय आनेपर उसकी निन्दा करता है तो उसका अधःपतन होता है। जो मेरी (शिवकी) पूजा करते हुए विष्णुकी निन्दामें तत्पर रहता है, वह अपनी इक्कीस पीढ़ियोंके साथ नरकमें पड़ता है। विष्णु ही शिव है और शिव ही विष्णु हैं। दोनों एक ही मूर्तिकी दो झाँकियोंके समान स्थित हैं, अतः किसी प्रकार भी इनकी निन्दा नहीं करनी चाहिये। यदि जागरणके समय पुराणकी कथा बाँचनेवाला कोई न हो तो नाच-गान करना चाहिये। यदि कथावाचक मौजूद हों तो पहले पुराणका ही पाठ होना चाहिये। वत्स ! श्रीविष्णुके लिये जागरण करनेपर एक हजार अश्वमेध तथा दस हजार वाजपेय यज्ञोंसे भी करोड़गुना पुण्य प्राप्त होता है। श्रीहरिकी प्रसन्नताके लिये जागरण करके मनुष्य पिता, माता तथा पत्नी—तीनोंके कुलोंका उद्घार कर देता है। यदि एकादशीके व्रतका दिन दशमीसे विद्ध हो तो

श्रीहरिका पूजन, जागरण और दान आदि सब व्यर्थ होता है—ठीक उसी तरह, जैसे कृतम् मनुष्योंके साथ किया हुआ नेकीका बर्ताव व्यर्थ हो जाता है। जो वेधरहित एकादशीको जागरण करते हैं, उनके बीचमें साक्षात् श्रीहरि संतुष्ट होकर नृत्य करते हैं। जो श्रीहरिके लिये नृत्य, गीत और जागरण करता है, उसके लिये ब्रह्माजीका लोक, मेरा कैलास-धाम तथा भगवान् श्रीविष्णुका वैकुण्ठधाम—सब-के-सब निश्चय ही सुलभ है। जो स्वयं श्रीहरिके लिये जागरण करते हुए और लोगोंको भी जगाये रखता है, वह विष्णुभक्त पुरुष अपने पितरोंके साथ वैकुण्ठलोकमें निवास करता है। जो श्रीहरिके लिये जागरण करनेकी लोगोंको सलाह देता है, वह मनुष्य साठ हजार वर्षोंतक श्वेतद्वीपमें निवास करता है। नारद ! मनुष्य करोड़ों जन्मोंमें जो पाप सञ्चित करता है, वह सब श्रीहरिके लिये एक रात जागरण करनेपर नष्ट हो जाता है। जो शालग्राम-शिलाके समक्ष जागरण करते हैं, उन्हें एक-एक पहरमें कोटि-कोटि तीर्थोंके सेवनका फल प्राप्त होता है। जागरणके लिये भगवान्‌के मन्दिरमें जाते समय मनुष्य जितने पा चलता है, वे सभी अश्वमेध यज्ञके समान फल देनेवाले होते हैं। पृथ्वीपर चलते समय दोनों चरणोंपर जितने धूलिकण गिरते हैं, उतने हजार वर्षोंतक जागरण करनेवाला पुरुष दिव्यलोकमें निवास करता है।

इसलिये प्रत्येक द्वादशीको जागरणके लिये अपने घरसे भगवान् विष्णुके मन्दिरमें जाना चाहिये। इससे कलिमलका विनाश होता है। दूसरोंकी निन्दामें संलग्न होना, मनका प्रसन्न न रहना, शास्त्रचर्चाका न होना, संगीतका अभाव, दीपक न जलाना, शक्तिके अनुसार पूजाके उपचारोंका न होना, उदासीनता, निन्दा तथा कलह—इन दोषोंसे युक्त नौ प्रकारका जागरण अधम

माना गया है।\* जिस जागरणमें शास्त्रकी चर्चा, सात्त्विक नृत्य, संगीत, वाद्य, ताल, तैलयुक्त दीपक, कीर्तन, भक्तिभावना, प्रसन्नता, संतोषजनकता, समुदायकी उपस्थिति तथा लोगोंके मनोरञ्जनका सात्त्विक साधन हो, वह उक्त बारह गुणोंसे युक्त जागरण भगवान्‌को बहुत प्रिय है। शुक्ल और कृष्ण दोनों ही पक्षोंकी एकादशीको प्रयत्नपूर्वक जागरण करना चाहिये।† नारद ! परदेशमें जानेपर मार्गका थका-माँदा होनेपर भी जो द्वादशीको भगवान् वासुदेवके निमित्त किये जानेवाले जागरणका नियम नहीं छोड़ता, वह मुझे विशेष प्रिय है। जो एकादशीके दिन भोजन कर लेता है, उसे पशुसे भी गया-बीता समझना चाहिये; वह न तो शिवका उपासक है न सूर्यका, न देवीका भक्त है और न गणेशजीका। जो एकादशीको जागरण करते हैं, उनका बाहर-भीतर यदि करोड़ों पापोंसे घिरा हो तो भी वे मुक्त हो जाते हैं। वेधरहित द्वादशीका व्रत और श्रीविष्णुके लिये किया जानेवाला जागरण यमदूतोंका मानमर्दन करनेवाला है। मुनिश्रेष्ठ ! एकादशीको जागरण करनेवाले मनुष्य अवश्य मुक्त हो जाते हैं।

जो रातको भगवान् वासुदेवके समक्ष जागरणमें प्रवृत्त होनेपर प्रसन्नचित हो तालीं बजाते हुए नृत्य करता, नाना प्रकारके कौतुक दिखाते हुए मुखसे गीत गाता, वैष्णवजनोंका मनोरञ्जन करते हुए श्रीकृष्ण-चरितका पाठ करता, रोमाञ्चित होकर मुखसे बाजा बजाता तथा स्वेच्छानुसार धार्मिक आलाप करते हुए भाँति-भाँतिके नृत्यका प्रदर्शन करता है, वह भगवान्‌का प्रिय है। इन भावोंके साथ जो श्रीहरिके लिये जागरण करता है, उसे नैमिष तथा कोटितीर्थका फल प्राप्त होता है। जो शान्तचित्तसे श्रीहरिको धूप-आरती दिखाते हुए रातमें जागरण करता है, वह सात द्वीपोंका अधिपति होता है।

\* परापवादसंयुक्त

मनःप्रसादवर्जितम्। शास्त्रहीनमगान्धर्वं यथा दीपविवर्जितम्॥

शक्त्योपचाररहितमुदासीनं

सनिन्दनम्। कलियुक्तं विशेषेण जागरं नवधाऽधमम्॥ (३९। ५३-५४)

† सशास्त्रं जागरं यच्च नृत्यगन्धर्वसंयुतम्। सवाद्यं

तालसंयुक्तं सदीयं मधुभिर्युतम्॥

उच्चारैस्तु समायुक्तं यथोक्तैर्भक्तिभावितैः। प्रसन्नं

तुष्टिजननं समूढं लोकरञ्जनम्॥

गुणैर्द्वादशभिर्युक्तं जागरं माधवप्रियम्। कर्तव्यं

तत् प्रयत्नेन पक्षयोः। शुक्लकृष्णयोः॥ (३९। ५५—५७)

ब्रह्महत्याके समान भी जो कोई पाप हों, वे सब श्रीकृष्णकी प्रीतिके लिये जागरण करनेपर नष्ट हो जाते हैं। एक ओर उत्तम दक्षिणाके साथ समाप्त होनेवाले सम्पूर्ण यज्ञ और दूसरी ओर देवाधिदेव श्रीकृष्णको प्रिय लगनेवाला एकादशीका जागरण—दोनों समान हैं।

जहाँ भगवान्‌के लिये जागरण किया जाता है वहाँ काशी, पुष्कर, प्रयाग, नैमिषारण्य, शालग्राम नामक महाक्षेत्र, अर्बुदारण्य (आबू), शूकरक्षेत्र (सोरों), मथुरा तथा सम्पूर्ण तीर्थ निवास करते हैं। समस्त यज्ञ और चारों वेद भी श्रीहरिके निमित्त किये जानेवाले जागरणके स्थानपर उपस्थित होते हैं। गङ्गा, सरस्वती, तापी, यमुना, शतद्रु (सतलज), चन्द्रभागा तथा वितस्ता आदि सम्पूर्ण नदियाँ भी वहाँ जाती हैं। द्विजश्रेष्ठ ! सरोवर, कुण्ड और समस्त समुद्र भी एकादशीको जागरणस्थानपर जाते हैं। जो मनुष्य श्रीकृष्णप्रीतिके लिये होनेवाले जागरणके समय वीणा आदि बाजोंसे हर्षमें भरकर नृत्य करते और पद गाते हैं, वे देवताओंके लिये भी आदरणीय होते हैं। इस प्रकार जागरण करके श्रीमहाविष्णुकी पूजा करे और द्वादशीको अपनी शक्तिके अनुसार कुछ वैष्णव पुरुषोंको निमन्त्रित करके उनके साथ बैठकर पारण करे।

द्वादशीको सदा पवित्र और मोक्षदायिनी समझना चाहिये। उस दिन प्रातःस्नान करके श्रीहरिकी पूजा करे और उन्हें निप्राङ्गित मन्त्र पढ़कर अपना व्रत समर्पण करे—

अज्ञानतिमिरान्धस्य      ब्रतेनानेन      केशव ।

प्रसीद सुमुखो भूत्वा ज्ञानदृष्टिप्रदो भव ॥

(३९। ८१-८२)

'केशव ! मैं अज्ञानरूपी रत्नौधीसे अंधा हो रहा हूँ,

आप इस व्रतसे प्रसन्न हों और प्रसन्न होकर मुझे ज्ञानदृष्टि प्रदान करें।'

इसके बाद यथासम्भव पारण करना चाहिये। पारण समाप्त होनेपर इच्छानुसार विहित कर्मोंका अनुष्ठान करे। नारद ! यदि दिनमें पारणके समय थोड़ी भी द्वादशी न हो तो मुक्तिकामी पुरुषको रातको ही [पिछले पहरमें] पारण कर लेना चाहिये। ऐसे समयमें रात्रिको भोजन करनेका दोष नहीं लगता। रात्रिके पहले और पिछले पहरमें दिनकी भाँति कर्म करने चाहिये। यदि पारणके दिन बहुत थोड़ी द्वादशी हो तो उषःकालमें ही प्रातःकाल तथा मध्याह्नकालकी भी संध्या कर लेनी चाहिये। इस पृथ्वीपर जिस मनुष्यने द्वादशी-व्रतको सिद्ध कर लिया है, उसका पुण्य-फल बतलानेमें मैं भी समर्थ नहीं हूँ। एकादशी देवी सब पुण्योंसे अधिक है तथा यह सर्वदा मोक्ष देनेवाली है। यह द्वादशी नामक व्रत महान् पुण्यदायक है। जो इसका साधन कर लेते हैं, वे महापुरुष समस्त कामनाओंको प्राप्त कर लेते हैं। अम्बरीष आदि सभी भक्त, जो इस भूमप्डलमें विख्यात हैं, द्वादशी-व्रतका साधन करके ही विष्णुधामको प्राप्त हुए हैं। यह माहात्म्य, जो मैंने तुम्हें बताया है, सत्य है। सत्य है !! सत्य है !!! श्रीविष्णुके समान कोई देवता नहीं है और द्वादशीके समान कोई तिथि नहीं है। इस तिथिको जो कुछ दान किया जाता, भोगा जाता तथा पूजन आदि किया जाता है, वह सब भगवान् माधवके पूजित होनेपर पूर्णताको प्राप्त होता है। अधिक क्या कहा जाय, भक्तवल्लभ श्रीहरि द्वादशी-व्रत करनेवाले पुरुषोंकी कामना कल्पान्ततक पूर्ण करते रहते हैं। द्वादशीको किया हुआ सारा दान सफल होता है।

————★————

## एकादशीके जया आदि भेद, नक्तव्रतका स्वरूप, एकादशीकी विधि, उत्पत्ति-कथा और महिमाका वर्णन

नारदजीने पूछा—महादेव ! महाद्वादशीका उत्तम व्रत कैसा होता है । सर्वेश्वर प्रभो ! उसके व्रतसे जो कुछ भी फल प्राप्त होता है, उसे बतानेकी कृपा कीजिये ।

महादेवजीने कहा—ब्रह्मन् ! यह एकादशी महान् पुण्यफलको देनेवाली है । श्रेष्ठ मुनियोंको भी इसका अनुष्ठान करना चाहिये । विशेष-विशेष नक्षत्रोंका योग होनेपर यह तिथि जया, विजया, जयन्ती तथा पापनाशिनी—इन चार नामोंसे विख्यात होती है । ये सभी पापोंका नाश करनेवाली हैं । इनका व्रत अवश्य करना चाहिये । जब शुक्लपक्षकी एकादशीको 'पुनर्वसु' नक्षत्र हो तो वह उत्तम तिथि 'जया' कहलाती है । उसका व्रत करके मनुष्य निश्चय ही पापसे मुक्त हो जाता है । जब शुक्लपक्षकी द्वादशीको 'श्रवण' नक्षत्र हो तो वह उत्तम तिथि 'विजया' के नामसे विख्यात होती है; इसमें किया हुआ दान और ब्राह्मण-भोजन सहस्रगुना फल देनेवाला है तथा होम और उपवास तो सहस्रगुनेसे भी अधिक फल देता है । जब शुक्लपक्षकी द्वादशीको 'रोहिणी' नक्षत्र हो तो वह तिथि 'जयन्ती' कहलाती है; वह सब पापोंको हरनेवाली है । उस तिथिको पूजित होनेपर भगवान् गौविन्द निश्चय ही मनुष्यके सब पापोंको धो डालते हैं । जब कभी शुक्लपक्षकी द्वादशीको 'पुष्य' नक्षत्र हो तो वह महापुण्यमयी 'पापनाशिनी' तिथि कहलाती है । जो एक वर्षतक प्रतिदिन एक प्रस्थ तिल दान करता है तथा जो केवल 'पापनाशिनी' एकादशीको उपवास करता है, उन दोनोंका पुण्य समान होता है । उस तिथिको पूजित होनेपर संसारके स्वामी सर्वेश्वर श्रीहरि संतुष्ट होते हैं तथा प्रत्यक्ष दर्शन भी देते हैं । उस दिन प्रत्येक पुण्यकर्मका अनन्त फल माना गया है । सगरनन्दन ककुत्स्थ, नहुष तथा राजा गाधिने उस तिथिको भगवान्की आराधना की थी, जिससे भगवान्ने इस पृथ्वीपर उन्हें सब कुछ दिया था । इस तिथिके सेवनसे मनुष्य सात जन्मोंके कायिक, वाचिक और मानसिक पापसे मुक्त हो जाता है । इसमें

तनिक भी संदेह नहीं है । पुष्य नक्षत्रसे युक्त एकमात्र पापनाशिनी एकादशीका व्रत करके मनुष्य एक हजार एकादशियोंके व्रतका फल प्राप्त कर लेता है । उस दिन स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय और देवपूजा आदि जो कुछ भी किया जाता है, उसका अक्षय फल माना गया है । इसलिये प्रयत्नपूर्वक इसका व्रत करना चाहिये । जिस समय धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर पञ्चम अश्वमेध यज्ञका स्नान कर चुके, उस समय उन्होंने यदुवंशावतंस भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार प्रश्न किया ।



युधिष्ठिर बोले—प्रभो ! नक्तव्रत तथा एकभुत्त व्रतका पुण्य एवं फल क्या है ? जनार्दन ! यह सब मुझे बताइये ।

श्रीभगवान्ने कहा—कुन्तीनन्दन ! हेमन्त ऋतु जब परम कल्याणमय मार्गशीर्ष मास आये, तब उसे कृष्णपक्षकी द्वादशी तिथिको उपवास (व्रत) कर चाहिये । उसकी विधि इस प्रकार है—दृढ़तापूर्वक उत-

ब्रतका पालन करनेवाला शुद्धचित्त पुरुष दशमीको सदा एकभुक्त रहे अथवा शौच-सन्तोषादि नियमोंके पालनपूर्वक नक्तब्रतके स्वरूपको जानकर उसके अनुसार एक बार भोजन करे। दिनके आठवें भागमें जब सूर्यका तेज मन्द पड़ जाता है, उसे 'नक्त' जानना चाहिये। रातको भोजन करना 'नक्त' नहीं है। गृहस्थके लिये तारोंके दिखायी देनेपर नक्तभोजनका विधान है और सन्यासीके लिये दिनके आठवें भागमें; क्योंकि उसके लिये रातमें भोजनका निषेध है। कुन्तीनन्दन ! दशमीकी रात व्यतीत हेनेपर एकादशीको प्रातःकाल ब्रत करनेवाला पुरुष ब्रतका नियम ग्रहण करे और सबेरे तथा मध्याह्नको पवित्रताके लिये स्नान करे। कुएँका स्नान निम्न श्रेणीका है। बावलीमें स्नान करना मध्यम, पोखरेमें उत्तम तथा नदीमें उससे भी उत्तम माना गया है। जहाँ जलमें खड़ा होनेपर जल-जन्तुओंको पीड़ा होती हो, वहाँ स्नान करनेपर पाप और पुण्य बराबर होता है। यदि जलको छानकर शुद्ध कर ले तो घरपर भी स्नान करना उत्तम माना गया है। इसलिये पाण्डव-श्रेष्ठ ! घरपर उक्त विधिसे स्नान करे। स्नानके पहले निम्राङ्कित मन्त्र पढ़कर शरीरमें मृत्तिका लगा ले—

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्थरे ।  
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया पूर्वसञ्चितम् ॥

(४०।२८)

'वसुन्थरे ! तुम्हारे ऊपर अश्व और रथ चला करते हैं। भगवान् विष्णुने भी वामन अवतार धारण कर तुम्हें आपने पैरोंसे नापा था। मृत्तिके ! मैंने पूर्वकालमें जो पाप सञ्चित किया है, उस मेरे पापको हर लो।'

ब्रती पुरुषको चाहिये कि वह एकचित्त और दृढ़ सङ्कल्प होकर क्रोध तथा लोभका परित्याग करे। अन्त्यज, पाखण्डी, मिथ्यावादी, ब्राह्मणनिन्दक, अगम्या खीके साथ गमन करनेवाले अन्यान्य दुराचारी, परधनहारी तथा परस्तीगामी मनुष्योंसे वार्तालाप न करे। भगवान् केशवकी पूजा करके उन्हें नैवेद्य भोग लगाये। घरमें भक्तियुक्त मनसे दीपक जलाकर रखे। पार्थ ! उस दिन निजा और मैथुनका परित्याग करे। धर्मशास्त्रसे

मनोरञ्जन करते हुए सम्पूर्ण दिन व्यतीत करे। नृपश्रेष्ठ ! भक्तियुक्त होकर रात्रिमें जागरण करे, ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे और प्रणाम करके उनसे त्रुटियोंके लिये क्षमा माँगे। जैसी कृष्णपक्षकी एकादशी है, वैसी ही शुक्रपक्षकी भी है। इसी विधिसे उसका भी ब्रत करना चाहिये।

पार्थ ! द्विजको उचित है कि वह शुक्र और कृष्णपक्षकी एकादशीके ब्रती लोगोंमें भेदबुद्धि न उत्पन्न करे। शङ्खोद्धार तीर्थमें स्नान करके भगवान् गदाधरका दर्शन करनेसे जो पुण्य होता है तथा संक्रान्तिके अवसरपर चार लाखका दान देकर जो पुण्य प्राप्त किया जाता है, वह सब एकादशीब्रतकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं है। प्रभासक्षेत्रमें चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणके अवसरपर स्नान-दानसे जो पुण्य होता है, वह निश्चय ही एकादशीको उपवास करनेवाले मनुष्यको मिल जाता है। केदारक्षेत्रमें जल पीनेसे पुनर्जन्म नहीं होता। एकादशीका भी ऐसा ही माहात्म्य है। यह भी गर्भवासका निवारण करनेवाली है। पृथ्वीपर अश्वमेध यज्ञका जो फल होता है, उससे सौगुना अधिक फल एकादशी-ब्रत करनेवालेको मिलता है। जिसके घरमें तपस्वी एवं श्रेष्ठ ब्राह्मण भोजन करते हैं उसको जिस फलकी प्राप्ति होती है, वह एकादशी-ब्रत करनेवालेको भी अवश्य मिलता है। वेदाङ्गोंके पारगामी विद्वान् ब्राह्मणको सहस्र गोदान करनेसे जो पुण्य होता है, उससे सौगुना पुण्य एकादशी-ब्रत करनेवालेको प्राप्त होता है। इस प्रकार ब्रतीको वह पुण्य प्राप्त होता है, जो देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। रातको भोजन कर लेनेपर उससे आधा पुण्य प्राप्त होता है तथा दिनमें एक बार भोजन करनेसे देहधारियोंको नक्त-भोजनका आधा फल मिलता है। जीव जबतक भगवान् विष्णुके प्रिय दिवस एकादशीको उपवास नहीं करता, तभीतक तीर्थ, दान और नियम अपने महत्वकी गर्जना करते हैं। इसलिये पाण्डव-श्रेष्ठ ! तुम इस ब्रतका अनुष्ठान करो। कुन्तीनन्दन ! यह गोपनीय एवं उत्तम ब्रत है, जिसका मैंने तुमसे वर्णन किया है। हजारों यज्ञोंका अनुष्ठान भी एकादशी-ब्रतकी तुलना नहीं कर सकता।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! पुण्यमयी एकादशी तिथि कैसे उत्पन्न हुई ? इस संसारमें क्यों पवित्र मानी गयी ? तथा देवताओंको कैसे प्रिय हुई ?

श्रीभगवान् बोले—कुन्तीनन्दन ! प्राचीन समयकी बात है, सत्ययुगमें मुर नामक दानव रहता था। वह बड़ा ही अद्भुत, अत्यन्त रौद्र तथा सम्पूर्ण देवताओंके लिये भयङ्कर था। उस कालरूपधारी दुरात्मा महासुरने इन्द्रको भी जीत लिया था। सम्पूर्ण देवता उससे परास्त होकर स्वर्गसे निकाले जा चुके थे और शंकित तथा भयभीत होकर पृथ्वीपर विचरा करते थे। एक दिन सब देवता महादेवजीके पास गये। वहाँ इन्द्रने भगवान् शिवके आगे सारा हाल कह सुनाया।

इन्द्र बोले—महेश्वर ! ये देवता स्वर्गलोकसे भ्रष्ट होकर पृथ्वीपर विचर रहे हैं। मनुष्योंमें रहकर इनकी शोभा नहीं होती। देव ! कोई उपाय बतलाइये। देवता किसका सहारा लें ?

महादेवजीने कहा—देवराज ! जहाँ सबको शरण देनेवाले, सबकी रक्षामें तत्पर रहनेवाले जगत्के स्वामी भगवान् गरुडध्वज विराजमान हैं, वहाँ जाओ। वे तुमलोगोंकी रक्षा करेंगे।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—युधिष्ठिर ! महादेवजीकी बात सुनकर परम बुद्धिमान् देवराज इन्द्र सम्पूर्ण देवताओंके साथ वहाँ गये। भगवान् गदाधर क्षीरसागरके जलमें सो रहे थे। उनका दर्शन करके इन्द्रने हाथ जोड़कर स्तुति आरम्भ की।

इन्द्र बोले—देवदेवेश्वर ! आपको नमस्कार है। देवता और दानव दोनों ही आपकी वन्दना करते हैं। पुण्डरीकाक्ष ! आप दैत्योंके शत्रु हैं। मधुसूदन ! हमलोगोंकी रक्षा कीजिये। जगन्नाथ ! सम्पूर्ण देवता मुर

नामक दानवसे भयभीत होकर आपकी शरणमें आये हैं।



भक्तवत्सल ! हमें बचाइये। देवदेवेश्वर ! हमें बचाइये। जनार्दन ! हमारी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। दानवोंका विनाश करनेवाले कमलनयन ! हमारी रक्षा कीजिये। प्रभो ! हम सब लोग आपके समीप आये हैं। आपकी ही शरणमें आ पड़े हैं। भगवन् ! शरणमें आये हुए देवताओंकी सहायता कीजिये। देव ! आप ही पति, आप ही मति, आप ही कर्ता और आप ही कारण हैं। आप ही सब लोगोंकी माता और आप ही इस जगत्के पिता हैं। भगवन् ! देवदेवेश्वर ! शरणागतवत्सल ! देवता भयभीत होकर आपकी शरणमें आये हैं। प्रभो ! अत्यन्त उग्र स्वभाववाले महाबली मुर नामक दैत्यने सम्पूर्ण देवताओंको जीतकर इन्हें स्वर्गसे निकाल दिया है।\*

\* ३० नमो देवदेवेश देवदानववन्दित। दैत्यरे पुण्डरीकाक्ष त्राहि नो मधुसूदन॥

सुरः सर्वे समायाता भयभीताश्च दानवात्। शरणं त्वां जगन्नाथ त्राहि नो भक्तवत्सल॥

त्राहि नो देवदेवेश त्राहि त्राहि जनार्दन। त्राहि वै पुण्डरीकाक्ष दानवानां विनाशक॥

त्वत्समीपं गताः सर्वे त्वामेव शरणं प्रभो। शरणागतदेवानां साहाय्यं कुरु वै प्रभो॥

त्वं पतिस्त्वं मतिदेव त्वं कर्ता त्वं च कारणम्। त्वं माता सर्वलोकानां त्वमेव जगतः पिता॥

भगवन् देवदेवेश शरणागतवत्सल। शरणं तव चायाता भयभीताश्च देवताः॥

देवता निर्जिताः सर्वाः स्वर्गश्रष्टाः कृता विभो। अत्युग्रेण हि दैत्येन मुरनामा महौजसो॥ (४०। ५७—६३)

इन्द्रकी बात सुनकर भगवान् विष्णु बोले—  
‘देवराज ! वह दानव कैसा है ? उसका रूप और बल  
कैसा है तथा उस दुष्टके रहनेका स्थान कहाँ है ?’

इन्द्र बोले—देवेश्वर ! पूर्वकालमें ब्रह्माजीके  
वंशमें तालजड़ नामक एक महान् असुर उत्पन्न हुआ था,  
जो अत्यन्त भयङ्कर था। उसका पुत्र मुर दानवके नामसे  
विख्यात हुआ। वह भी अत्यन्त उत्कट, महापराक्रमी  
और देवताओंके लिये भयङ्कर है। चन्द्रावती नामसे  
प्रसिद्ध एक नगरी है, उसीमें स्थान बनाकर वह निवास  
करता है। उस दैत्यने समस्त देवताओंको परास्त करके  
खर्गलोकसे बाहर कर दिया है। उसने एक दूसरे ही  
इन्द्रको खर्गके सिंहासनपर बैठाया है। अग्नि, चन्द्रमा,  
सूर्य, वायु तथा वरुण भी उसने दूसरे ही बनाये हैं।  
जनार्दन ! मैं सच्ची बात बता रहा हूँ। उसने सब कोई  
दूसरे ही कर लिये हैं। देवताओंको तो उसने प्रत्येक  
स्थानसे वञ्चित कर दिया है।

इन्द्रका कथन सुनकर भगवान् जनार्दनको बड़ा  
क्रोध हुआ। वे देवताओंको साथ लेकर चन्द्रावतीपुरीमें  
गये। देवताओंने देखा, दैत्यराज बारम्बार गर्जना कर रहा

है; उससे परास्त होकर सम्पूर्ण देवता दसों दिशाओंमें  
भाग गये। अब वह दानव भगवान् विष्णुको देखकर  
बोला, ‘खड़ा रह, खड़ा रह !’ उसकी ललकार सुनकर  
भगवान्के नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। वे बोले—‘अरे  
दुराचारी दानव ! मेरी इन भुजाओंको देख !’ यह कहकर  
श्रीविष्णुने अपने दिव्य बाणोंसे सामने आये हुए दुष्ट  
दानवोंको मारना आरम्भ किया। दानव भयसे विह्वल हो  
उठे। पाण्डुनन्दन ! तत्पश्चात् श्रीविष्णुने दैत्य-सेनापर  
चक्रका प्रहार किया। उससे छिन्न-भिन्न होकर सैकड़ों  
योद्धा मौतके मुखमें चले गये। इसके बाद भगवान्  
मधुसूदन बदरिकाश्रमको चले गये। वहाँ सिंहावती  
नामकी गुफा थी, जो बारह योजन लम्बी थी। पाण्डु-  
नन्दन ! उस गुफामें एक ही दरवाजा था। भगवान् विष्णु  
उसीमें सो रहे। दानव मुर भगवान्को मार डालनेके  
उद्योगमें लगा था। वह उनके पीछे लगा रहा। वहाँ  
पहुँचकर उसने भी उसी गुहामें प्रवेश किया। वहाँ  
भगवान्को सोते देख उसे बड़ा हर्ष हुआ। उसने सोचा,  
‘यह दानवोंको भय देनेवाला देवता है। अतः निस्सन्देह  
इसे मार डालूँगा।’ युधिष्ठिर ! दानवके इस प्रकार विचार



करते ही भगवान् विष्णुके शरीरसे एक कन्या प्रकट हुई, जो बड़ी ही रूपवती, सौभाग्यशालिनी तथा दिव्य अस्त्र-शङ्खोंसे युक्त थी। वह भगवान्के तेजके अंशसे उत्पन्न हुई थी। उसका बल और पराक्रम महान् था। युधिष्ठिर ! दानवराज मुरने उस कन्याको देखा। कन्याने युद्धका विचार करके दानवके साथ युद्धके लिये याचना की। युद्ध छिड़ गया। कन्या सब प्रकारकी युद्धकलामें निपुण थी ! वह मुर नामक महान् असुर उसके हुंकार-मात्रसे राखका ढेर हो गया। दानवके मारे जानेपर भगवान् जाग उठे। उन्होंने दानवको धरतीपर पड़ा देख, पूछा—‘मेरा यह शत्रु अत्यन्त उग्र और भयङ्कर था, किसने इसका वध किया है ?’

**कन्या बोली—स्वामिन् !** आपके ही प्रसादसे मैंने इस महादैत्यका वध किया है।

**श्रीभगवान्ने कहा—कल्याणी !** तुम्हारे इस कर्मसे तीनों लोकोंके मुनि और देवता आनन्दित हुए हैं ! अतः तुम्हारे मनमें जैसी रुचि हो, उसके अनुसार मुझसे कोई वर माँगो; देवदुर्लभ होनेपर भी वह वर मैं तुम्हें दूँगा, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

वह कन्या साक्षात् एकादशी ही थी। उसने कहा, ‘प्रभो ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मैं आपको कृपासे सब तीर्थोंमें प्रधान, समस्त विज्ञोंका नाश करनेवाली तथा सब प्रकारकी सिद्धि देनेवाली देवी होऊँ। जनार्दन ! जो लोग आपमें भक्ति रखते हुए मेरे दिनको उपवास करेंगे, उन्हें सब प्रकारकी सिद्धि प्राप्त हो। माधव ! जो लोग उपवास, नक्त अथवा एकभुक्त करके मेरे ब्रतका पालन करें, उन्हें आप धन, धर्म और मोक्ष प्रदान कीजिये।’

**श्रीविष्णु बोले—कल्याणी !** तुम जो कुछ कहती हो, वह सब पूर्ण होगा।

**भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—युधिष्ठिर !** ऐसा वर पाकर महाब्रता एकादशी बहुत प्रसन्न हुई। दोनों पक्षोंकी एकादशी समान रूपसे कल्याण करनेवाली है। इसमें शुक्ल और कृष्णका भेद नहीं करना चाहिये। यदि उदयकालमें थोड़ी-सी एकादशी, मध्यमें पूरी द्वादशी और अन्तमें किञ्चित् त्रयोदशी हो तो वह ‘त्रिस्पृशा’ एकादशी कहलाती है। वह भगवान्को बहुत ही प्रिय है। यदि एक त्रिस्पृशा एकादशीको उपवास कर लिया जाय तो एक सहस्र एकादशीव्रतोंका फल प्राप्त होता है तथा इसी प्रकार द्वादशीमें पारण करनेपर सहस्रगुना फल माना गया है। अष्टमी, एकादशी, षष्ठी, तृतीया और चतुर्दशी—ये यदि पूर्व तिथिसे विद्ध हों तो उनमें ब्रत नहीं करना चाहिये। परवर्तीनी तिथिसे युक्त होनेपर ही इनमें उपवासका विधान है। पहले दिन दिनमें और रातमें भी एकादशी हो तथा दूसरे दिन केवल प्रातःकाल एक दण्ड एकादशी रहे तो पहली तिथिका परित्याग करके दूसरे दिनकी द्वादशीयुक्त एकादशीको ही उपवास करना चाहिये। यह विधि मैंने दोनों पक्षोंकी एकादशीके लिये बतायी है। जो मनुष्य एकादशीको उपवास करता है, वह वैकुण्ठधाममें, जहाँ साक्षात् भगवान् गरुडध्वज विराजमान हैं, जाता है। जो मानव हर समय एकादशीके माहात्म्यका पाठ करता है, उसे सहस्र गोदानोंके पुण्यका फल प्राप्त होता है। जो दिन या रातमें भक्तिपूर्वक इस माहात्म्यका श्रवण करते हैं, वे निस्सन्देह ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। एकादशीके समान पापनाशक ब्रत दूसरा कोई नहीं है।



### मार्गशीर्ष शुक्लपक्षकी ‘मोक्षा’ एकादशीका माहात्म्य

युधिष्ठिर बोले—देवदेवेश ! मैं पूछता हूँ—मार्गशीर्ष मासके शुक्लपक्षमें जो एकादशी होती है, उसका क्या नाम है ? कौन-सी विधि है तथा उसमें किस देवताका पूजन किया जाता है ? स्वामिन् ! यह सब यथार्थरूपसे बताइये।

**श्रीकृष्णने कहा—नृपश्रेष्ठ !** मार्गशीर्ष मासके कृष्णपक्षमें ‘उत्पत्ति’ नामकी एकादशी होती है, जिसका वर्णन मैंने तुम्हारे समक्ष कर दिया है। अब शुक्लपक्षकी एकादशीका वर्णन करूँगा, जिसके श्रवणमात्रसे वाजपेय यज्ञका फल मिलता है। उसका नाम है—‘मोक्षा’

एकादशी, जो सब पापोंका अपहरण करनेवाली है। राजन् ! उस दिन यत्पूर्वक तुलसीकी मञ्जरी तथा धूप-दीपादिसे भगवान् दामोदरका पूजन करना चाहिये। पूर्वोक्त विधिसे ही दशमी और एकादशीके नियमका पालन करना उचित है। 'मोक्षा' एकादशी बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाली है। उस दिन रात्रिमें मेरी प्रसन्नताके लिये नृत्य, गीत और सुनिके द्वारा जागरण करना चाहिये। जिसके पितर पापवश नीच योनिमें पड़े हों, वे इसका पुण्य दान करनेसे मोक्षको प्राप्त होते हैं। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। पूर्वकालकी बात है, वैष्णवोंसे विभूषित परम रमणीय चम्पक नगरमें वैखानस नामक राजा रहते थे। वे अपनी प्रजाका पुत्रकी भाँति पालन करते थे। इस प्रकार राज्य करते हुए राजाने एक दिन रातको स्वप्नमें अपने पितरोंको नीच योनिमें पड़ा हुआ देखा। उन सबको इस अवस्थामें देखकर राजाके मनमें बड़ा विस्मय हुआ और प्रातःकाल ब्राह्मणोंसे उन्होंने उस स्वप्नका सारा हाल कह सुनाया।

**राजा बोले—ब्राह्मणो !** मैंने अपने पितरोंको नरकमें गिरा देखा है। वे बारम्बार रोते हुए मुझसे यों कह रहे थे कि 'तुम हमारे तनुज हो, इसलिये इस नरक-समुद्रसे हमलोगोंका उद्धार करो।' द्विजवरो ! इस रूपमें मुझे पितरोंके दर्शन हुए हैं। इससे मुझे चैन नहीं मिलता। क्या करूँ, कहाँ जाऊँ ? मेरा हृदय रुँधा जा रहा है। द्विजोत्तमो ! वह व्रत, वह तप और वह योग, जिससे मेरे पूर्वज तत्काल नरकसे छुटकारा पा जायें, बतानेकी कृपा करें। मुझ बलवान् एवं साहसी पुत्रके जीते-जी मेरे माता-पिता घोर नरकमें पड़े हुए हैं। अतः ऐसे पुत्रसे क्या लाभ है।

**ब्राह्मण बोले—राजन् !** यहाँसे निकट ही पर्वत मुनिका महान् आश्रम है। वे भूत और भविष्यके भी जाता हैं। नृपश्रेष्ठ ! आप उन्हींके पास चले जाइये।

ब्राह्मणोंकी बात सुनकर महाराज वैखानस शीघ्र ही पर्वत मुनिके आश्रमपर गये और वहाँ उन मुनिश्रेष्ठको देखकर उन्होंने दण्डवत्-प्रणाम करके मुनिके चरणोंका स्पर्श किया। मुनिने भी राजासे राज्यके सातों<sup>१</sup> अङ्गोंकी कुशल पूछी।

**राजा बोले—स्वामिन् !** आपकी कृपासे मेरे राज्यके सातों अङ्ग स्कुशल हैं। किन्तु मैंने स्वप्नमें देखा है कि मेरे पितर नरकमें पड़े हैं; अतः बताइये किस पुण्यके प्रभावसे उनका वहाँसे छुटकारा होगा ?

राजाकी यह बात सुनकर मुनिश्रेष्ठ पर्वत एक मुहूर्ततक ध्यानस्थ रहे। इसके बाद वे राजासे बोले— 'महाराज ! मार्गशीर्ष मासके शुक्रपक्षमें जो 'मोक्षा' नामकी एकादशी होती है, तुम सब लोग उसका व्रत करो और उसका पुण्य पितरोंको दे डालो। उस पुण्यके प्रभावसे उनका नरकसे उद्धार हो जायगा।'

**भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—युधिष्ठिर !** मुनिकी यह बात सुनकर राजा पुनः अपने घर लौट आये। जब उत्तम मार्गशीर्ष मास आया, तब राजा वैखानसने मुनिके कथनानुसार 'मोक्षा' एकादशीका व्रत करके उसका पुण्य समस्त पितरोंसहित पिताको दे दिया। पुण्य देते ही क्षणभरमें आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी। वैखानसके पिता पितरोंसहित नरकसे छुटकारा पा गये और आकाशमें आकर राजाके प्रति यह पवित्र वचन बोले—'बेटा ! तुम्हारा कल्याण हो।' यह कहकर वे स्वर्गमें चले गये। राजन् ! जो इस प्रकार कल्याणमयी 'मोक्षा' एकादशीका व्रत करता है, उसके पाप नष्ट हो जाते हैं और मरनेके बाद वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है। यह मोक्ष देनेवाली 'मोक्षा' एकादशी मनुष्योंके लिये चिन्तामणिके समान समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली है। इस माहात्म्यके पढ़ने और सुननेसे वाजपेय यज्ञका फल मिलता है।



१. राजा, मन्त्री, राष्ट्र, किला, खजाना, सेना और मित्रवर्ग—ये ही परस्पर उपकार करनेवाले राज्यके सात अङ्ग हैं।

## पौष मासकी 'सफला' और 'पुत्रदा' नामक एकादशीका माहात्म्य

युधिष्ठिरने पूछा—स्वामिन्! पौष मासके कृष्णपक्षमें जो एकादशी होती है, उसका क्या नाम है? उसकी क्या विधि है तथा उसमें किस देवताकी पूजा की जाती है? यह बताइये।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजेन्द्र! बतलाता हूँ सुनो; बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले यज्ञोंसे भी मुझे उतना संतोष नहीं होता, जितना एकादशी-ब्रतके अनुष्ठानसे होता है। इसलिये सर्वथा प्रयत्न करके एकादशीकां ब्रत करना चाहिये। पौष मासके कृष्णपक्षमें 'सफला' नामकी एकादशी होती है। उस दिन पूर्वोक्त विधानसे ही विधिपूर्वक भगवान् नारायणकी पूजा करनी चाहिये। एकादशी कल्याण करनेवाली है। अतः इसका ब्रत अवश्य करना उचित है। जैसे नागोंमें शेषनाग, पक्षियोंमें गरुड़, देवताओंमें श्रीविष्णु तथा मनुष्योंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण ब्रतोंमें एकादशी तिथि श्रेष्ठ है। राजन्! 'सफला' एकादशीको नाम-मन्त्रोंका उच्चारण करके फलोंके द्वारा श्रीहरिका पूजन करे। नारियलके फल, सुपारी, बिजौरा नीबू, जमीरा नीबू, अनार, सुन्दर आँवला, लौंग, बेर तथा विशेषतः आमके फलोंसे देवदेवेश्वर श्रीहरिकी पूजा करनी चाहिये। इसी प्रकार धूप-दीपसे भी भगवान्की अर्चना करे। 'सफला' एकादशीको विशेषरूपसे दीप-दान करनेका विधान है। रातको वैष्णव पुरुषोंके साथ जागरण करना चाहिये। जागरण करनेवालेको जिस फलकी प्राप्ति होती है, वह हजारों वर्ष तपस्या करनेसे भी नहीं मिलता।

नृपश्रेष्ठ! अब 'सफला' एकादशीकी शुभकारिणी कथा सुनो। चम्पावती नामसे विश्वात एक पुरी है, जो कभी राजा माहिष्मतकी राजधानी थी। राजर्षि माहिष्मतके पाँच पुत्र थे। उनमें जो ज्येष्ठ था, वह सदा पापकर्ममें ही लगा रहता था। परस्तीगामी और वैश्यासक्त था। उसने पिताके धनको पापकर्ममें ही खर्च किया। वह सदा दुराचारपरायण तथा ब्राह्मणोंका निन्दक था। वैष्णवों और देवताओंकी भी हमेशा निन्दा किया

करता था। अपने पुत्रको ऐसा पापाचारी देखकर राजा माहिष्मतने राजकुमारोंमें उसका नाम लुभ्यक रख दिया। फिर पिता और भाइयोंने मिलकर उसे राज्यसे बाहर निकाल दिया। लुभ्यक उस नगरसे निकलकर गहन वनमें चला गया। वहीं रहकर उस पापीने प्रायः सम्पूर्वे नगरका धन लूट लिया। एक दिन जब वह चोरी करनेके लिये नगरमें आया तो रातमें पहरा देनेवाले सिपाहियोंने उसे पकड़ लिया। किन्तु जब उसने अपनेको राजा माहिष्मतका पुत्र बतलाया तो सिपाहियोंने उसे छोड़ दिया। फिर वह पापी वनमें लौट आया और प्रतिदिन मांस तथा वृक्षोंके फल खाकर जीवन-निर्वाह करने लगा। उस दुष्टका विश्राम-स्थान पीपल वृक्षके निकट था। वहाँ बहुत वर्षोंका पुराना पीपलका वृक्ष था। उस वनमें वह वृक्ष एक महान् देवता माना जाता था। पापबुद्धि लुभ्यक वहीं निवास करता था।

बहुत दिनोंके पश्चात् एक दिन किसी संचित पुण्यके प्रभावसे उसके द्वारा एकादशीके ब्रतका पालन हो गया। पौष मासमें कृष्णपक्षकी दशमीके दिन पापिष्ठ लुभ्यकने वृक्षोंके फल खाये और वस्त्रहीन होनेके कारण रातभर जाड़ेका कष्ट भोगा। उस समय न तो उसे नींद आयी और न आराम ही मिला। वह निष्पाण-सा हो रहा था। सूर्योदय होनेपर भी उस पापीको होश नहीं हुआ। 'सफला' एकादशीके दिन भी लुभ्यक बेहोश पड़ा रहा। दोपहर होनेपर उसे चेतना प्राप्त हुई। फिर इधर-उधर दृष्टि डालकर वह आसनसे उठा और लँगड़ेकी भाँति पैरोंसे बार-बार लँगड़ाता हुआ वनके भीतर गया। वह भूखसे दुर्बल और पीड़ित हो रहा था। राजन्! उस समय लुभ्यक बहुत-से फल लेकर ज्यों ही विश्राम-स्थानपर लौटा, ज्यों ही सूर्योदेव अस्त हो गये। तब उसने वृक्षकी जड़में बहुत-से फल निवेदन करते हुए कहा—'इन फलोंसे लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु संतुष्ट हों।' यो कहकर लुभ्यकने रातभर नींद नहीं ली। इस प्रकार अनायास ही उसने इस ब्रतका पालन कर लिया। उस

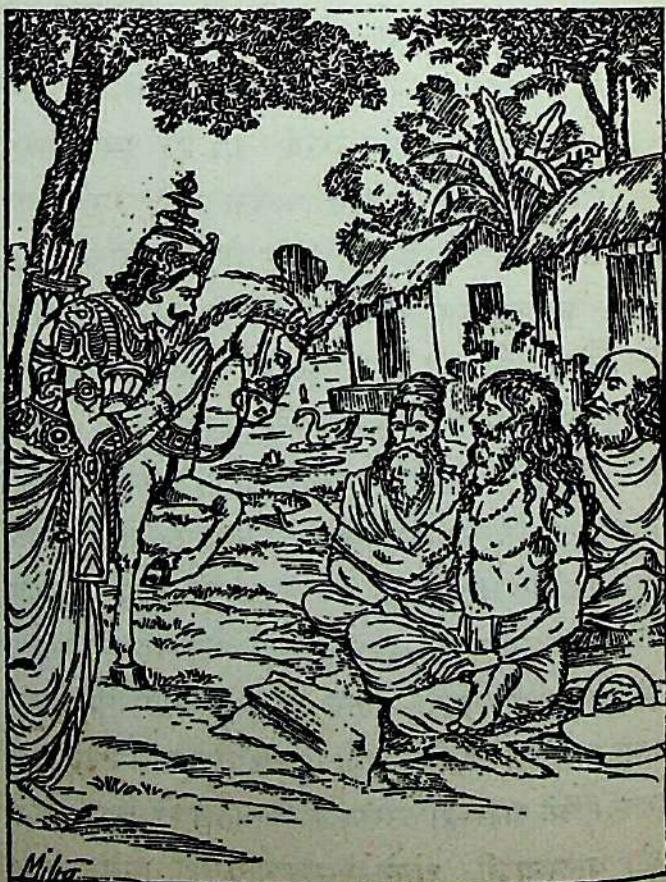
समय सहसा आकाशवाणी हुई—‘राजकुमार ! तुम ‘सफला’ एकादशीके प्रसादसे राज्य और पुत्र प्राप्त करोगे ।’ ‘बहुत अच्छा’ कहकर उसने वह वरदान स्वीकार किया । इसके बाद उसका रूप दिव्य हो गया । तबसे उसकी उत्तम बुद्धि भगवान् विष्णुके भजनमें लग गयी । दिव्य आभूषणोंकी शोभासे सम्पन्न होकर उसने अकण्टक राज्य प्राप्त किया और पंद्रह वर्षोंतक वह उसका संचालन करता रहा । उस समय भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे उसके मनोज्ञ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । जब वह बड़ा हुआ, तब लुभकने तुरंत ही राज्यकी ममता छोड़कर उसे पुत्रको सौंप दिया और वह भगवान् श्रीकृष्णके समीप चला गया, जहाँ जाकर मनुष्य कभी शोकमें नहीं पड़ता । राजन् ! इस प्रकार जो ‘सफला’ एकादशीका उत्तम ब्रत करता है, वह इस लोकमें सुख भोगकर मरनेके पश्चात् मोक्षको प्राप्त होता है । संसारमें वे मनुष्य धन्य हैं, जो ‘सफला’ एकादशीके ब्रतमें लगे रहते हैं । उन्हींका जन्म सफल है । महाराज ! इसकी महिमाको पढ़ने, सुनने तथा उसके अनुसार आचरण करनेसे मनुष्य राजसूय यज्ञका फल पाता है ।

**युधिष्ठिर बोले**—श्रीकृष्ण ! आपने शुभकारिणी ‘सफला’ एकादशीका वर्णन किया । अब कृपा करके शुल्पक्षकी एकादशीका महत्व बतलाइये । उसका क्या नाम है ? कौन-सी विधि है ? तथा उसमें किस देवताका पूजन किया जाता है ?

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा**—राजन् ! पौषके शुल्पक्षकी जो एकादशी है, उसे बतलाता हूँ सुनो । महाराज ! संसारके हितकी इच्छासे मैं इसका वर्णन करता हूँ । राजन् ! पूर्वोक्त विधिसे ही यत्पूर्वक इसका ब्रत करना चाहिये । इसका नाम ‘पुत्रदा’ है । यह सब पापोंको हरनेवाली उत्तम तिथि है । समस्त कामनाओं तथा सिद्धियोंके दाता भगवान् नारायण इस तिथिके अधिदेवता है । चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिलोकीमें इससे बढ़कर दूसरी कोई तिथि नहीं है । पूर्वकालकी बात है, भद्रावती पुरीमें राजा सुकेतुमान् राज्य करते थे । उनकी रानीका नाम चम्पा था । राजाको बहुत समयतक

कोई वंशधर पुत्र नहीं प्राप्त हुआ । इसलिये दोनों पति-पत्नी सदा चिन्ता और शोकमें डूबे रहते थे । राजाके पितर उनके दिये हुए जलको शोकोच्छ्वाससे गरम करके पीते थे । ‘राजाके बाद और कोई ऐसा’ नहीं दिखायी देता, जो हमलोगोंका तर्पण करेगा’ यह सोच-सोचकर पितर दुःखी रहते थे ।

एक दिन राजा घोड़ेपर सवार हो गहन बनमें चले गये । पुरोहित आदि किसीको भी इस बातका पता न था । मृग और पक्षियोंसे सेवित उस सघन काननमें राजा भ्रमण करने लगे । मार्गमें कहीं सियारकी बोली सुनायी पड़ती थी तो कहीं उल्लुओंकी । जहाँ-तहाँ रीछ और मृग दृष्टिगोचर हो रहे थे । इस प्रकार घूम-घूमकर राजा बनकी शोभा देख रहे थे, इतनेमें दोपहर हो गया । राजाको भूख और प्यास सताने लगी । वे जलकी खोजमें इधर-उधर दौड़ने लगे । किसी पुण्यके प्रभावसे उन्हें एक उत्तम सरोवर दिखायी दिया, जिसके समीप मुनियोंके बहुत-से आश्रम थे । शोभाशाली नरेशने उन आश्रमोंकी ओर देखा । उस समय शुभकी सूचना देनेवाले शकुन होने लगे । राजाका दाहिना नेत्र और दाहिना हाथ



फड़कने लगा, जो उत्तम फलकी सूचना दे रहा था। सरोवरके तटपर बहुत-से मुनि वेद-पाठ कर रहे थे। उन्हें देखकर राजाको बड़ा हर्ष हुआ। वे घोड़ेसे उतरकर मुनियोंके सामने खड़े हो गये और पृथक्-पृथक् उन सबकी वन्दना करने लगे। वे मुनि उत्तम व्रतका पालन करनेवाले थे। जब राजाने हाथ जोड़कर बारम्बार दण्डवत् किया, तब मुनि बोले—‘राजन्! हमलोग तुमपर प्रसन्न हैं।’

**राजा बोले**—आपलोग कौन हैं? आपके नाम वाया हैं तथा आपलोग किसलिये यहाँ एकत्रित हुए हैं? यह सब सच-सच बताइये।

**मुनि बोले**—राजन्! हमलोग विश्वेदेव हैं, यहाँ स्नानके लिये आये हैं। माघ निकट आया है। आजसे पाँचवें दिन माघका स्नान आरम्भ हो जायगा। आज ही ‘पुत्रदा’ नामकी एकादशी है, जो व्रत करनेवाले मनुष्योंको पुत्र देती है।

**राजाने कहा**—विश्वेदेवगण! यदि आपलोग प्रसन्न हैं तो मुझे पुत्र दीजिये।

**मुनि बोले**—राजन्! आजके ही दिन ‘पुत्रदा’ नामकी एकादशी है। इसका व्रत बहुत विश्वात है। तुम आज इस उत्तम व्रतका पालन करो। महाराज! भगवान् केशवके प्रसादसे तुम्हें अवश्य पुत्र प्राप्त होगा।

**भगवान् श्रीकृष्ण** कहते हैं—युधिष्ठिर! इस प्रकार उन मुनियोंके कहनेसे राजाने उत्तम व्रतका पालन किया। महर्षियोंके उपदेशके अनुसार विधिपूर्वक पुत्रदा एकादशीका अनुष्ठान किया। फिर द्वादशीको पारण करके मुनियोंके चरणोंमें बारम्बार मस्तक झुकाकर राजा अपने घर आये। तदनन्तर रानीने गर्भ धारण किया। प्रसवकाल आनेपर पुण्यकर्मा राजाको तेजस्वी पुत्र प्राप्त हुआ, जिसने अपने गुणोंसे पिताको संतुष्ट कर दिया। वह प्रजाओंका पालक हुआ। इसलिये राजन्! ‘पुत्रदा’का उत्तम व्रत अवश्य करना चाहिये। मैंने लोगोंके हितके लिये तुम्हारे सामने इसका वर्णन किया है। जो मनुष्य एकाग्रचित्त होकर ‘पुत्रदा’का व्रत करते हैं, वे इस लोकमें पुत्र पाकर मृत्युके पश्चात् स्वर्गगामी होते हैं। इस माहात्म्यको पढ़ने और सुननेसे अग्रिष्टोम यज्ञका फल मिलता है।



## माघ मासकी ‘षट्टिला’ और ‘जया’ एकादशीका माहात्म्य

**युधिष्ठिरने पूछा**—जगन्नाथ! श्रीकृष्ण! आदिदेव! जगत्पते! माघ मासके कृष्ण पक्षमें कौन-सी एकादशी होती है? उसके लिये कैसी विधि है? तथा उसका फल क्या है? महाप्राज्ञ! कृपा करके ये सब बातें बताइये।

**श्रीभगवान् बोले**—नृपश्रेष्ठ! सुनो, माघ मासके कृष्ण पक्षकी जो एकादशी है, वह ‘षट्टिला’के नामसे विश्वात है, जो सब पापोंका नाश करनेवाली है। अब तुम ‘षट्टिला’की पापहारिणी कथा सुनो, जिसे मुनिश्रेष्ठ पुलस्त्यने दाल्ख्यसे कहा था।

**दाल्ख्यने पूछा**—ब्रह्मन्! मृत्युलोकमें आये हुए प्राणी प्रायः पापकर्म करते हैं। उन्हें नरकमें न जाना पड़े, इसके लिये कौन-सा उपाय है? बतानेकी कृपा करें।

**पुलस्त्यजी बोले**—महाभाग! तुमने बहुत

अच्छी बात पूछी है, बतलाता हूँ; सुनो। माघ मास आनेपर मनुष्यको चाहिये कि वह नहा-धोकर पवित्र हो इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए काम, क्रोध, अहंकार, लोभ और चुगली आदि बुराइयोंको त्याग दे। देवाधिदेव! भगवान्का स्मरण करके जलसे पैर धोकर भूमिपर पड़े हुए गोबरका संग्रह करे। उसमें तिल और कपास छोड़कर एक सौ आठ पिंडिकाएँ बनाये। फिर माघमें जब आर्द्धा या मूल नक्षत्र आये, तब कृष्ण पक्षव एकादशी करनेके लिये नियम ग्रहण करे। भलीभाँ स्नान करके पवित्र हो शुद्धभावसे देवाधिदेव श्रीविष्णुव पूजा करे। कोई भूल हो जानेपर श्रीकृष्णका नामोच्चार करे। रातको जागरण और होम करे। चन्दन, अरण्यकपूर, नैवेद्य आदि सामग्रीसे शङ्ख, चक्र और गदा धा करनेवाले देवदेवेश्वर श्रीहरिकी पूजा करे। तत्पश्च

भगवान्‌का स्मरण करके बारम्बार श्रीकृष्णनामका उच्चारण करते हुए कुम्हड़े, नारियल अथवा बिजौरेके फलसे भगवान्‌को विधिपूर्वक पूजकर अर्घ्य दे। अन्य सब सामग्रियोंके अभावमें सौ सुपारियोंके द्वारा भी पूजन और अर्घ्यदान किये जा सकते हैं। अर्घ्यका मन्त्र इस प्रकार है—

कृष्ण कृष्ण कृपालुस्त्वमगतीनां गतिर्थव ।  
संसारार्णवमग्नानां प्रसीद पुरुषोत्तम ॥  
नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन ।  
सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु महापुरुष पूर्वज ॥  
गृहणार्थ्य मया दत्तं लक्ष्म्या सह जगत्पते ।

(४४। १८—२०)

'सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण ! आप बड़े दयालु हैं। हम आश्रयहीन जीवोंके आप आश्रयदाता होइये। पुरुषोत्तम ! हम संसार-समुद्रमें ढूब रहे हैं, आप हमपर प्रसन्न होइये। कमलनयन ! आपको नमस्कार है, विश्वभावन ! आपको नमस्कार है। सुब्रह्मण्य ! महापुरुष ! सबके पूर्वज ! आपको नमस्कार है। जगत्पते ! आप लक्ष्मीजीके साथ मेरा दिया हुआ अर्घ्य स्वीकार करें।'

तत्पश्चात् ब्राह्मणकी पूजा करे। उसे जलका घड़ा दान करे। साथ ही छाता, जूता और वस्त्र भी दे। दान करते समय ऐसा कहे—'इस दानके द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण मुझपर प्रसन्न हों।' अपनी शक्तिके अनुसार श्रेष्ठ ब्राह्मणको काली गौ दान करे। द्विजश्रेष्ठ ! विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह तिलसे भरा हुआ पात्र भी दान करे। उन तिलोंके बोनेपर उनसे जितनी शाखाएँ पैदा हो सकती हैं, उतने हजार वर्षोंतक वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तिलसे स्नान करे, तिलका उबटन लगाये, तिलसे होम करे; तिल मिलाया हुआ जल पिये, तिलका दान करे और तिलको भोजनके काममें ले। इस प्रकार छः कामोंमें तिलका उपयोग करनेसे यह एकादशी 'षट्टतिला' कहलाती है, जो सब पापोंका नाश करनेवाली है।\*

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! आपने माघ मासके कृष्ण पक्षकी 'षट्टतिला' एकादशीका वर्णन किया। अब कृपा करके यह बताइये कि शुक्ल पक्षमें कौन-सी एकादशी होती है ? उसकी विधि क्या है ? तथा उसमें किस देवताका पूजन किया जाता है ?

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजेन्द्र ! बतलाता हूँ सुनो। माघ मासके शुक्ल पक्षमें जो एकादशी होती है, उसका नाम 'जया' है। वह सब पापोंको हरनेवाली उत्तम तिथि है। पवित्र होनेके साथ ही पापोंका नाश करनेवाली है तथा मनुष्योंको भोग और मोक्ष प्रदान करती है। इतना ही नहीं, वह ब्रह्महत्या-जैसे पाप तथा पिशाचत्वका भी विनाश करनेवाली है। इसका व्रत करनेपर मनुष्योंको कभी प्रेतयोनिमें नहीं जाना पड़ता। इसलिये राजन् ! प्रयत्नपूर्वक 'जया' नामकी एकादशीका व्रत करना चाहिये।

एक समयकी बात है, स्वर्गलोकमें देवराज इन्द्र राज्य करते थे। देवगण पारिजात वृक्षोंसे भरे हुए नन्दनवनमें अप्सराओंके साथ विहार कर रहे थे। पचास करोड़ गन्धवेंकि नायक देवराज इन्द्रने स्वेच्छानुसार वनमें विहार करते हुए बड़े हर्षके साथ नृत्यका आयोजन किया। उसमें गन्धर्व गान कर रहे थे, जिनमें पुष्पदन्त, चित्रसेन तथा उसका पुत्र—ये तीन प्रधान थे। चित्रसेनकी रुक्षीका नाम मालिनी था। मालिनीसे एक कन्या उत्पन्न हुई थी, जो पुष्पवन्तीके नामसे विख्यात थी। पुष्पदन्त गन्धर्वके एक पुत्र था, जिसको लोग माल्यवान् कहते थे। माल्यवान् पुष्पवन्तीके रूपपर अत्यन्त मोहित था। ये दोनों भी इन्द्रके संतोषार्थ नृत्य करनेके लिये आये थे। इन दोनोंका गान हो रहा था, इनके साथ अप्सराएँ भी थीं। परस्पर अनुरागके कारण ये दोनों मोहके वशीभूत हो गये। चित्रमें भ्रान्ति आ गयी। इसलिये वे शुद्ध गान न गा सके। कभी ताल भंग हो जाता और कभी गीत बंद हो जाता था। इन्द्रने इस प्रमादपर विचार किया और इसमें अपना अपमान

\* तिलसायी तिलोद्वारी तिलहोमी तिलोदकी। तिलदाता च भोक्ता च षट्टतिला पापनाशिनी ॥ (४४। २४)

समझकर वे कृपित हो गये। अतः इन दोनोंको शाप देते हुए बोले—‘ओ मूर्खों ! तुम दोनोंको धिक्कार है ! तुमलोग पतित और मेरी आज्ञा भंग करनेवाले हो; अतः पति-पत्नीके रूपमें रहते हुए पिशाच हो जाओ।’

इन्द्रके इस प्रकार शाप देनेपर इन दोनोंके मनमें बड़ा दुःख हुआ। वे हिमालय पर्वतपर चले गये और पिशाच-योनिको पाकर भयङ्कर दुःख भोगने लगे। शारीरिक पातकसे उत्पन्न तापसे पीड़ित होकर दोनों ही पर्वतकी कन्दराओंमें विचरते रहते थे। एक दिन पिशाचने अपनी पत्नी पिशाचीसे कहा—‘हमने कौन-सा पाप किया है, जिससे यह पिशाच-योनि प्राप्त हुई है ? नरकका कष्ट अत्यन्त भयङ्कर है तथा पिशाचयोनि भी बहुत दुःख देनेवाली है। अतः पूर्ण प्रयत्न करके पापसे बचना चाहिये।’

इस प्रकार चिन्तामग्र होकर वे दोनों दुःखके कारण सूखते जा रहे थे। दैवयोगसे उन्हें माघ मासकी एकादशी तिथि प्राप्त हो गयी। ‘जया’ नामसे विख्यात तिथि, जो सब तिथियोंमें उत्तम है, आयी। उस दिन उन दोनोंने सब प्रकारके आहार त्याग दिये। जलपानतक नहीं किया। किसी जीवकी हिंसा नहीं की, यहाँतक कि फल भी नहीं खाया। निरन्तर दुःखसे युक्त होकर वे एक पीपलके समीप बैठे रहे। सूर्यास्त हो गया। उनके प्राण लेनेवाली भयङ्कर रात उपस्थित हुई। उन्हें नींद नहीं आयी। वे रति या और कोई सुख भी नहीं पा सके। सूर्योदय हुआ। द्वादशीका दिन आया। उन पिशाचोंके द्वारा ‘जया’के उत्तम व्रतका पालन हो गया। उन्होंने रातमें जागरण भी

किया था। उस व्रतके प्रभावसे तथा भगवान् विष्णुकी शक्तिसे उन दोनोंकी पिशाचता दूर हो गयी। पुष्पवन्ती और माल्यवान् अपने पूर्वरूपमें आ गये। उनके हृदयमें वही पुराना स्नेह उमड़ रहा था। उनके शारीरपर पहले ही-जैसे अलङ्कार शोभा पा रहे थे। वे दोनों मनोहर रूप धारण करके विमानपर बैठे और स्वर्गलोकमें चले गये। वहाँ देवराज इन्द्रके सामने जाकर दोनोंने बड़ी प्रसन्नताके साथ उन्हें प्रणाम किया। उन्हें इस रूपमें उपस्थित देखकर इन्द्रको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने पूछा—‘बताओ, किस पुण्यके प्रभावसे तुम दोनोंका पिशाचत्व दूर हुआ है। तुम मेरे शापको प्राप्त हो चुके थे, फिर किस देवताने तुम्हें उससे छुटकारा दिलाया है ?’

**माल्यवान् बोला—स्वामिन् ! भगवान्**  
वासुदेवकी कृपा तथा ‘जया’ नामक एकादशीके व्रतसे हमारी पिशाचता दूर हुई है।

इन्द्रने कहा—तो अब तुम दोनों मेरे कहनेसे सुधारान करो। जो लोग एकादशीके व्रतमें तत्पर और भगवान् श्रीकृष्णके शरणागत होते हैं, वे हमारे भी पूजनीय हैं।

**भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन् !** इस कारण एकादशीका व्रत करना चाहिये। नृपश्रेष्ठ ! ‘जया’ ब्रह्माहत्याका पाप भी दूर करनेवाली है। जिसने ‘जया’ का व्रत किया है, उसने सब प्रकारके दान दे दिये और सम्पूर्ण यज्ञोंका अनुष्ठान कर लिया। इस माहात्म्यके पढ़ने और सुननेसे अग्रिष्ठोम यज्ञका फल मिलता है।



## फाल्गुन मासकी ‘विजया’ तथा ‘आमलकी’ एकादशीका माहात्म्य

युधिष्ठिरने पूछा—वासुदेव ! फाल्गुनके कृष्णपक्षमें किस नामकी एकादशी होती है ? कृपा करके बताइये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर ! एक बार नारदजीने कमलके आसनपर विराजमान होनेवाले ब्रह्माजीसे प्रश्न किया—‘सुरश्रेष्ठ ! फाल्गुनके कृष्णपक्षमें जो ‘विजया’ नामकी एकादशी होती है,

कृपया उसके पुण्यका वर्णन कीजिये।’

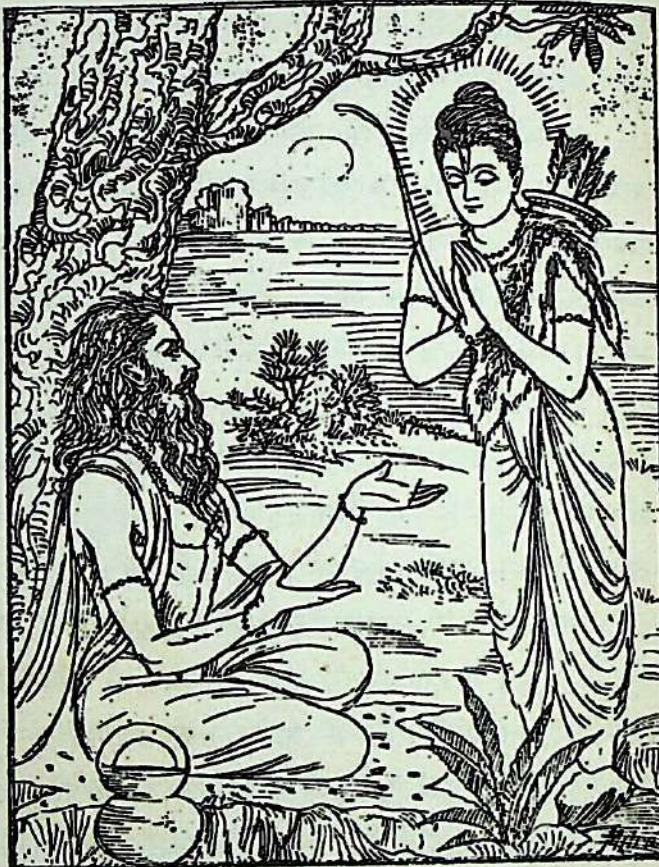
ब्रह्माजीने कहा—नारद ! सुनो—‘मैं एक उत्तर कथा सुनाता हूँ, जो पापोंका अपहरण करनेवाली है। यह व्रत बहुत ही प्राचीन, पवित्र और पापनाशक है। यह ‘विजया’ नामकी एकादशी राजाओंको विजय प्रदान करती है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। पूर्वकाल बात है, भगवान् श्रीरामचन्द्रजी चौदह वर्षोंके लिये वा-

गये और वहाँ पञ्चवटीमें सीता तथा लक्ष्मणके साथ रहने लगे। वहाँ रहते समय रावणने चपलतावश विजयात्मा श्रीरामकी तपस्विनी पत्नी सीताको हर लिया। उस दुःखसे श्रीराम व्याकुल हो उठे। उस समय सीताकी खोज करते हुए वे वनमें धूमने लगे। कुछ दूर जानेपर उन्हें जटायु मिले, जिनकी आयु समाप्त हो चुकी थी। इसके बाद उन्होंने वनके भीतर कबन्ध नामक राक्षसका वध किया। फिर सुग्रीवके साथ उनकी मित्रता हुई। तत्पश्चात् श्रीरामके लिये वानरोंकी सेना एकत्रित हुई। हनुमान्जीने लङ्घके उद्यानमें जाकर सीताजीका दर्शन किया और उन्हें श्रीरामकी चिह्नस्वरूप मुद्रिका प्रदान की। यह उन्होंने महान् पुरुषार्थका काम किया था। वहाँसे लौटकर वे श्रीरामचन्द्रजीसे मिले और लङ्घका सांग समाचार उनसे निवेदन किया। हनुमान्जीकी बात सुनकर श्रीरामने सुग्रीवकी अनुमति ले लङ्घको प्रस्थान करनेका विचार किया और समुद्रके किनारे पहुँचकर उन्होंने लक्ष्मणसे कहा—‘सुमित्रानन्दन ! किस पुण्यसे इस समुद्रको पार किया जा सकता है ? यह अत्यन्त अगाध और भयङ्कर जलजन्तुओंसे भरा हुआ है। मुझे ऐसा कोई उपाय नहीं दिखायी देता, जिससे इसको सुगमतासे पार किया जा सके।’

**लक्ष्मण बोले**—महाराज ! आप ही आदिदेव और पुराणपुरुष पुरुषोत्तम हैं। आपसे क्या छिपा है ? यहाँ द्वीपके भीतर बकदाल्भ्य नामक मुनि रहते हैं। यहाँसे आधे योजनकी दूरीपर उनका आश्रम है। रघुनन्दन ! उन प्राचीन मुनीश्वरके पास जाकर उन्होंसे इसका उपाय पूछिये।

लक्ष्मणकी यह अत्यन्त सुन्दर बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजी महामुनि बकदाल्भ्यसे मिलनेके लिये गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने मस्तक झुकाकर मुनिको प्रणाम किया। मुनि उनको देखते ही पहचान गये कि ये पुराणपुरुषोत्तम श्रीराम हैं, जो किसी कारणवश मानवशारीरमें अवतीर्ण हुए हैं। उनके आनेसे महर्षिको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने पूछा—‘श्रीराम ! आपका कैसे यहाँ आगमन हुआ ?’

श्रीराम बोले—ब्रह्मन् ! आपकी कृपासे राक्षसोंसहित लङ्घको जीतनेके लिये सेनाके साथ



समुद्रके किनारे आया हूँ। मुने ! अब जिस प्रकार समुद्र पार किया जा सके, वह उपाय बताइये। मुझपर कृपा कीजिये।

**बकदाल्भ्यने कहा**—श्रीराम ! फाल्गुनके कृष्णपक्षमें जो ‘विजया’ नामकी एकादशी होती है, उसका व्रत करनेसे आपकी विजय होगी। निश्चय ही आप अपनी वानस्सेनाके साथ समुद्रको पार कर लेंगे। राजन् ! अब इस व्रतकी फलदायक विधि सुनिये। दशमीका दिन आनेपर एक कलश स्थापित करे। वह सोने, चाँदी, ताँबे अथवा मिट्टीका भी हो सकता है। उस कलशको जलसे भरकर उसमें पल्लव डाल दे। उसके ऊपर भगवान् नारायणके सुवर्णमय विग्रहकी स्थापना करे। फिर एकादशीके दिन प्रातःकाल स्नान करे। कलशको पुनः स्थिरतापूर्वक स्थापित करे। माला, चन्दन, सुपारी तथा नारियल आदिके द्वारा विशेषरूपसे उसका पूजन करे। कलशके ऊपर सप्तधन्य और जौ रखे। गन्ध, धूप, दीप और भाँति-भाँतिके नैवेद्यसे पूजन

करे। कलशके सामने बैठकर वह सारा दिन उत्तम कथा-वार्ता आदिके द्वारा व्यतीत करे तथा रातमें भी वहाँ जागरण करे। अखण्ड व्रतकी सिद्धिके लिये घोका दीपकं जलाये। फिर द्वादशीके दिन सूर्योदय होनेपर उस कलशको किसी जलाशयके समीप—नदी, झरने या पोखरेके तटपर ले जाकर स्थापित करे और उसकी विधिवत् पूजा करके देव-प्रतिमासहित उस कलशको वेदवेत्ता ब्राह्मणके लिये दान कर दे। महाराज ! कलशके साथ ही और भी बड़े-बड़े दान देने चाहिये। श्रीराम ! आप अपने यूथपतियोंके साथ इसी विधिसे प्रयत्नपूर्वक 'विजया'का व्रत कीजिये। इससे आपकी विजय होगी।

**ब्रह्माजी कहते हैं—नारद !** यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने मुनिके कथनानुसार उस समय 'विजया' एकादशीका व्रत किया। उस व्रतके करनेसे श्रीरामचन्द्रजी विजयी हुए। उन्होंने संग्राममें रावणको मारा, लङ्घापर विजय पायी और सीताको प्राप्त किया। बेटा ! जो मनुष्य इस विधिसे व्रत करते हैं, उन्हें इस लोकमें विजय प्राप्त होती है और उनका परलोक भी अक्षय बना रहता है।

**भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—युधिष्ठिर !** इस कारण 'विजया'का व्रत करना चाहिये। इस प्रसङ्गको पढ़ने और सुननेसे वाजपेय यज्ञका फल मिलता है।

**युधिष्ठिरने कहा—श्रीकृष्ण !** मैंने विजया एकादशीका माहात्म्य, जो महान् फल देनेवाला है, सुन लिया। अब फाल्गुन शुक्लपक्षकी एकादशीका नाम और माहात्म्य बतानेकी कृपा कीजिये।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाभाग धर्मनन्दन !** सुनो—तुम्हें इस समय वह प्रसङ्ग सुनाता हूँ, जिसे राजा मान्धाताके पूछनेपर महात्मा वसिष्ठने कहा था। फाल्गुन शुक्लपक्षकी एकादशीका नाम 'आमलकी' है। इसका पवित्र व्रत विष्णुलोककी प्राप्ति करनेवाला है।

**मान्धाताने पूछा—द्विजश्रेष्ठ !** यह 'आमलकी' कब उत्पन्न हुई, मुझे बताइये।

**वसिष्ठजीने कहा—महाभाग !** सुनो—पृथ्वीपर 'आमलकी'की उत्पत्ति किस प्रकार हुई, यह बताता हूँ। आमलकी महान् वृक्ष है, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। भगवान् विष्णुके थूकनेपर उनके मुखसे चन्द्रमाके समान कान्तिमान् एक विन्दु प्रकट हुआ। वह विन्दु पृथ्वीपर गिरा। उसीसे आमलकी (आँखले) का महान् वृक्ष उत्पन्न हुआ। यह सभी वृक्षोंका आदिभूत कहलाता है। इसी समय समस्त प्रजाकी सृष्टि करनेके लिये भगवान्से ब्रह्माजीको उत्पन्न किया। उन्होंसे इन प्रजाओंकी सृष्टि हुई। देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, नाग तथा निर्मल अन्तःकरणवाले महर्षियोंको ब्रह्माजीने जन्म दिया। उनमेंसे देवता और ऋषि उस स्थानपर आये, जहाँ विष्णुप्रिया आमलकीका वृक्ष था। महाभाग ! उसे देखकर देवताओंको बड़ा विस्मय हुआ। वे एक-दूसरेपर दृष्टिपात करते हुए उत्कण्ठापूर्वक उस वृक्षकी ओर देखने लगे और खड़े-खड़े सोचने लगे कि पूर्क (पाकर) आदि वृक्ष तो पूर्व कल्पकी ही भाँति हैं, जो सब-के-सब हमारे परिचित हैं, किन्तु इस वृक्षको हम नहीं जानते। उन्हें इस प्रकार चिन्ता करते देख आकाशवाणी हुई—'महर्षियो ! यह सर्वश्रेष्ठ आमलकीका वृक्ष है, जो विष्णुको प्रिय है। इसके समरणमात्रसे गोदानका फल मिलता है। स्पृकरनेसे इससे दूना और फल भक्षण करनेसे तिगुना पुण्यप्राप्त होता है। इसलिये सदा प्रयत्नपूर्वक आमलकीक सेवन करना चाहिये। यह सब पापोंको हरनेवाला वैष्णवृक्ष बताया गया है। इसके मूलमें विष्णु, उसके ऊपर ब्रह्मा, स्कन्धमें परमेश्वर भगवान् रुद्र, शाखाओंमें मुनि टहनियोंमें देवता, पत्तोंमें वसु, फूलोंमें मरुदण्ड तथा फलोंमें समस्त प्रजापति वास करते हैं। आमलकी सर्वदेवमयी बतायी गयी है।\* अतः विष्णुभक्त पुरुषे लिये यह परम पूज्य है।'

**ऋषि बोले—** [ अव्यक्त स्वरूपसे बोलनेवाला महापुरुष ! ] हमलोग आपको क्या स्मझें—आप व

\* तस्या मूले स्थितो विष्णुस्तदूर्ध्वं च पितामहः। स्कन्धे च भगवान् रुद्रः संस्थितः परमेश्वरः ॥

शाखासु मुनयः सर्वे प्रशाखासु च देवताः। पर्णेषु वस्त्रो देवाः पुष्पेषु मरुतस्तथा ॥

हैं ? देवता हैं या कोई और ? हमें ठीक-ठीक बताइये ।

आकाशवाणी हुई—जो सम्पूर्ण भूतोंके कर्ता और समस्त भुवनोंके स्थान हैं, जिन्हें विद्वान् पुरुष भी कठिनतासे देख पाते हैं, वही सनातन विष्णु मैं हूँ ।

देवाधिदेव भगवान् विष्णुका कथन सुनकर उन ब्रह्मकुमार महर्षियोंके नेत्र आश्चर्यसे चकित हो उठे । उन्हें बड़ा विस्मय हुआ । वे आदि-अन्तरहित भगवान्‌की स्तुति करने लगे ।

ऋषि बोले—सम्पूर्ण भूतोंके आत्मभूत, आत्मा एवं परमात्माको नमस्कार है । अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले अच्युतको नित्य प्रणाम है । अन्तरहित परमेश्वरको बारम्बार प्रणाम है । दामोदर, कवि (सर्वज्ञ) और यज्ञेश्वरको नमस्कार है । मायापते ! आपको प्रणाम है । आप विश्वके स्वामी हैं; आपको नमस्कार है ।

ऋषियोंके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् श्रीहरि संतुष्ट हुए और बोले—महर्षियो ! तुम्हें कौन-सा अभीष्ट वरदान दूँ ?

ऋषि बोले—भगवन् ! यदि आप संतुष्ट हैं तो हमलोगोंके हितके लिये कोई ऐसा व्रत बतलाइये, जो स्वर्ग और मोक्षरूपी फल प्रदान करनेवाला हो ।

श्रीविष्णु बोले—महर्षियो ! फाल्युन शुक्रपक्षमें यदि पुष्य नक्षत्रसे युक्त द्वादशी हो तो वह महान् पुण्य देनेवाली और बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाली होती है । द्विजवरो ! उसमें जो विशेष कर्तव्य है, उसको सुनो । आमलकी एकादशीमें आँखलेके वृक्षके पास जाकर वहाँ रात्रिमें जागरण करना चाहिये । इससे मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता और सहस्र गोदानोंका फल प्राप्त करता है । विप्रगण ! यह व्रतोंमें उत्तम व्रत है, जिसे मैंने तुमलोगोंको बताया है ।

ऋषि बोले—भगवन् ! इस व्रतकी विधि बतलाइये । यह कैसे पूर्ण होता है ? इसके देवता, नमस्कार और मन्त्र कौन-से बताये गये हैं ? उस समय स्नान और दान कैसे किया जाता है ? पूजनकी कौन-सी विधि है तथा उसके लिये मन्त्र क्या है ? इन सब

बातोंका यथार्थ रूपसे वर्णन कीजिये ।

भगवान् विष्णुने कहा—द्विजवरो ! इस व्रतकी जो उत्तम विधि है, उसको श्रवण करो ! एकादशीको प्रातःकाल दन्तधावन करके यह सङ्कल्प करे कि 'हे पुण्डरीकाक्ष ! हे अच्युत ! मैं एकादशीको निराहार रहकर दूसरे दिन भोजन करूँगा । आप मुझे शरणमें रखें ।' ऐसा नियम लेनेके बाद पतित, चोर, पाखण्डी, दुराचारी, मर्यादा भंग करनेवाले तथा गुरुपलीगामी, मनुष्योंसे वार्तालाप न करे । अपने मनको वशमें रखते हुए नदीमें, पोखरेमें, कुएँपर अथवा घरमें ही स्नान करे । स्नानके पहले शरीरमें मिट्टी लगाये ।

### मृत्तिका लगानेका मन्त्र

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे ।

मृत्तिके हर मे पापं जन्मकोट्यां समर्जितम् ॥

(४७ । ४३)

'वसुन्धरे ! तुम्हारे ऊपर अश्व और रथ चला करते हैं तथा वामन अवतारके समय भगवान् विष्णुने भी तुम्हें अपने पैरोंसे नापा था । मृत्तिके ! मैंने करोड़ों जन्मोंमें जो पाप किये हैं, मेरे उन सब पापोंको हर लो ।'

### स्नान-मन्त्र

त्वं मातः सर्वभूतानां जीवनं तत्तु रक्षकम् ।

स्वेदजोद्दिजजातीनां रसानां पतये नमः ॥

स्नातोऽहं सर्वतीर्थेषु हृदप्रस्त्रवणेषु च ।

नदीषु देवखातेषु इदं स्नानं तु मे भवेत् ॥

(४७ । ४४-४५)

'जलकी अधिष्ठात्री देवी ! मातः ! तुम सम्पूर्ण भूतोंके लिये जीवन हो । वही जीवन, जो स्वेदज और उद्दिज्ज जातिके जीवोंका भी रक्षक है । तुम रसोंकी स्वामिनी हो । तुम्हें नमस्कार है । आज मैं सम्पूर्ण तीर्थों, कुण्डों, झरनों, नदियों और देवसम्बन्धी सरोवरोंमें स्नान कर चुका । मेरा यह स्नान उक्त सभी स्नानोंका फल देनेवाला हो ।'

विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह परशुरामजीकी सोनेकी प्रतिमा बनवाये । प्रतिमा अपनी शक्ति और

धनके अनुसार एक या आधे माशे सुवर्णकी होनी चाहिये। स्नानके पश्चात् घर आकर पूजा और हवन करे। इसके बाद सब प्रकारकी सामग्री लेकर आँवलेके वृक्षके पास जाय। वहाँ वृक्षके चारों ओरकी जमीन झाङ्ग-बुहार, लीप-पोतकर शुद्ध करे। शुद्ध की हुई भूमिमें मन्त्रपाठ-पूर्वक जलसे भरे हुए नवीन कलशकी स्थापना करे। कलशमें पञ्चरत्न और दिव्य गन्ध आदि छोड़ दे। श्वेतचन्दनसे उसको चर्चित करे। कण्ठमें फूलकी माला पहनाये। सब प्रकारके धूपकी सुगन्ध फैलाये। जलते हुए दीपकोंकी श्रेणी सजाकर रखे। तात्पर्य यह कि सब ओरसे सुन्दर एवं मनोहर दृश्य उपस्थित करे। पूजाके लिये नवीन छाता, जूता और वस्त्र भी मँगाकर रखे। कलशके ऊपर एक पात्र रखकर उसे दिव्य लाजों (खीलों) से भर दे। फिर उसके ऊपर सुवर्णमय परशुरामजीकी स्थापना करे। 'विशोकाय नमः' कहकर उनके चरणोंकी, 'विश्वरूपिणे नमः' से दोनों घुटनोंकी, 'उग्राय नमः' से जाँधोंकी, 'दामोदराय नमः' से कटिभागकी, 'पद्मनाभाय नमः' से उदरकी, 'श्रीवत्सधारिणे नमः' से वक्षःस्थलकी, 'चक्रिणे नमः' से बायी बाँहकी, 'गदिने नमः' से दाहिनी बाँहकी, 'वैकुण्ठाय नमः' से कण्ठकी, 'यज्ञमुखाय नमः' से मुखकी, 'विशोक निधये नमः' से नासिकाकी, 'वासुदेवाय नमः' से नेत्रोंकी, 'वामनाय नमः' से ललाटकी, 'सर्वात्मने नमः' से सम्पूर्ण अङ्गों तथा मस्तककी पूजा करे। ये ही पूजाके मन्त्र हैं। तदनन्तर भक्तियुक्त चित्तसे शुद्ध फलके द्वारा देवाधिदेव परशुरामजीको अर्घ्य प्रदान करे। अर्घ्यका मन्त्र इस प्रकार है—

नमस्ते देवदेवेश जामदग्न्य नमोऽस्तु ते।  
गृहणार्थमिमं दत्तमामलक्या युतं हरे॥

(४७ । ५७)

'देवदेवेश्वर ! जमदग्निनन्दन ! श्रीविष्णुस्वरूप परशुरामजी ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आँवलेके फलके साथ दिया हुआ मेरा यह अर्घ्य प्रहण कीजिये।'

तदनन्तर भक्तियुक्त चित्तसे जागरण करे। नृत्य, संगीत, वाद्य, धार्मिक उपाख्यान तथा श्रीविष्णुसम्बन्धिनी कथा-वार्ता आदिके द्वारा वह रात्रि व्यतीत करे। उसके बाद भगवान् विष्णुके नाम ले-लेकर आमलकी वृक्षकी परिक्रमा एक सौ आठ या अद्वाईस बार करे। फिर सबेरा होनेपर श्रीहरिकी आरती करे। ब्राह्मणकी पूजा करके वहाँकी सब सामग्री उसे निवेदन कर दे। परशुरामजीका कलश, दो वस्त्र, जूता आदि सभी वस्तुएँ दान कर दे और यह भावना करे कि 'परशुरामजीके स्वरूपमें भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हों।' तत्पश्चात् आमलकीका स्पर्श करके उसकी प्रदक्षिणा करे और स्नान करनेके बाद विधिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराये। तदनन्तर कुटुम्बियोंके साथ बैठकर स्वयं भी भोजन करे। ऐसा करनेसे जो पुण्य होता है, वह सब बतलाता है; सुनो। सम्पूर्ण तीर्थोंके सेवनसे जो पुण्य प्राप्त होता है तथा सब प्रकारके दान देनेसे जो फल मिलता है, वह सब उपर्युक्त विधिके पालनसे सुलभ होता है। समस्त यज्ञोंकी अपेक्षा भी अधिक फल मिलता है; इसमें तनिव भी संदेह नहीं है। यह ब्रत सब ब्रतोंमें उत्तम है, जिसके मैंने तुमसे पूरा-पूरा वर्णन किया है।

वसिष्ठजी कहते हैं—महाराज ! इतना कहकर देवेश्वर भगवान् विष्णु वहीं अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् उन समस्त महर्षियोंने उक्त ब्रतका पूर्णरूपसे पालन किया। नृपश्रेष्ठ ! इसी प्रकार तुम्हें भी इस ब्रतवा अनुष्ठान करना चाहिये।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—युधिष्ठिर ! तुर्धर्ष ब्रत मनुष्यको सब पापोंसे मुक्त करनेवाला है

## चैत्र मासकी 'पापमोचनी' तथा 'कामदा' एकादशीका माहात्म्य

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! फाल्गुन शुक्लपक्षकी आमलकी एकादशीका माहात्म्य मैंने सुना । अब चैत्र कृष्णपक्षकी एकादशीका क्या नाम है, यह बतानेकी कृपा कीजिये ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजेन्द्र ! सुनो—मैं इस विषयमें एक पापनाशक उपाख्यान सुनाऊँगा, जिसे चक्रवर्तीं नरेश मान्धाताके पूछनेपर महर्षि लोमशने कहा था ।

मान्धाता बोले—भगवन् ! मैं लोगोंके हितकी इच्छासे यह सुनना चाहता हूँ कि चैत्रमासके कृष्णपक्षमें किस नामकी एकादशी होती है ? उसकी क्या विधि है तथा उससे किस फलकी प्राप्ति होती है ? कृपया ये सब बातें बताइये ।

लोमशजीने कहा—नृपश्रेष्ठ ! पूर्वकालकी बात है, अप्सराओंसे सेवित चैत्ररथ नामक वनमें, जहाँ गम्भीरोंकी कन्याएँ अपने किङ्गरोंके साथ बाजे बजाती हुई विहार करती हैं, मञ्जुघोषा नामक अप्सरा मुनिवर मेधावीको मोहित करनेके लिये गयी । वे महर्षि उसी वनमें रहकर ब्रह्मचर्यका पालन करते थे । मञ्जुघोषा मुनिके भयसे आश्रमसे एक कोस दूर ही ठहर गयी और सुन्दर ढंगसे वीणा बजाती हुई मधुर गीत गाने लगी । मुनिश्रेष्ठ मेधावी घूमते हुए उधर जा निकले और उस सुन्दरी अप्सराको इस प्रकार गान करते देख सेनासहित कामदेवसे परास्त होकर बरबस मोहके वशीभूत हो गये । मुनिकी ऐसी अवस्था देख मञ्जुघोषा उनके समीप आयी और वीणा नीचे रखकर उनका आलिङ्गन करने लगी । मेधावी भी उसके साथ रमण करने लगे । कामदेवश रमण करते हुए उन्हें रात और दिनका भी भान न रहा । इस प्रकार मुनिजनोचित सदाचारका लोप करके अप्सराके साथ रमण करते उन्हें बहुत दिन व्यतीत हो गये । मञ्जुघोषा देवलोकमें जानेको तैयार हुई । जाते समय उसने मुनिश्रेष्ठ मेधावीसे कहा—'ब्रह्मन् ! अब मुझे अपने देश जानेकी आज्ञा दीजिये ।'

मेधावी बोले—देवी ! जबतक सबोरेकी सन्ध्या न हो जाय तबतक मेरे ही पास ठहरो ।

अप्सराने कहा—विप्रवर ! अबतक न जाने कितनी सन्ध्या चली गयी ! मुझपर कृपा करके बीते हुए समयका विचार तो कीजिये ।

लोमशजी कहते हैं—राजन् ! अप्सराकी बात सुनकर मेधावीके नेत्र आश्र्यसे चकित हो उठे । उस समय उन्होंने बीते हुए समयका हिसाब लगाया तो मालूम हुआ कि उसके साथ रहते सत्तावन वर्ष हो गये । उसे अपनी तपस्याका विनाश करनेवाली जानकर मुनिको उसपर बड़ा क्रोध हुआ । उन्होंने शाप देते हुए कहा—'पापिनी ! तू पिशाची हो जा ।' मुनिके शापसे दग्ध होकर वह विनयसे नतमस्तक हो बोली—'विप्रवर ! मेरे शापका उद्धार कीजिये । सात वाक्य बोलने या सात पद साथ-साथ चलने मात्रसे ही सत्पुरुषोंके साथ मैत्री हो जाती है । ब्रह्मन् ! मैंने तो आपके साथ अनेक वर्ष व्यतीत किये हैं; अतः स्वामिन् ! मुझपर कृपा कीजिये ।'

मुनि बोले—भद्रे ! मेरी बात सुनो—यह शापसे उद्धार करनेवाली है । क्या करूँ ? तुमने मेरी बहुत बड़ी तपस्या नष्ट कर डाली है । चैत्र कृष्णपक्षमें जो शुभ एकादशी आती है उसका नाम है 'पांपमोचनी' । वह सब पापोंका क्षय करनेवाली है । सुन्दरी ! उसीका व्रत करनेपर तुम्हारी पिशाचता दूर होगी ।

ऐसा कहकर मेधावी अपने पिता मुनिवर च्यवनके आश्रमपर गये । उन्हें आया देख च्यवनने पूछा—'बेटा ! यह क्या किया ? तुमने तो अपने पुण्यका नाश कर डाला !'

मेधावी बोले—पिताजी ! मैंने अप्सराके साथ रमण करनेका पातक किया है । कोई ऐसा प्रायश्चित्त बताइये, जिससे पापका नाश हो जाय ।

च्यवनने कहा—बेटा ! चैत्र कृष्णपक्षमें जो पापमोचनी एकादशी होती है, उसका व्रत करनेपर पापराशिका विनाश हो जायगा ।

पिताका यह कथन सुनकर मेधावीने उस ब्रतका अनुष्ठान किया। इससे उनका पाप नष्ट हो गया और वे पुनः तपस्यासे परिपूर्ण हो गये। इसी प्रकार मञ्जुघोषाने भी इस उत्तम ब्रतका पालन किया। 'पापमोचनी'का ब्रत करनेके कारण वह पिशाच-योनिसे मुक्त हुई और दिव्य रूपधारिणी श्रेष्ठ अप्सरा होकर स्वर्गलोकमें चली गयी। राजन्! जो श्रेष्ठ मनुष्य पापमोचनी एकादशीका ब्रत करते हैं, उनका सारा पाप नष्ट हो जाता है। इसको पढ़ने और सुननेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है। ब्रह्म-हत्या, सुवर्णकी चोरी, सुरापान और गुरुपलीगमन करनेवाले महापातकी भी इस ब्रतके करनेसे पापमुक्त हो जाते हैं। यह ब्रत बहुत पुण्यमय है।

**युधिष्ठिरने पूछा—**वासुदेव ! आपको नमस्कार है। अब मेरे सामने यह बताइये कि चैत्र शुक्लपक्षमें किस नामकी एकादशी होती है ?

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले—**राजन् ! एकाग्रचित्त होकर यह पुरातन कथा सुनो, जिसे वसिष्ठजीने दिलीपके पूछनेपर कहा था।

**दिलीपने पूछा—**भगवन् ! मैं एक बात सुनना चाहता हूँ। चैत्रमासके शुक्लपक्षमें किस नामकी एकादशी होती है ?

**वसिष्ठजी बोले—**राजन् ! चैत्र शुक्लपक्षमें 'कामदा' नामकी एकादशी होती है। वह परम पुण्यमयी है। पापरूपी ईंधनके लिये तो वह दावानल ही है। प्राचीन कालकी बात है, नागपुर नामका एक सुन्दर नगर था, जहाँ सोनेके महल बने हुए थे। उस नगरमें पुण्डरीक आदि महा भयङ्कर नाग निवास करते थे। पुण्डरीक नामका नाग उन दिनों वहाँ राज्य करता था। गन्धर्व, किन्नर और अप्सराएँ भी उस नगरीका सेवन करती थीं। वहाँ एक श्रेष्ठ अप्सरा थी, जिसका नाम ललिता था। उसके साथ ललित नामवाला गन्धर्व भी था। वे दोनों पति-पतीके रूपमें रहते थे। दोनों ही परस्पर कामसे पीड़ित रहा करते थे। ललितके हृदयमें सदा पतिकी ही मूर्ति बसी रहती थी और ललितके हृदयमें सुन्दरी ललिताका नित्य निवास था। एक दिनकी बात है,

नागराज पुण्डरीक राजसभामें बैठकर मनोरञ्जन कर रहा था। उस समय ललितका गान हो रहा था। किन्तु उसके साथ उसकी प्यारी ललिता नहीं थी। गाते-गाते उसे ललिताका स्मरण हो आया। अतः उसके पैरोंकी गति रुक गयी और जीभ लङ्घखड़ाने लगी। नागोंमें श्रेष्ठ कर्कोटकको ललितके मनका सन्ताप ज्ञात हो गया; अतः उसने राजा पुण्डरीकको उसके पैरोंकी गति रुकने एवं गानमें त्रुटि होनेकी बात बता दी। कर्कोटककी बात सुनकर नागराज पुण्डरीककी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। उसने गाते हुए कामातुर ललितको शाप दिया— 'दुर्बुद्धे ! तू मेरे सामने गान करते समय भी पतीके वशीभूत हो गया, इसलिये राक्षस हो जा ।'

महाराज पुण्डरीकके इतना कहते ही वह गन्धर्व राक्षस हो गया। भयङ्कर मुख, विकराल आँखें और देखनेमात्रसे भय उपजानेवाला रूप। ऐसा राक्षस होकर वह कर्मका फल भोगने लगा। ललिता अपने पतिकी विकराल आकृति देख मन-ही-मन बहुत चिन्तित हुई। भारी दुःखसे कष्ट पाने लगी। सोचने लगी, 'क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? मेरे पति पापसे कष्ट पा रहे हैं।' वह रोती हुई घने जंगलोंमें पतिके पीछे-पीछे घूमने लगी। वनमें उसे एक सुन्दर आश्रम दिखायी दिया, जहाँ एक शान्त मुनि बैठे हुए थे। उनका किसी भी प्राणीके साथ वैर-विरोध नहीं था। ललिता शीघ्रताके साथ वहाँ गयी और मुनिको प्रणाम करके उनके सामने खड़ी हुई। मुनि बड़े दयालु थे। उस दुःखिनीको देखकर वे इस प्रकार बोले—'शुभे ! तुम कौन हो ? कहाँसे यहाँ आयी हो ? मेरे सामने सच-सच बताओ ।'

**ललिताने कहा—**महामुने ! वीरधन्वा नामवाले एक गन्धर्व हैं। मैं उन्हीं महात्माकी पुत्री हूँ। मेरा नाम ललिता है। मेरे स्वामी अपने पाप-दोषके कारण राक्षस हो गये हैं। उनकी यह अवस्था देखकर मुझे चैन नहीं है। ब्रह्मन् ! इस समय मेरा जो कर्तव्य हो, वह बताइये विप्रवर ! जिस पुण्यके द्वाय मेरे पति सक्षसभाव छुटकारा पा जायँ, उसका उपदेश कीजिये।'

**ऋषि बोले—**भद्रे ! इस समय चैत्र मास

युक्तपक्षकी 'कामदा' नामक एकादशी तिथि है, जो सब



पापोंको हरनेवाली और उत्तम है। तुम उसीका विधि-पूर्वक व्रत करो और इस व्रतका जो पुण्य हो, उसे अपने स्वामीको दे डालो। पुण्य देनेपर क्षणभरमें ही उसके

शापका दोष दूर हो जायगा।

राजन् ! मुनिका यह वचन सुनकर ललिताको बड़ा हर्द हुआ। उसने एकादशीको उपवास करके द्वादशीके दिन उन ब्रह्मिंगे समीप ही भगवान् वासुदेवके [श्रीविग्रहके] समक्ष अपने पतिके उद्धरके लिये यह वचन कहा—‘मैंने जो यह कामदा एकादशीका उपवास-व्रत किया है, उसके पुण्यके प्रभावसे मेरे पतिका राक्षस-भाव दूर हो जाय।’

वसिष्ठजी कहते हैं—ललिताके इतना कहते ही उसी क्षण ललितका पाप दूर हो गया। उसने दिव्य देह धारण कर लिया। राक्षस-भाव चला गया और पुनः गन्धर्वत्वकी प्राप्ति हुई। नृपश्रेष्ठ ! वे दोनों पति-पत्नी 'कामदा'के प्रभावसे पहलेकी अपेक्षा भी अधिक सुन्दर रूप धारण करके विमानपर आरूढ़ हो अत्यन्त शोभा पाने लगे। यह जानकर इस एकादशीके व्रतका यत्नपूर्वक पालन करना चाहिये। मैंने लोगोंके हितके लिये तुम्हारे सामने इस व्रतका वर्णन किया है। कामदा एकादशी ब्रह्महत्या आदि पापों तथा पिशाचत्व आदि दोषोंका भी नाश करनेवाली है। राजन् ! इसके पढ़ने और सुननेसे वाजपेय यज्ञका फल मिलता है।



### वैशाख मासकी 'वरूथिनी' और 'मोहिनी' एकादशीका माहात्म्य

युधिष्ठिरने पूछा—वासुदेव ! आपको नमस्कार है। वैशाख मासके कृष्णपक्षमें किस नामकी एकादशी होती है ? उसकी महिमा बताइये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! वैशाख कृष्णपक्षकी एकादशी 'वरूथिनी'के नामसे प्रसिद्ध है। यह इस लोक और परलोकमें भी सौभाग्य प्रदान करनेवाली है। 'वरूथिनी'के व्रतसे ही सदा सौख्यका लाभ और पापकी हानि होती है। यह समस्त लोकोंको धोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली है। 'वरूथिनी'के ही व्रतसे मान्धाता तथा धुन्युमार आदि अन्य अनेक राजा स्वर्गलोकको प्राप्त हुए हैं। जो दस हजार वर्षोंतक तपस्या करता है, उसके समान ही फल 'वरूथिनी'के व्रतसे भी

मनुष्य प्राप्त कर लेता है। नृपश्रेष्ठ ! घोड़ेके दानसे हाथीका दान श्रेष्ठ है। भूमिदान उससे भी बड़ा है। भूमिदानसे भी अधिक महत्व तिलदानका है। तिलदानसे बढ़कर स्वर्णदान और स्वर्णदानसे बढ़कर अन्नदान है, क्योंकि देवता, पितर तथा मनुष्योंको अन्नसे ही तृप्ति होती है। विद्वान् पुरुषोंने कन्यादानको भी अन्नदानके ही समान बताया है। कन्यादानके तुल्य ही धेनुका दान है—यह साक्षात् भगवान् का कथन है। ऊपर बताये हुए सब दानोंसे बड़ा विद्यादान है। मनुष्य वरूथिनी एकादशीका व्रत करके विद्यादानका भी फल प्राप्त कर लेता है। जो लोग पापसे मोहित होकर कन्याके धनसे जीविका चलाते हैं, वे पुण्यका क्षय होनेपर यातनामय नरकमें

जाते हैं। अतः सर्वथा प्रयत्न करके कन्याके धनसे बचना चाहिये—उसे अपने काममें नहीं लाना चाहिये। \* जो अपनी शक्तिके अनुसार आभूषणोंसे विभूषित करके पवित्र भावसे कन्याका दान करता है, उसके पुण्यकी संख्या बतानेमें चित्रगुप्त भी असमर्थ हैं। वरुथिनी एकादशी करके भी मनुष्य उसीके समान फल प्राप्त करता है। ब्रत करनेवाला वैष्णव पुरुष दशमी तिथिको काँस, उड्ढ, मसूर, चना, कोदो, शाक, मधु, दूसरेका अन्न, दो बार भोजन तथा मैथुन—इन दस वस्तुओंका परित्याग कर दे। † एकादशीको जुआ खेलना, नींद लेना, पान खाना, दाँतुन करना, दूसरेकी निन्दा करना, चुगली खाना, चोरी, हिंसा, मैथुन, क्रोध तथा असत्य-भाषण—इन ग्यारह बातोंको त्याग दे। ‡ द्वादशीको काँस, उड्ढ, शराब, मधु, तेल, पतितोंसे वार्तालाप, व्यायाम, परदेशगमन, दो बार भोजन, मैथुन, बैलकी पीठपर सवारी और मसूर—इन बारह वस्तुओंका त्याग करे। § राजन् ! इस विधिसे वरुथिनी एकादशी की जाती है। रातको जागरण करके जो भगवान् मधुसूदनका पूजन करते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो परमगतिको प्राप्त होते हैं। अतः पापभीरु मनुष्योंको पूर्ण प्रयत्न करके इस एकादशीका ब्रत करना चाहिये। यमराजसे डरनेवाला मनुष्य अवश्य 'वरुथिनी'का ब्रत करे। राजन् ! इसके पढ़ने और सुननेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है और मनुष्य सब पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

युधिष्ठिरने पूछा—जनार्दन ! वैशाख मासके शुक्ल-पक्षमें किस नामकी एकादशी होती है ? उसका क्या फल होता है ? तथा उसके लिये कौन-सी विधि है ?

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! पूर्वकालमें परम बुद्धिमान् श्रीरामचन्द्रजीने महर्षि वसिष्ठसे यही बात पूछी थी, जिसे आज तुम मुझसे पूछ रहे हो।

श्रीरामने कहा—भगवन् ! जो समस्त पापोंका क्षय तथा सब प्रकारके दुःखोंका निवारण करनेवाला ब्रतोंमें उत्तम ब्रत हो, उसे मैं सुनना चाहता हूँ।

वसिष्ठजी बोले—श्रीराम ! तुमने बहुत उत्तम बात पूछी है। मनुष्य तुम्हारा नाम लेनेसे ही सब पापोंसे शुद्ध हो जाता है। तथापि लोगोंके हितकी इच्छासे मैं पवित्रोंमें पवित्र उत्तम ब्रतका वर्णन करूँगा। वैशाख मासके शुक्लपक्षमें जो एकादशी होती है, उसका नाम मोहिनी है। वह सब पापोंको हरनेवाली और उत्तम है। उसके ब्रतके प्रभावसे मनुष्य मोहजाल तथा पातक-समूहसे छुटकारा पा जाते हैं।

सरस्वती नदीके रमणीय तटपर भद्रावती नामकी सुन्दर नगरी है। वहाँ धृतिमान् नामक राजा, जो चन्द्र-वंशमें उत्पन्न और सत्यप्रतिज्ञ थे, राज्य करते थे। उसी नगरमें एक वैश्य रहता था, जो धन-धान्यसे परिपूर्ण और समृद्धिशाली था। उसका नाम था धनपाल। वह सदा पुण्यकर्ममें ही लगा रहता था। दूसरोंके लिये पौसला, कुआँ, मठ, बगीचा, पोखरा और घर बनवाय

\* कन्यावित्तेन जीवन्ति ये नराः पापमोहिताः ॥

पुण्यक्षयात्ते गच्छन्ति निरयं यातनामयम् । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन न ग्राह्यं कन्यकाधनम् ॥

(५० । १४-१५)

† कांसं माषं मसूरांश्च चणकान् कोद्रवांस्तथा । शाकं मधुं परान्नं च पुनर्भोजनमैथुने ॥

वैष्णवो ब्रतकर्ता च दशम्यां दश वर्जयेत् ॥

(५० । १७-१८)

‡ धूतक्रीडां च निद्रां च ताम्बूलं दन्तधावनम् । परापवाद पैशुन्ये स्तेयं हिसां तथा रतिम् ॥

क्रोधं चानृतवाक्यानि होकादश्यां विवर्जयेत् ॥

(५० । १९-२०)

§ कांसं माषं सुरां क्षौद्रं तैलं पतितभाषणम् ॥

व्यायामं च प्रवासं च पुनर्भोजनमैथुने । वृषपृष्ठं मसूरान्नं द्वादश्यां परिवर्जयेत् ॥

(५० । २०-२१)

करता था। भगवान् श्रीविष्णुकी भक्तिमें उसका हार्दिक अनुराग था। वह सदा शान्त रहता था। उसके पाँच पुत्र थे—सुमना, द्युतिमान्, मेधावी, सुकृत तथा धृष्टबुद्धि। धृष्टबुद्धि पाँचवाँ था। वह सदा बड़े-बड़े पापोंमें ही संलग्न रहता था। जुए आदि दुर्व्यसनोंमें उसकी बड़ी आसक्ति थी। वह वेश्याओंसे मिलनेके लिये लालायित रहता था। उसकी बुद्धि न तो देवताओंके पूजनमें लगती थी और न पितरों तथा ब्राह्मणोंके सत्कारमें। वह दुष्टात्मा अन्यायके मार्गपर चलकर पिताका धन बरबाद किया करता था। एक दिन वह वेश्याके गलेमें बाँह डाले चौराहेपर धूमता देखा गया। तब पिताने उसे घरसे निकाल दिया तथा बन्धु-बान्धवोंने भी उसका परित्याग कर दिया। अब वह दिन-रात दुःख और शोकमें ढूबा तथा कष्ट-पर-कष्ट उठाता हुआ इधर-उधर भटकने लगा। एक दिन किसी पुण्यके उदय होनेसे वह महर्षि कौण्डन्यके आश्रमपर जा पहुँचा। वैशाखका महीना था। तपोधन कौण्डन्य

गङ्गाजीमें स्नान करके आये थे। धृष्टबुद्धि शोकके भारसे पीड़ित हो मुनिवर कौण्डन्यके पास गया और हाथ जोड़ सामने खड़ा होकर बोला—‘ब्रह्मन्! द्विजश्रेष्ठ! मुझपर दया करके कोई ऐसा ब्रत बताइये, जिसके पुण्यके प्रभावसे मेरी मुक्ति हो।’

**कौण्डन्य बोले**—वैशाखके शुक्लपक्षमें मोहिनी नामसे प्रसिद्ध एकादशीका ब्रत करो। मोहिनीको उपवास करनेपर प्राणियोंके अनेक जन्मोंके किये हुए मेरुपर्वत-जैसे महापाप भी नष्ट हो जाते हैं।

**वसिष्ठजी कहते हैं**—श्रीरामचन्द्र ! मुनिका यह वचन सुनकर धृष्टबुद्धिका चित्त प्रसन्न हो गया। उसने कौण्डन्यके उपदेशसे विधिपूर्वक मोहिनी एकादशीका ब्रत किया। नृपश्रेष्ठ ! इस ब्रतके करनेसे वह निष्पाप हो गया और दिव्य देह धारणकर गरुड़पर आरूढ़ हो सब प्रकारके उपद्रवोंसे रहित श्रीविष्णुधामको चला गया। इस प्रकार यह मोहिनीका ब्रत बहुत उत्तम है। इसके पढ़ने और सुननेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है।



## ज्येष्ठ मासकी ‘अपरा’ तथा ‘निर्जला’ एकादशीका माहात्म्य

**युधिष्ठिरने पूछा**—जनार्दन ! ज्येष्ठके कृष्णपक्षमें किस नामकी एकादशी होती है ? मैं उसका माहात्म्य सुनना चाहता हूँ। उसे बतानेकी कृपा कीजिये।

**भगवान् श्रीकृष्ण बोले**—राजन् ! तुमने सम्पूर्ण लोकोंके हितके लिये बहुत उत्तम बात पूछी है। राजेन्द्र ! इस एकादशीका नाम ‘अपरा’ है। यह बहुत पुण्य प्रदान करनेवाली और बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाली है। ब्रह्महत्यासे दबा हुआ, गोत्रकी हत्या करनेवाला, गर्भस्थ बालकको मारनेवाला, परनिन्दक तथा परस्तीलम्पट पुरुष भी अपरा एकादशीके सेवनसे निश्चय ही पापरहित हो जाता है। जो झूठी गवाही देता, माप-तोलमें धोखा देता, बिना जाने ही नक्षत्रोंकी गणना करता और कूटनीतिसे आयुर्वेदका ज्ञाता बनकर वैद्यका काम करता है—ये सब नरकमें निवास करनेवाले प्राणी हैं। परन्तु अपरा एकादशीके सेवनसे ये भी पापरहित हो जाते हैं। यदि क्षत्रिय क्षात्रधर्मका परित्याग करके युद्धसे भागता है, तो

वह क्षत्रियोचित धर्मसे भ्रष्ट होनेके कारण घोर नरकमें पड़ता है। जो शिष्य विद्या प्राप्त करके स्वयं ही गुरुकी निन्दा करता है, वह भी महापातकोंसे युक्त होकर भयङ्कर नरकमें गिरता है। किन्तु अपरा एकादशीके सेवनसे ऐसे मनुष्य भी सद्गतिको प्राप्त होते हैं।

माघमें जब सूर्य मकर राशिपर स्थित हों, उस समय प्रयागमें स्नान करनेवाले मनुष्योंको जो पुण्य होता है, काशीमें शिवरात्रिका ब्रत करनेसे जो पुण्य प्राप्त होता है, गयामें पिण्डदान करके पितरोंको तृप्ति प्रदान करनेवाला पुरुष जिस पुण्यका भागी होता है, वृहस्पतिके सिंहराशिपर स्थित होनेपर गोदावरीमें स्नान करनेवाला मानव जिस फलको प्राप्त करता है, बदरिकाश्रमकी यात्राके समय भगवान् केदारके दर्शनसे तथा बदरीतीर्थके सेवनसे जो पुण्य-फल उपलब्ध होता है तथा सूर्यग्रहणके समय कुरुक्षेत्रमें दक्षिणासहित यज्ञ करके हाथी, घोड़ा और सुवर्ण-दान करनेसे जिस

फलकी प्राप्ति होती है; अपरा एकादशीके सेवनसे भी मनुष्य वैसे ही फल प्राप्त करता है। 'अपरा' को उपवास करके भगवान् वामनकी पूजा करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो श्रीविष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इसको पढ़ने और सुननेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है।

युधिष्ठिरने कहा—जनार्दन ! 'अपरा'का सारा माहात्म्य मैंने सुन लिया, अब ज्येष्ठके शुक्लपक्षमें जो एकादशी हो उसका वर्णन कीजिये ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! इसका वर्णन परम धर्मात्मा सत्यवतीनन्दन व्यासजी करेगे; क्योंकि ये सम्पूर्ण शास्त्रोंके तत्त्वज्ञ और वेद-वेदाङ्गोंके पारङ्गत विद्वान् हैं।

तब वेदव्यासजी कहने लगे—दोनों ही पक्षोंकी एकादशियोंको भोजन न करे। द्वादशीको स्नान आदिसे पवित्र हो फूलोंसे भगवान् केशवकी पूजा करके नित्यकर्म समाप्त होनेके पश्चात् पहले ब्राह्मणोंको भोजन देकर अन्तमें स्वयं भोजन करे। राजन् ! जननाशौच और मरणाशौचमें भी एकादशीको भोजन नहीं करना चाहिये।

यह सुनकर भीमसेन बोले—परम बुद्धिमान्

पितामह ! मेरी उत्तम बात सुनिये। राजा युधिष्ठिर, माता कुन्ती, द्रौपदी, अर्जुन, नकुल और सहदेव—ये एकादशीको कभी भोजन नहीं करते तथा मुझसे भी हमेशा यही कहते हैं कि 'भीमसेन ! तुम भी एकादशीको न खाया करो ।' किन्तु मैं इन लोगोंसे यही कह दिया करता हूँ कि 'मुझसे भूख नहीं सही जायगी ।'

भीमसेनकी बात सुनकर व्यासजीने कहा—यदि तुम्हें स्वर्गलोककी प्राप्ति अभीष्ट है और नरकको दूषित समझते हो तो दोनों पक्षोंकी एकादशीको भोजन न करना ।

भीमसेन बोले—महाबुद्धिमान् पितामह ! मैं आपके सामने सच्ची बात कहता हूँ एक बार भोजन करके भी मुझसे ब्रत नहीं किया जा सकता। फिर उपवास करके तो मैं रह ही कैसे सकता हूँ। मेरे उदरमें वृक नामक अग्नि सदा प्रज्वलित रहती है; अतः जब मैं बहुत अधिक खाता हूँ तभी यह शान्त होती है। इसलिये महामुने ! मैं वर्षभरमें केवल एक ही उपवास कर सकता हूँ; जिससे स्वर्गकी प्राप्ति सुलभ हो तथा जिसके करनेसे मैं कल्याणका भागी हो सकूँ, ऐसा कोई एक ब्रत निश्चय करके बताइये। मैं उसका यथोचित-रूपसे पालन करूँगा।

व्यासजीने कहा—भीम ! ज्येष्ठ मासमें सूर्य वृष राशिपर हों या मिथुन राशिपर; शुक्लपक्षमें जो एकादशी हो, उसका यत्पूर्वक निर्जल ब्रत करो। केवल कुललया आचमन करनेके लिये मुखमें जल डाल सकते हो उसको छोड़कर और किसी प्रकारका जल विद्वान् पुरु मुखमें न डाले, अन्यथा ब्रत धंग हो जाता है। एकादशीको सूर्योदयसे लेकर दूसरे दिनके सूर्योदयतक मनुष्य जलका त्याग करे तो यह ब्रत पूर्ण होता है। तदनन्तर द्वादशीको निर्मल प्रभातकालमें स्नान करं ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक जल और सुवर्णका दान करे। इस प्रकार सब कार्य पूरा करके जितेन्द्रिय पुरु ब्राह्मणोंके साथ भोजन करे। वर्षभरमें जित एकादशियाँ होती हैं, उन सबका फल निर्ज एकादशीके सेवनसे मनुष्य प्राप्त कर लेता है; इस



तनिक भी सन्देह नहीं है। शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् केशवने मुझसे कहा था कि 'यदि मानव सबको छोड़कर एकमात्र मेरी शरणमें आ जाय और एकादशीको निराहार रहे तो वह सब पापोंसे छूट जाता है।'

एकादशीब्रत करनेवाले पुरुषके पास विशालकाय, विकराल आकृति और काले रंगवाले दण्ड-पाशधारी भयङ्कर यमदूत नहीं जाते। अन्तकालमें पीताम्बरधारी, सौम्य स्वभाववाले, हाथमें सुदर्शन धारण करनेवाले और मनके समान वेगशाली विष्णुदूत आकर इस वैष्णव पुरुषको भगवान् विष्णुके धाममें ले जाते हैं। अतः निर्जला एकादशीको पूर्ण यन्त्र करके उपवास करना चाहिये। तुम भी सब पापोंकी शान्तिके लिये यत्के साथ उपवास और श्रीहरिका पूजन करो। खी हो या पुरुष, यदि उसने मेरु पर्वतके बराबर भी महान् पाप किया हो तो वह सब एकादशीके प्रभावसे भस्म हो जाता है। जो मनुष्य उस दिन जलके नियमका पालन करता है, वह पुण्यका भागी होता है, उसे एक-एक पहरमें कोटि-कोटि स्वर्णमुद्रा दान करनेका फल प्राप्त होता सुना गया है। मनुष्य निर्जला एकादशीके दिन स्नान, दान, जप, होम आदि जो कुछ भी करता है, वह सब अक्षय होता है, यह भगवान् श्रीकृष्णका कथन है। निर्जला एकादशीको विधिपूर्वक उत्तम रीतिसे उपवास करके मानव वैष्णवपदको प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य एकादशीके दिन अन्न खाता है, वह पाप भोजन करता है। इस लोकमें वह चाण्डालके समान है और मरनेपर दुर्गतिको प्राप्त होता है।\*

जो ज्येष्ठके शुक्लपक्षमें एकादशीको उपवास करके दान देंगे, वे परमपदको प्राप्त होंगे। जिन्होंने एकादशीको उपवास किया है, वे ब्रह्महत्यारे, शराबी, चोर तथा गुरुद्रोही होनेपर भी सब पातकोंसे मुक्त हो जाते हैं। कुल्तीनन्दन ! निर्जला एकादशीके दिन श्रद्धालु खी-

पुरुषोंके लिये जो विशेष दान और कर्तव्य विहित है, उसे सुनो—उस दिन जलमें शयन करनेवाले भगवान् विष्णुका पूजन और जलमयी धेनुका दान करना चाहिये। अथवा प्रत्यक्ष धेनु या घृतमयी धेनुका दान उचित है। पर्याप्त दक्षिणा और भाँति-भाँतिके मिष्टानोंद्वारा यत्किपूर्वक ब्राह्मणोंको संतुष्ट करना चाहिये। ऐसा करनेसे ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट करना चाहिये। ऐसा करनेसे ब्राह्मण अवश्य संतुष्ट होते हैं और उनके संतुष्ट होनेपर श्रीहरि मोक्ष प्रदान करते हैं। जिन्होंने शम, दम और दानमें प्रवृत्त हो श्रीहरिकी पूजा और रात्रिमें जागरण करते हुए इस निर्जला एकादशीका ब्रत किया है, उन्होंने अपने साथ ही बीती हुई सौ पीढ़ियोंको और आनेवाली सौ पीढ़ियोंको भगवान् वासुदेवके परम धाममें पहुँचा दिया है। निर्जला एकादशीके दिन अन्न, वस्त्र, गौ, जल, शश्या, सुन्दर आसन, कमण्डलु तथा छाता दान करने चाहिये।† जो श्रेष्ठ एवं सुपात्र ब्राह्मणको जूता दान करता है, वह सोनेके विमानपर बैठकर स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो इस एकादशीकी महिमाको भक्तिपूर्वक सुनता तथा जो भक्तिपूर्वक उसका वर्णन करता है, वे दोनों स्वर्गलोकमें जाते हैं। चतुर्दशीयुक्त अमावास्याको सूर्यग्रहणके समय श्राद्ध करके मनुष्य जिस फलको प्राप्त करता है, वही इसके श्रवणसे भी प्राप्त होता है। पहले दन्तधावन करके यह नियम लेना चाहिये कि 'मैं भगवान् केशवकी प्रसन्नताके लिये एकादशीको निराहार रहकर आचमनके सिवा दूसरे जलका भी त्याग करूँगा।' द्वादशीको देवदेवेश्वर भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहिये। गन्ध, धूप, पुष्प और सुन्दर वस्त्रसे विधिपूर्वक पूजन करके जलका घड़ा सङ्कल्प करते हुए निष्प्राङ्कित मन्त्रका उच्चारण करे।

देवदेव हृषीकेशं संसारार्णवतारकं ।  
उद्कुम्भप्रदानेन नय मां परमां गतिम् ॥

(५३ । ६०)

\* एकादशी दिने योजना शुक्ल पापं भुन्ति सः। इह लोके च चाण्डालो मृतः प्राप्नोति दुर्गतिम् ॥ (५३ । ४३-४४)

† अन्न वस्त्रं तथा गावो जलं शश्यासनं शुभम्। कमण्डलुस्तथा छत्रं दातव्यं निर्जलादिने ॥ (५३ । ५३)



## COLLECTION OF VARIOUS

- HINDUISM SCRIPTURES
- HINDU COMICS
- AYURVEDA
- MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with  
By  
Avinash/Shashi

Icreator of  
hinduism  
server!



## COLLECTION OF VARIOUS

- HINDUISM SCRIPTURES
- HINDU COMICS
- AYURVEDA
- MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with  
By  
Avinash/Shashi

Icreator of  
hinduism  
server!

'संसारसागरसे तारनेवाले देवदेव हृषीकेश !  
इस जलके घडेका दान करनेसे आप मुझे परम गतिकी  
प्राप्ति कराइये ।'

भीमसेन ! ज्येष्ठ मासमें शुक्रपक्षकी जो शुभ एकादशी होती है, उसका निर्जल व्रत करना चाहिये तथा उस दिन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको शक्तरके साथ जलके घड़े दान करने चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्य भगवान् विष्णुके समीप

पहुँचकर आनन्दका अनुभव करता है। तत्पश्चात् द्वादशीको ब्राह्मणभोजन करनेके बाद स्वयं भोजन करे। जो इस प्रकार पूर्णरूपसे पापनाशिनी एकादशीका व्रत करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो अनामय पदको प्राप्त होता है।

यह सुनकर भीमसेनने भी इस शुभ एकादशीका व्रत आरम्भ कर दिया। तबसे यह लोकमें 'पाण्डव-द्वादशी'के नामसे विख्यात हुई।

## — ★ — आषाढ़ मासकी 'योगिनी' और 'शयनी' एकादशीका माहात्म्य

युधिष्ठिरने पूछा—वासुदेव ! आषाढ़के कृष्णपक्षमें जो एकादशी होती है, उसका क्या नाम है ? कृपया उसका वर्णन कीजिये ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—नृपश्रेष्ठ ! आषाढ़के कृष्णपक्षकी एकादशीका नाम 'योगिनी' है। यह बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाली है। संसारसागरमें इूबे हुए प्राणियोंके लिये यह सनातन नौकाके समान है। तीनों लोकोंमें यह सारभूत व्रत है।

अलकापुरीमें राजाधिराज कुबेर रहते हैं। वे सदा भगवान् शिवकी भक्तिमें तत्पर रहनेवाले हैं। उनके हेममाली नामवाला एक यक्ष सेवक था, जो पूजाके लिये फूल लाया करता था। हेममालीकी पत्नी बड़ी सुन्दरी थी। उसका नाम विशालाक्षी था। वह यक्ष कामपाशमें आबद्ध होकर सदा अपनी पत्नीमें आसक्त रहता था। एक दिनकी बात है, हेममाली मानसरोवरसे फूल लाकर अपने घरमें ही ठहर गया और पत्नीके प्रेमका रसास्वादन करने लगा; अतः कुबेरके भवनमें न जा सका। इधर कुबेर मन्दिरमें बैठकर शिवका पूजन कर रहे थे। उन्होंने दोपहरतक फूल आनेकी प्रतीक्षा की। जब पूजाका समय व्यतीत हो गया तो यक्षराजने कुपित होकर सेवकोंसे पूछा—'यक्षो ! दुरात्मा हेममाली क्यों नहीं आ रहा है, इस बातका पता तो लगाओ !'

यक्षोंने कहा—राजन् ! वह तो पत्नीकी कामनामें आसक्त हो अपनी इच्छाके अनुसार घरमें ही रमण कर रहा है।

उनकी बात सुनकर कुबेर क्रोधमें भर गये और तुरंत ही हेममालीको बुलवाया। 'देर हुई जानकर हेममालीके नेत्र भयसे व्याकुल हो रहे थे। वह आकर कुबेरके सामने खड़ा हुआ। उसे देखकर कुबेरकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। वे बोले—'ओ पापी ! ओ दुष्ट ! ओ दुराचारी ! तूने भगवान् की अवहेलना की है, अतः कोढ़से युक्त और अपनी उस प्रियतमासे वियुक्त होकर इस स्थानसे भ्रष्ट होकर अन्यत्र चला जा। कुबेरके ऐसा कहनेपर वह उस स्थानसे नीचे गिर गया। उस समय उसके हृदयमें महान् दुःख हो रहा था कोढ़ोंसे सारा शरीर पीड़ित था। परन्तु शिव-पूजावे प्रभावसे उसकी स्मरण-शक्ति लुप्त नहीं होती थी। पातकसे दबा होनेपर भी वह अपने पूर्वकर्मको यारखता था। तदनन्तर इधर-उधर घूमता हुआ वर्वतोंमें श्रेष्ठ मेशगिरिके शिखरपर गया। वहाँ उत्तपत्याके पुञ्ज मुनिवर मार्कण्डेयजीका दर्शन हुआ। पापकर्मी यक्षने दूरसे ही मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया। मुनिवर मार्कण्डेयने उसे भयसे काँपते देख परोपकारव इच्छासे निकट बुलाकर कहा—'तुझे कोढ़के रोग कैसे दबा लिया ? तू क्यों इतना अधिक निन्दनीय जपड़ता है ?'

यक्ष बोला—मुझे ! मैं कुबेरका अनुचर हूँ। मेरा नाम हेममाली है। मैं प्रतिदिन मानसरोवरसे फूल आकर शिव-पूजाके समय कुबेरको दिया करता हूँ। एक दिन पत्नी-सहवासके सुखमें फँस जानेके कारण